PROFESSOR MAX MÜLLER'S

# HIBBERT LECTURES

ON

# THE ORIGIN AND GROWTH

OF

# RELIGION

AS ILLUSTRATED BY

## THE RELIGIONS OF INDIA.

---

TRANSLATED INTO HINDI

BY

MUNSHI JWALA-PRASADA, B.A.,

VAKIL, HIGH COURT OF JUDICATURE, N. W. P., AND

MUNSIF, FAIZABAD, OUDE.

PUBLISHED BY

BEHRAMJI M. MALABARI.

---

BOMBAY:

PRINTED AT THE INDIAN PRINTING PRESS, KANDEWADI.

---

1888.

श्रीमन्महाराजाधिराज मिरझा महाराव श्री खेंगारजी सवाइ बहादुर कच्छदेशाधीश. जी. सी. आइ. ई.

महाराज,

भट्ट मोक्षमूलरकृत हिब्बर्ट व्याख्यानोंका हिंदी अनुवाद महाराजकूं समर्पण करनेकी आज्ञा चाहता हूं. आशा है कि आप राज्यभारकी चिंतासे एक क्षणकेवास्ते निवृत्त होकर इस तेजस्वि और अत्युत्तम विवरणका विचार करोंगे. यह विवरण ऐसे विषयका है के जो चिरकालसे उपपाद्य और दुर्बोध कदाचित् रहा है, परन्तु जिसपर कि भारतवर्षके तत्वज्ञ मनुष्योंका सदा गंभीर अनुराग रहा करेगा.

इस ग्रंथके अवलोकनसे आशा है कि महाराजकी न्याय और व्यवस्थाकी जो भावना है उस्की पुष्टि होगी, और अनंत और सनातनका स्पष्टतर ज्ञान उत्पन्न होनेंमें सहायता होगी, और अपना सत्य स्वात्माके विचारसे सर्व्वोत्कृष्ट सर्वात्मा परमात्माका साक्षात्कार होगा, जिससे निष्काम लोकहिततत्पर जीवनकी प्रेरणा होगी.

यह हिंदीका ग्रंथ महाराजसे उत्तमतर राजा या भाषासाहित्यहितैषीको समर्पण नहि हो सकता था.

महाराजाका अभीष्ट चिंतनहार,

बहिरामजी मे. मलबारी.

# अनुक्रमणिका.




| | पृष्ठ. |
|---|---|
| प्रस्तावना ........................................ | १–२ |
| भट्ट मोक्षमूलरका जीवनचरित्र ........................ | ३–६ |
| भट्ट मोक्षमूलरके मतका सारांश ...................... | ७–८ |
| धर्म्म ........................................... | ९–१९ |
| पहिले, दूसरे व तीसरे व्याख्यानका सारांश ........ | २०–२५ |
| व्याख्यान चौथा–स्पृश्य, अर्धस्पृश्य व अस्पृश्य पदार्थोंकी पूजा ................ | २६–६७ |
| पांचवां व्याख्यान–अनंतत्व, सृष्टिनियमकी कल्पना. | ६८–९४ |
| व्याख्यान छठवां-इष्टेश्वरमत, अनेकेश्वरमत, एकेश्वरमत, निरीश्वरमत ................ | ९५–१३५ |
| व्याख्यान सातवां–तत्वविज्ञान और धर्म ........ | १३६–१७१ |
| उपसंहार ........................................ | १७१–१८० |
| पश्चादवलोकन..................................... | १८१–१८५ |




# प्रस्तावना.



मिस्टर रावर्ट हिबर्ट, जो कि बडे विद्वान् पुरुष इंग्लैण्डके थे, उन्होंने मरते समय कुछ द्रव्य इसलिये छोडा था कि वह ऐसे कामोंमे खर्च किया जाय जिनसे मतमतान्तरका हाल प्रति मनुष्य अपनी बुद्धिसे समझ सके. इस कार्य्यके पूर्ण होने निमित्त यह तदबीर हुई कि प्रति वर्ष मतमतान्तरपर विद्वान् विद्वान् लोग व्याख्यान दिया करें. सबसे प्रथम व्याख्यानदाता मोक्षमूलर भट्ट थे. ये जर्मन देशवासी हैं, परन्तु इंग्लैण्डके पाठशालामे बहुत दिनसे शिक्षक हैं, और संस्कृतके बडे विद्वान् पंडित हैं. इन महाशयने बहुतसी पुस्तकोंका संस्कृतसे अंग्रेजीमे उल्था किया है. ये व्याख्यान वैदिक धर्म्मकी बुनियादपर हैं जिनमें भट्ट मोक्षमूलरने दिखलाया है कि प्राचीन आर्यावर्तमें धर्मकी जड कैसे पडी.

इस भाषान्तरमे प्रथम, द्वितीय, तृतीय, व्याख्यानोंका खुलासा लिखा गया है क्यों कि इनमें बहुतसी बातें ऐसी थीं जिनसे भाषा जाननेवालोंको कोई लाभ न होता.

चौथे, पांचवें, छठे, सातवें व्याख्यानका पूरा पूरा उल्था किया गया है और पूरा मतलब इन्हींसे निकलता है.

भाषान्तरकर्ता.



# भट्ट मोक्षमूलरका जीवनचरित्र.

( मि॰ बहिरामजी मलबारीके मूल गुजरातीसे उल्था किया गया. )

भट्ट मोक्षमूलरका जन्म जर्मनी देशमें सन १८२३ में हुआ था. इनका बाप उल्हेम मूलर एक बडा प्रसिद्ध कवि था, और इनकी माता बहुत अच्छे कुलकी थीं. भट्ट मोक्षमूलर बाल्यावस्थासे परिश्रमी और चपल थे. इनको गानविद्यामें बडी रुचि थी. सन १८४३ ई॰ में जब मोक्षमूलर केवल २० वर्षके थे उनको लिपझीक नामी पाठशालासे "डाक्टर आफ फिलासफी" अर्थात् 'तत्वविज्ञानवेत्ता'की पदवी मिली. इसी पाठशालामें इन्होंनें इहूदी, अरबी, और संस्कृत भाषाओंका अभ्यास किया. दूसरे वर्ष हमारे तरुण पण्डित जर्मनी देशकी राजधानी बरलिनको अपने समयके दो महा पण्डित शेलिंग व बॉपके वक्तृत्व सुनने गये. यहां इनसे और सृष्टिविज्ञानवेत्ता हुमबोल्ट व बीकसे परिचय हुई. सन १८४५ ई॰ में फ्रान्सके पाठशालाके विद्यागुरु यूजीन बुरनुफकी पण्डित्यकीर्ति सुनकर भट्ट मोक्षमूलर फ्रान्स देशकी राजधानी प्यारिसको गये. बुरनुफनें मोक्षमूलर भट्टकी तीव्र बुद्धि पहिचानकर इनसे ऋग्वेदसंहिता छपानेको कहा. सन १८४६ ई॰ में इसी हेतुसे वह इंग्लिस्तान गये, वहां ऐसा योग हुआ कि नामदार ईस्ट इण्डिया कम्पनीनें इस कामको प्रारम्भ किया, और उसका प्रबंध हमारे व्याख्यानकर्ता भट्ट मोक्षमूलरके सिपुर्द किया, और वह आक्सफर्डमें रहने लगे. ऋग्वेदके छपानेका बडा भारी काम सिवाय इंग्लिस्तानके और किसी देशमें न हो सक्ता.

इंग्लिस्तानको धन्य है कि जहां विद्याका ऐसा उत्तेजन होता है. कोई आश्चर्ज नहीं है कि इस देशमें दिवसानुदिवस वृद्धि होती है.

सन १८५४ ई॰ में भट्ट मोक्षमूलर आक्सफर्डके पाठशालामें यु-

वर्गके शिक्षक हुये, जो अनेक भाषाविज्ञान व भाषाशास्त्रकेलिये स्थापित हुआ था. भट्ट मोक्षमूलरका पहला ग्रन्थ हितोपदेशका भाषान्तर है, जो सन १८४० मे छपा था. सन १८४३ ई० में इन्होंने कविकुलगुरु श्री कालिदासके महाकाव्य मेघदूतका जर्मन भाषामें भाषान्तर किया, इसमें इन्होंनें संस्कृत छन्दके अनुरूप जर्मन भाषामें एक छन्द निर्म्मित किया, इससे उनकी बुद्धिवैभवकी परीक्षाही नही परस्पर हुई, परन्तु संस्कृत और जर्मन भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध सिद्ध हो गया. सन १८५९ में उन्होंने—“प्राचीन संस्कृत सहित्यिय इतिहास” नामक ग्रन्थ रचा. सन १८६१ ई० में “भाषाशास्त्रविषयक व्याख्यान” नाम ग्रन्थका लिखना आरम्भ किया. प्रथम इसके ९ भाग थे, परन्तु सन १८६४ ई० में १२ भाग और लिखकर इस पुस्तकको समाप्त किया. इनका उल्था फ्रेंच, जर्मन, इतालियन, और रूसी भाषाओंमें हुआ. इन्होंने औरभी ग्रन्थ मुद्रित किये, जिनका वर्णन इस न्यून स्थानमें नहीं हो सक्ता. भट्ट मोक्षमूलरने एक काम ऐसा किया है जिससे यह कहा जा सक्ता है कि उन्होंनें अपना जन्म स्वार्थ किया और जिससे उनका नाम सदैव सब पीढ़ियोंतक प्रसिद्ध रहेगा. यह काम ऋग्वेदका छपाना है. इसके ६ बडे बडे भाग हैं, और इनमें सायणाचार्यकी टीकाभी है. यह ६ भाग १८३९ से १८६५ ई० तक छपे. डा० मार्टिन हौगने इन ग्रथोंके विषयमें यह लिखा है, कि पूनामें ७०० पण्डितोंकी सभा इसलिये हुई थी कि इनकी शुद्धताकी परीक्षा करें. इन सबने प्रार्थना किया कि यह छपे हुये ग्रंथ लिखे हुये ग्रंथोंसे अधिक शुद्ध हैं. इन पण्डितोंने अपने लिखे हुये ग्रंथोंको भट्ट मोक्षमूलरके छापे हुये ग्रंथोंसे शुद्ध किया. आजकल भट्ट मोक्षमूलर “पूर्वकडील धर्म्म” नामके ग्रंथ प्रसिद्ध करनेमें आरूढ हैं. ब्राह्मण, बौद्ध, पारशी, चीनी व महम्मदी धर्म्मोंके ग्रंथ छप चुके हैं. इस बडे कामके प्रत्येक भाग और और विद्यावान् पुरुषोंको सौंपे गये हैं, और भट्ट मोक्षमूलर सबके एडिटर हैं जो सबको सुधारते और छपाते हैं. बडे हर्षकी बात है कि हमारे

परम सन्मान्य मित्र मि० काशीनाथ त्रिंबक तेलंग, व भट्ट रामकृष्ण गोपाळ भाण्डारकरके नामभी ग्रंथकारोंमे व सहायकोंमें हैं. कहा जाता है कि इस पुस्तकके २४ से अधिक ग्रंथ होंगे. हम वर्णन कर चुके हैं कि इनके पिता कवि थे. यहभी कवि हैं. इन्होंने कोई काव्य नहीं बनाई, परन्तु इनकी कवित्वशक्ति इनके प्रत्येक ग्रंथोंसे प्रगट है. कैसेही क्लिष्ट और गहन विषय क्यों न हो, परन्तु इनकी विवेचना और सरलता और कवित्वचमत्कृतिपरिपूर्ण भाषा अतिही मनोरम और लुभायमान है. यह सुन्दर भाषामें अपने अज्ञानको नहीं छिपाते.

हमारे व्याख्यानकर्ता वादविवाद करनेकी लालसा नहीं रखते. उनका स्वभाव शांत, गम्भीर और दयालु है. यह किसीके मनको दुखाना नहीं चाहते. यह सत्पुरुषत्वके चिन्ह हैं. यह कहते हैं कि सब धर्म्मोंमें सत्यका अंश है. जब कभी वादविवादमें पड जाते हैं, तब अच्छी तरहसे निडर होकर अपनी बातको समझा देते हैं, और दूसरेको हरा देते हैं. वह यूरोपकी सब विद्यावानोंकी मंडलीके सभासद हैं. प्रशिया देशसे इनको नाइटका पद मिला है. इंग्लिस्तान उनको प्रिय पुत्र जानता है और उनको अपने विद्यावान् पुरुषोंमें गिनता है. इंगलिस्तानके विद्यावानोंमें इनकी इतनी मान्यता है कि यह इनको छोडना नहीं चाहते. इस कालके पराक्रमी पुरुषोंमें यह प्रमुख हैं. इनका जन्म इंगलिस्तानमे नहीं हुआ परन्तु यह अंगरेजी भाषा ऐसी सरल लिखते हैं, कि बडे बडे लिखनेवाले इनके सामने फीके हो जाते हैं. पृथ्वीमण्डलके सहस्रों विद्यावान् पुरुष उनकी प्रशंसा करते हैं. इनको शब्दशास्त्र व भाषाशास्त्रका उत्पादक कहना चाहिये. इस विद्यामें इनके समान कोई नहीं है. धर्मशास्त्र व भाषाशास्त्रमें इनकी बुद्धि अद्वितीय है. इनकी अलौकिक बुद्धिका वृत्तान्त "हिबर्ट लेक्चर्स" से विदित होगा, जो हिन्दी भाषामें छापे जाते हैं. इन व्याख्यानोंको भट्ट मोक्षमूलरने अपनी परलोकवासी कन्याको इस करुणारसमें अर्पण किया है.

"जिसके प्रिय स्मरणने इन व्याख्यानोंके लिखनेमें मेरा उत्तेजन कर मार्ग दिखलाया, और अतिशय साहाय्य किया, यह व्याख्यान पितृवात्सल्यके स्मारक उसीके निमित्त अर्पण किये जाते हैं."

---

# भट्ट मोक्षमूलरके मतका सारांश.

## (मि. वहिरामजी मलबारीके गूजराती मूलसे उल्था किया गया.)



भाषा व धर्म्मकी उत्पत्ति और वृद्धिके विषयमें भट्ट मोक्षमूलरके विलक्षण विचार हैं. चाहे उनका मत ठीक हो वा न हो वाचक आपही समझ सक्ता है. परन्तु वे बहुधा शुद्ध हैं और विद्वज्जनोंकी तर्कणासे परे हैं. हम जानते हैं कि छोटेसे बीजसे कोमल पौधा बनाते हैं और वह धीरे धीरे विशाल वृक्ष हो जाता है जिसके कि पत्ते डाल और फल शोभा करते हैं. पदार्थशास्त्रभी सत्यताकेसाथ कहता है कि इस संसारके पदार्थमात्र परमाणुसे बने हैं. यही नियम भाषाके संस्कारमेंभी लग सक्ता है. यह चार पांच सौ धातुके योगसे बनती है. इन्ही नियमोंपर भाषा बनती है अर्थात् जो कुछ हम कहते हैं और जो भाषा हम अपने विचार दर्शनकेलिये बोलते हैं उन्ही धातुओंसे जिनकी अल्प संख्या है निकलती है. प्रत्येक धातुसे एकही पृथक् विचार नहीं ज्ञात होता किन्तु अनेक उदात्त विचार दर्शित होते हैं. सारांश यह है कि इन्हीं धातु वा नियमोंकी मूलपर भाषारूपी मन्दिर बनता है. व्याख्यानकारका वाक्य है कि मनु शब्द ईंग्रेजी शब्द ( Man ) और संस्कृत शब्द मनुष्य दोनोंका मूल है, मनुका अर्थ विचार करनेवाला. विचारशक्ति मनुष्यहीमात्रमें है और किसी जीवमें नहीं है. ऐसेही यह हमारे भट्ट चार पांच सौ धातुओंकी उत्पत्तिका कारण बतलाते हैं. उनका वाक्य है कि मनुष्योत्पत्तिके सदृश उन धातुओंकीभी उत्पत्ति है. यही एक जातिगुण मनुष्यको पशुमात्रोंसे अलग करता है. जैसेही मनुष्यवाणीका विस्तार होता गया वैसेही मूल धातुओंका लोप होता गया. आरम्भमात्रमें उनकी अवश्यकता थी. व्याख्यानकारका यह मत है कि समस्त भाषाओंका सम्भवकारक एकही मूल है कारण यह है कि मनुष्यवाणीके तीन

मीठे वर्गों आर्यन, तुरेनियन, और सिमेटिक भाषाओंमे कितनेही मूल धातु ऐसे हैं जो तीनोंमें सामान्य हैं और जिससे हमारे भट्टका मत सिद्ध हो जाता है.

ऊपर वर्णित धातु मनुष्यके वडे उपयोगी रहे होंगे, परन्तु इस वातका वर्णन वहुत कठिन है कि कैसे संस्कृत, जिन्द और हिब्र्य किम्वा यहूदी व लैटिन इत्यादि उन धातुओंसे निकलीं. वहुतसी अर्वाचीन भाषा जो पूर्वीय व पश्चिमीय गोलार्द्धोंमे वोली जाती है इन्हीं मूल भाषाओंसे निकली. परन्तु इनकी उत्पत्तिका निश्चित काल वतलाना वहुत कठिन है. भाषाओंकी उत्पत्ति व वृद्धिके विषयमें जो व्याख्यानकारका मत है वही धर्म्म विषयमेंभी है. समग्र धर्म्म एक अल्प मूलसे उत्पन्न हुआ है और वह मूल मनुष्यकी ग्राहक-शक्ति हैं जिसके द्वारा उसको अनन्त वस्तुओंका ज्ञान होता है. इस विषयपर व्याख्यानकारने वहुत विस्तारकेसाथ निम्नलिखित पुस्तकमें लिखा है. इस स्थलपर वाचकको यह जानना चाहिये कि हमारे व्याख्या-नकारने वहुत परिश्रमसे यह खण्डन किया है जिसपर वहुतसे विद्वानों-का विश्वास है कि पदार्थपूजा सव धर्म्मोंका आदिस्वरूप है. हमारे व्याख्यानकार अपना नाम भट्ट मोक्षमूलर लिखते हैं. हमनेभी वही नाम कई स्थलोंमें लिखा है. यह नाम वहुत उत्तम है और इसके वनानेमें वहुत चातुर्य्यता दृष्टि पडती है. मोक्षमूलरका अर्थ वह मनुष्य जो सदैव धर्म्मकार्य्यमे लगा रहे. मोक्षका अर्थ मुक्ति है और मूलरका अर्थ मूलांत अर्थात् जडपर वास करनेवाला. यह ( नामों-की नकल है. )

( ब्रह्मानन्द और दयानन्द आदि ) और इसका आशय पूर्व-दर्शित है.

---

# धर्म्म.

( मि. वहिरामजी मलवारीके मूल गूजरातीसे उल्था किया गया. )

धर्म्म क्या है? इस विषय और उसकी परिभाषाओंपर पहिले एक मत हो जाना चाहिये, पश्चात् दोनों पक्षोंमें वादारम्भ होगा. इसलिये ध्यान देना चाहिये कि धर्म्म क्या है? धर्म्म शब्दकी व्युत्पत्ति यह है. यह "धृ=धारण करना" इस धातुसे निकला है. जो धारण करता है, उद्धार करता है, और आश्रय देता है, वही धर्म्म है. इंग्रेजी भाषामें धर्म्म शब्दका, अर्थ 'रिलिज्यन' है जो लाटिन भाषाके Religio, Religere जिसके बांधना, एकत्र करना, विचार करना, ध्यान करना, आदि अर्थ हैं निकला है. यह धर्म्म शब्दका मूल अर्थ है. अब हमको विचार करना चाहिये कि कैसे धर्म्म शब्दके प्रचलित और शाब्दिक अर्थोंका परस्पर ठीक सम्बन्ध है. कोई शब्द अपना मूल अर्थ बहुत दिनोंतक नहीं धारण कर सक्ता. जैसे दिवसानुदिवस मनुष्य बदलते हैं; काल पाकर भाषाओंमेंभी शब्द बदल जाते हैं अर्थात् शब्दोंके अर्थमें अन्तर पड जाता है. धर्म्मका प्रथम अर्थ 'धारण करनेवाला' था, पश्चात् 'आश्रय देनेहारा' हो गया. इन दोनों अर्थोंमें बहुत भेद नही है; तथापि धर्म्म शब्दके प्रचलित अर्थ और पूर्व अर्थमें बडा भेद दृष्टि पडता है. धारण करना, विचार करना, ध्यान करना, और विश्वास करना, एकही मानासिक क्रियाके निराले प्रकार हैं. धारण करना मानो एक नदीका उत्पत्तिस्थान है, विचार करना नदी है, ध्यान करना और विश्वास करना उस नदीकी दो धारा हैं, जो वृद्धिको प्राप्त होती हुई महासागरमें जा मिलती हैं, और वह महासागर जिसका कि अगम विस्तार है पहिले अति सूक्ष्म जलाशय था. बुद्धिमानोंने मनकी अनेक वृत्तियोंको इन शब्दोंसे सूचित किया है.

भट्ट मोक्षमूलरने इनको 'परिणाम' ऐसा नाम दिया है. धर्म्म शब्दके मूल अर्थपर ऐसा प्रमाण करके हमको देखना चाहिये कि लोकमें इसका क्या अर्थ समझा जाता है? यह असम्भव है कि धर्म्म ऐसे अगाध विषयपर मनुष्योंका मत एकहीसा हो, तथापि कहीं कहीं विद्वान् लोगोंका इस सम्बन्धमें क्या विचार है इसीके देखनेसे हमारा परिश्रम सुफल हो जायगा. संक्षेपतः धर्म्मका अर्थ श्रद्धा, भक्ति, पूजा, नीति, आनन्द प्रदर्शन, भीति, तर्क और अज्ञात वस्तु जाननेकी इच्छा है. इस समावेश धर्म्म शब्दमें अनेक वस्तु मिली हैं.

धर्म्म एक वहुत पुरातन पदार्थ है और धर्म्मके शास्त्रभी वहुत पुरातन हैं. जहां मनुष्य हैं धर्म्मभी है, और जहां धर्म्म हैं इसकी उत्पत्तिका प्रश्न अवश्य है. जव वालक कोई प्रश्न करते हैं वे अपनी इच्छानुसार पूछते हैं, और अल्प वस्तु जाननेकीभी वडी अभिलाषा करते हैं. यह पदार्थ कहांसे है, क्यों है, और कैसा है, ऐसे अनेक प्रश्नोंसे वह अपने वडोंको सन्देहमें डाल देते हैं. मैं विचार करता हूं कि तत्वविज्ञानके मुख्य सिद्धान्त धर्म्मसे सूचित हुये हैं.

यह देखा गया है कि वह लोगभी—जिनकी भाषामें धर्म्मका शब्द नहीं है—एक अज्ञात वस्तुको पूजते हैं. जान स्टुअर्ट मिल्लका मत है कि पौराणिक देव और जगत्कारण सृष्टिकर्ता ईश्वर ये दोनों मनकी भ्रमात्मक कल्पना हैं, परन्तु उन्होंनेभी एक अत्यन्त वुद्धिवती और अलौकिक सामर्थ्यवती स्त्रीपर अपना परम विश्वास प्रकट किया. उनका मत था कि वुद्धिवर मनुष्यमात्र पूजनीय होते हैं इसलिये जिसमें मनुष्यजातिका कल्याण हो एतदर्थ प्रत्येक मनुष्यको अपनी सर्व मानसिक व शारीरिक शक्तिका उपयोग करना यही धर्म्म है. क्या यह कहना ठीक होगा कि जान स्टुअर्ट मिल्लका कोई धर्म्म न था? हम कभी ऐसा नहीं कहते. हमें यह कहना पडता है कि उनका कोई धर्म्म अवश्य था. यदि धर्म्म नहीं तो और क्या वस्तु है जिसपर उसको इतनी भक्ति है. ब्राह्मण वहुत देवताओंपर विश्वास करते थे और वौद्ध एकपरभी नहीं विश्वास करते थे. क्या यह कहा

जा सक्ता है कि बौद्ध धर्म्म हीन थे. सत्य तो यह है कि एक किरोड मनुष्योंमें एकभी धर्म्मविहीन मनुष्य नहीं दृष्टि पडता. केवल वही अनन्त-शक्ति धर्म्म नहीं जिसपर ऐसे मनुष्यका मन लीन है, जिसकी ज्ञान और बुद्धि उज्ज्वल और दृष्टि शास्त्र है किन्तु काष्ठ और पत्थरका टुकडाभी जिसकी बुद्धि हीन दुर्बल मनुष्य जिनकी स्थिति वानरोंकी अपेक्षा उत्तम नहीं है पूजा करते हैं वहभी धर्म्म है.

कांम्प्ट जो अर्थशास्त्रवेत्ता था उसका यह मत था कि नीति धर्म्म है. जो मनुष्य अपना जीव और अपना आचार विचार ईश्वराज्ञानुसार वर्त्तता है या उसके अनुसार वर्त्तनेकी यत्न करता है उसीको वह सत्य धर्म्म मानता है. फिश्ल्टे दूसरे पण्डितका मत इसके विरुद्ध है. उनका वाक्य है कि शुद्ध व्यवहारमें नीति मात्र आवश्यक हैं परन्तु दुराचारी और कुव्यसनी मनुष्योंकेलिये धर्म्मका होना आवश्यक हैं. फिश्ल्टे कहता है कि धर्म्मका अर्थ ज्ञान है. यह मत हमारे वेदान्ती और नैयायिकोंसे मिलता है. जो कहते हैं कि विना ज्ञानके हृदयशुद्धि नहीं होती और विना हृदयशुद्धिके मोक्षका मिलना दुर्लभ है. इन दोनों प्रकारके विद्वानोंके मतके भेदको देखो. किसका मत शुद्ध है? हमारे भट्ट मोक्षमूलर कहते हैं कि दोनों एक बातमें शुद्ध हैं और एक स्थलमें दोनों अशुद्धभी हैं. यदि प्रत्येक मतवादी यह कहे कि उसीका मत ठीक है और वही सत्य धर्म्म है और धर्म्मही सुनीति है और सद्व्यवहार ईश्वराज्ञानुसार है तो हमें उसके मतसे विवाद न करना चाहिये क्यों कि जिस दृष्टिसे वह देखता है उससे उसका मत ठीक है, परन्तु प्रत्येक मनुष्यको समझ लेना चाहिये कि उसका मत सर्वमानित नहीं हो सक्ता. प्रत्येक पण्डित अपनी इच्छा और बुद्धिवैभवप्रमाण मतकी कल्पना कर सक्ता है परन्तु उनके मतसे हमको कोई लाभ नहीं है.

श्लीयरमेकर दूसरे प्रसिद्ध पण्डित धर्म्मको पूर्ण पराधीनता कहते हैं. और दूसरे पण्डित् फाइरव्यांक स्नेहको मिलाकर इस परिभाषाको पूर्ण करते हैं.

किसी शक्तिमें भक्तिका अर्थ यह है कि तन, मन और मुख्यकर मनसे उस शक्तिको माने और अपने तई उसके आधीन कर दें. अपने स्वार्थका अवश्य विचार रहना चाहिये. जब मनुष्य पूजा करता है, ईश्वर-स्तुतिसे मनुष्य ईप्सित फलप्राप्तिकी आशा रखता है, यह स्वाभाविक है कि पूजक और भक्त ऐसी आशा रक्खै. विचारसे समझ पडैगा कि फाइरब्यांकके वाक्य शुद्ध हैं.

परन्तु हेगल एक दूसरा पण्डित विनोदकेसाथ लिखता है कि यदि श्लीयरमेकरकी परिभाषा शुद्ध हो तो इस संसारमें धार्म्मिक मार्ग कुत्तेसे वढकर न हो सकैगा. क्या कोई ऐसाभी मनुष्य मिल सक्ता है जिसकी आधीनता और प्रेम ईश्वरकेलिये कुत्तेके अपने स्वामीके प्रेमकी अपेक्षासे अधिक होगा. श्लीयरमेकरके मतपर इस प्रकार उप-हास करके हेगल अपना मत लिखते हैं; धर्म्म पूर्ण पराधीनता नहीं परन्तु पूर्ण स्वतंत्रता है. जिसको धर्म्म कहते हैं उसमें स्वतंत्रताकी कल्पना होना चाहिये, परतंत्रताकी नहीं. इन दोनों विद्वानोंके मतका भेद देखो. तथापि दोनों मत भिन्न भिन्न दृष्टियोंसे शुद्ध जान पडते हैं.

फाइरब्यांक और काम्प्टने लिखा है कि मनुष्यके स्वभावमें अप-नेको असामर्थ्य कल्पना करनेसे अधिक कोई उदात्त शक्ति नही है. मानवपूजाही धर्म्म है परन्तु वह प्रत्येक मनुष्यकी पूजा नहीं किन्तु मनुष्यजातिकी पूजा अर्थात् सेवा है. मनुष्योंके वा मनुष्यताके गुण यही धर्म्मके पूज्य देवता हैं. फाइरब्यांकका यहभी मत है कि अहं-भाव किंवा आत्मप्रीतिविना धर्म्मका होना सम्भव नहीं. यहभी किसी अवस्थाओंमें शुद्ध है.

हरडर नामका पण्डित वर्णन करता है कि उत्तमोत्तम ज्ञानके बीज ग्रंथलिखित अथवा कथित कथाओंमें पाये जाते हैं. फाइरब्यांकका वाक्य है कि धर्म्म मनुष्यके स्वभावका मूल रोग है, केवल मनुष्यका रोगी अन्तःकरणही धर्म्म नहीं. किन्तु वह सब विपत्तिका कारण है. हिराक्लेटस कहता है. कि धर्म्म एक प्रकारका रोग है परन्तु वह पवित्र रोग है. शिलर कहता है कि वह किसी मानित धर्म्मपर विश्वास

नहीं करता और उसका स्वकीय धर्म्म ऐसे मतका कारण है. जो मनुष्य सत्य धर्म्म पहिचानता है उसको लौकिक धर्म्म स्वीकार करना नही अच्छा मालूम होता यहभी सत्य है.

एक कहता है कि अन्तःकरणमें जो गुप्त प्रार्थना की जाती है वही धर्म्म है. दूसरा उत्तर देता है कि यह सब सत्य है परन्तु कुछ धर्म्म कर्म्मभी होना चाहिये उनके विना धर्म्म क्या है? तीसरा कहता है कि तुह्मारी दोनोंकी भूल है. अन्तःकरणमें गुप्त प्रार्थना अथवा धर्म्म कर्म्म दोनों भ्रमात्मक हैं. धर्म्म कोई वस्तु नहीं है.

इस प्रकार धर्म्मकी ठीक परिभाषाके ढूंढनेमें हम थक गये हैं; परन्तु कोई ठीक फल नहीं निकला इसलिये धर्म्म ऐसा प्रश्न है कि उसका उत्तर देनेकी अपेक्षा निष्फल है. इस प्रश्नका उत्तर न आजतक मिला है, न मिलेगा. इसका ठीक वर्णन करनाही असम्भव है. वाचक कहैगा कि तो फिर इतनी वार्तासे क्या लाभ हुआ? हम कहते हैं कि हमारा परिश्रम निष्फल नहीं हुआ. हमने अनेक पण्डितोंके मतको एकत्र किया हैं, जिसके पठनेसे बडा लाभ होगा. यद्यपि यह प्रश्न वहुत कठिन हैं तिसपरभी हमारे परिश्रम वह अज्ञानरूपी वस्त्र जिसमें वह छिपा हुआ था हट गया, हमको अपनी चूकका ज्ञान हो गया, और अव अपने धर्म्मपर वृथा अभिमान नहीं कर सक्ते. क्या यह थोडा लाभ है?

परन्तु हमको देखना चाहिये कि भट्ट मोक्षमूलर 'अन्तर्धर्म्म'का अर्थ क्या करते हैं. वह कहते हैं कि मनुष्यमात्रकी प्रकृतिमें एक भावना-शक्ति है जिसके द्वारा वह अनन्त वस्तुको जान सक्ते हैं; उस शक्तिका नाम श्रद्धा वा अन्तर्धर्म्म है.

अब हमको देखना चाहिये कि वह भावना शक्ति क्या है जिसके द्वारा धर्म्म विषयपर विचार हो सक्ता है. कोई पण्डित—चाहे वह जिस मतका हो—इस बातको स्वीकार करैगा कि मनुष्यके इन्द्रिय और बुद्धि हैं और वह दोनों अपना अपना कार्य्य करते हैं. यहभी

स्वीकार किया जायगा कि इन्द्रिय मनुष्यमे नैसर्गिक हैं अर्थात् वह उसके साथही उत्पन्न हुई हैं.

बुद्धि इन्द्रियज्ञानका परिणाम है. जो कर्म्म इन्द्रियोंको वढाते हैं बुद्धिका कारण होते हैं. जो कुछ हम देखते हैं वा सुनते हैं उसका परिणाम मनपर विश्राम करता है और उससे हमको अनुभव प्राप्त होता है. इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न ज्ञानको अब हम इन्द्रिय कहते हैं और उसकी वृद्धि और परिणामको बुद्धि व भावना कहते हैं. यह पिछला पहिलेका परिणाम कहला सक्ता है.

यह वातें सान्त वस्तुओंकेलिये हैं. अब हमको अनन्त वस्तुओंपर विचार करना चाहिये. व्याख्यानकार कहता है कि इस ठिकानेपर एक तीसरी शक्ति कार्य्य करती है यह श्रद्धा अथवा अन्तर्धर्म्म है. इस शक्तिमें अनन्त वस्तुओंके ग्रहण करनेकी योग्यता है. इस शक्तिका फल सर्वोत्कृष्ट परिणाम है. प्रथम इन्द्रियों द्वारा हमको सान्त वस्तुओंका ज्ञान होता है और फिर बुद्धिवलसे हमको अनन्त वस्तुका अनुभव होता है और उस वस्तुकी कल्पना प्रगट हो जाती है. जब इन्द्रिय और बुद्धिने अपना अपना कार्य्य पूर्ण किया तब तीसरी शक्ति अर्थात् श्रद्धा कार्य्य आरम्भ करती है और सान्त वस्तुओंकी सहायता अनन्त वस्तुके विचारकी उसको सामर्थ्य हो जाती है. अनन्तके सन्निकट प्राप्त होनेकेलिये इन्द्रिय, बुद्धि और श्रद्धा यह तीन सीढी हैं. इनमेंसे पिछला अर्थात् श्रद्धा केवल इन्द्रिय और बुद्धिके संयोगका परिणामही है, दूसरी वस्तु नहीं. अन्तर्धर्म्म किंवा श्रद्धारूपही विलक्षण शक्ति मनुष्यमें कैसे उत्पन्न हो जाती है? भट्ट मोक्षमूलर इसमें कोई वस्तु विलक्षण नहीं देखते. बुद्धि और श्रद्धामें भेद तो है परन्तु कुछ नवीनता नहीं है. पर भेद सर्वथा है. क्या इन्द्रिय और बुद्धिमें भेद कम है? कितने प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि हम क्योंकर अपनी आंखोंसे देखते हैं? अपने कानोंसे सुनते हैं? और किसलिये हम शयन करते हैं? इन्द्रियव्यापार कैसे होता है? यह प्रश्न वहुत प्रसिद्ध हैं; परन्तु इनपर कौन ध्यान देता है? यह वातें दिन रात देखनेसे स्वाभाविक हो गयी हैं. आंखोंकी

देखनेमें शक्ति, और कानोंकी सुननेमें शक्ति, इन वातोंको हमें स्वाभाविकही जानना पडता है. फिर इस वातपर हमको क्यों आश्चर्य्य करना चाहिये कि श्रद्धा और अन्तर्धर्म्म इन्द्रिय और वुद्धिका परिणाम है. इसमें हमको विस्मय न करना चाहिये कारण यह है कि वहुतसे पंडितोंने मान लिया है कि वुद्धि इन्द्रियजन्य ज्ञानका परिणाम है.

अव हमको सान्त और अनन्त इन शब्दोंके अर्थोंको देखना चाहिये. वह सान्त है जिसको इन्द्रिय देख सकैं और वुद्धि समझ सकैं इसलिये अनन्तका अर्थ यह नहीं है कि जिसका अन्त न हो परन्तु वह जो अन्तके वाहर और उससे परे हो. इस शब्दका केवल यही अर्थ हम कह सक्ते हैं. यह भेद ध्यानमें रखना चाहिये क्यों कि विना शब्दोंके ठीक अर्थको जाने हुये ऐसे कठिण विषयका गहन करना सरल नहीं है.

जो लोग कि धर्म्मपर विश्वास नहीं करते और जो इसकी स्थितिहीको असम्भव कहते हैं इस वातपर मुख्य वाद करते हैं कि इन्द्रिय और वुद्धि अपना अपना काम करते हैं क्यों कि सव साधनयोग्य कामकेलिये वह मनुष्यके सहायक हैं. यह मूर्खता है कि हम एक तीसरी शक्ति अर्थात् श्रद्धाकी कल्पना करैं. श्रद्धाका होनाही असम्भव है कि वह इन्द्रिय और वुद्धिके संयोगसे वनी है.

भट्ट मोक्षमूलर उन मतवादी पण्डितोंको इस प्रकारसे उत्तर देते हैं. हम इस वातको स्वीकार करतेहैं कि इन्द्रिय अपना अपना कार्य्य करती हैं और वुद्धि उनकी सहायता करती है. मैं तीसरी शक्ति अर्थात् श्रद्धाके उत्पत्तिका सम्भवही सिद्ध नहीं कर सक्ता परन्तु यह सिद्ध कर सक्ता हूं कि यह अवश्यही उत्पन्न होगी. यदि इन्द्रिय और वुद्धि हैं तो धर्म्मज्ञानभी होगा, और श्रद्धा अवश्यही उत्पन्न होगी. तुम चाहे जो कुछ करो, मेरा यह सिद्धान्त है कि भाविनी अवश्य होगी. अन्तर्धर्म्म व श्रद्धाके सिद्ध करनेकेलिये हमको एक वस्तुकी आवश्यकता है और वह इन्द्रियज्ञान है जिसको हमारे प्रतिपक्षियोंने पहिलेही मान लिया है. इन्द्रियज्ञान धर्म्मज्ञानके साथ होना चाहिये,

क्यों कि पिछला पहिलेका परिणाम है. जब कि हम धर्म्मके मूलको शोध करते हैं एक नवीन और गुप्त शक्तिपर विश्वास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं. इसकीभी आवश्यकता नहीं कि श्रुति किम्वा ईश्वरवाणी किम्वा दैविक प्रेरणापर विश्वास करैं. जब कि इन्द्रियज्ञानको ग्रहण कर लिया तो इतिहासके आधारसे धर्म्मवृत्ति और श्रद्धाभी सिद्ध हो सक्ती है.

भट्ट मोक्षमूलरका यहभी मत है कि इसको छोड कोई और धर्म्मवासना अथवा शक्ति नहीं. यह नहीं कि ईश्वरने किसी मनुष्य वा राष्ट्रकेलिये एक नवीन धर्म्म उत्पन्न कर दे दिया हो. धर्म्म इन्द्रिय और बुद्धिके कर्म्मोंका फल है जो कि अच्छे प्रकारसे सान्त वस्तुओंको समझ सक्ते हैं. लेकिन श्रद्धा और धर्म्मशक्ति उस अनन्तकी गम्भीरताका भेद पा सक्ती हैं जो इन्द्रियज्ञानरूपी संसारसे बाहर है और उससे उनको ज्ञान होता है. यही धर्म्म और यही इसकी उत्पत्ति है.

क्या जो कुछ हम देखते व सुनते हैं सान्त व समर्य्याद है ? नहीं; चाहे हम अपनी आंखोंसे देखें, चाहे दूरदर्शक व सूक्ष्मदर्शक यंत्रद्वारा देखें, हम देखते हैं कि सान्त वस्तु अपने बाहर अनन्त वस्तुओंसे मिली हैं. प्रत्येक बिन्दुके बाहर एक बिन्दु अवश्य होगा. सृष्टिमेंभी सूक्ष्मके बाहर सूक्ष्म और स्थूलके बाहर स्थूल विस्तृत हैं.

चाहे जिसको हम मर्य्यादा किम्वा हद्द किम्वा अन्त कहते हैं इन शब्दोंके अर्थसे विदित है कि इनसे बाहरभी कोई वस्तु ऐसी है जो अमर्य्याद और अनन्त है. यदि यह नहीं तो अन्त शब्द और इसका अर्थ कहांसे आया ?

यह प्रकट है कि मनुष्यको इन्द्रिय द्वारा सान्तका ज्ञान होता है परन्तु यह तर्क हो सक्ती है कि कैसे और किसके द्वारा उसको अनन्तका ज्ञान होता है ? इसका यह उत्तर है कि वही इन्द्रिय जिनसे हमको सान्तका ज्ञान होता है हममें उसी समय अनन्तकी भावना उत्पन्न करती हैं. जो मनुष्य कहता है कि वह किसीएक वस्तुके

अन्तको नहीं समझता उसमें अनन्तकी भावना उत्पन्न हुई है. हम न अनन्तको समुझ सक्ते हैं और न उसकी थाहको पा सक्ते हैं. वह हमारी आंखोंके सन्मुख स्थित नहीं है तिसपरभी हमको पूर्ण विश्वास है कि अवश्य कहीं विद्यमान है. हमको केवल अनन्तकी भावनाही नहीं है हम उसको स्पर्श करते मालूम होते हैं. वह हमको घेरे हुये है. ध्यान करनेसे मालूम होगा कि सम्पूर्ण पदार्थ जिनको हम देखते हैं अनन्तमें व्याप्त है. अदृश्य अनन्तकेलिये दूसरा शब्द है? हम अदृश्यको देखते है तुम कहोगे कैसे आश्चर्य्यकी वात है. अदृश्य वह है जिसको न देख सकैं और तुम कहते हो कि तुम देखते हो. क्या यह मूर्खता नही है? क्या ऐसी असम्भव वात हो सक्ती है? तथापि ऐसी वात होती है. पहले देखनेसे एक प्रकारका विरोध भास पडता है परन्तु सुनो कैसे यह समुझ दिया जा सक्ता है. अदृश्यको हमारी आखों और कानोंने स्थान दिया है और हमसे वह यह कहता है कि मैं यहां हूं, मेरी ओर देखो. सारांश यह है कि आंखें, कान, आदि इन्द्रियां अनन्तको उसी समयमें देखती सुनती हैं जिस काल कि वह सान्तको देखती सुनती हैं.

यही नहीं है. थोडी देरकेलिये हमको ऐसी कल्पना करने दो कि एक मनुष्य एक ऊंचे पर्वतपर व विस्तीर्ण मैदानपर व एक द्वीपपर खडा है; और यदि यह द्वीप एक महासागरके मध्यमें स्थित है जिसके ऊपर एक प्रचण्ड व विशाल आकाशरूपी घुमट है; तो मैं निश्चयके- साथ कह सक्ता हूं कि वह मनुष्य जो ऐसे स्थानपर विद्यमान है उसको सान्तके पहिले अनन्तहीका वोध होगा. अव हमको अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंपर विचार करना चाहिये. जो भाग सान्त वस्तुओंके वाहर होते हैं अनन्त कहलाते हैं; जो मर्य्यादितके आसपास है वही अनन्त- स्वरूप है; और इस सृष्टि मध्यमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसके अत्यन्त सूक्ष्म अगणित कण न हो सक्ते हों. हम श्वेत और श्याम रंगोंको पहिचानते हैं. क्या हमारी आंखें स्वतः व सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा श्वेत और श्याम रंगके भेदको जान सक्ती हैं? जब कि श्वेत रंग

घटते घटते इतना सूक्ष्म हो जाता है कि अन्तको श्याम रंगका स्वरूप बन जाता है. पहिलेके लोग रंगोंकी अनेक जातियोंको नहीं जानते थे. जान पडता है कि मनुष्यको पहिले दोई रंगोंका ज्ञान था अर्थात् श्वेत और श्याम. इन दोनों रंगोंको न्यूनाधिकताकेसाथ एक दूसरेमें मिलाने और एकके मध्यसे दूसरेको काढ़नेसे कितेक रंग उत्पन्न हो गये. यह कहा जा सक्ता है कि सबसे अधिक मनुष्य नीले रंगको जानते हैं परन्तु इस रंगकेलिये वेद मध्य व पारसियोंके धर्म्मशास्त्र ज्यंद व्यस्त मध्य व यूनानदेशीय धर्मपुस्तकोंमें कहीं कोई शब्द नहीं है. यूनान देशका प्रसिद्ध कवि होमर अपनी महाकाव्यमें इस रंगका वर्णन नहीं करता. ऐसेही ओल्ड और न्यू टस्टाम्यंटमें इसका वर्णन नहीं है. इसमें संशय नहीं कि इसमें हमको बडा आश्चर्य्य करना चाहिये. इससे प्रत्यक्ष है कि पूर्व्वकालके लोग नीले रंगको नहीं जानते थे. उनकी भाषाओंमें इसके बोधकेलिये कोई निराला शब्द नहीं था. भट्टमोक्षमूलरके मत प्रमाणसे यह निर्विवाद है इसलिये हम दृढताकेसाथ कह सक्ते हैं कि अनन्त वस्तुके बोधविना सान्त वस्तुका बोध होना असम्भव है. इस कल्पनाद्वारा और इतिहासिक परिणामकी सहायतासे हम मनुष्यधर्म्मके मूलको पहुंच जाते हैं.

हमने कई बार बडे बडे विद्वानोंको कहते सुना है कि मनुष्य मर्य्यादित अथवा अल्प सामर्थ्य बुद्धि अनन्त वस्तु विषय विचार करनेमें असामर्थ्य है. इसलिये यही योग्य है कि धर्म्मपुस्तकोंमें अपना विश्वास करै. हमको कहना पडा कि यह मत हमारी बुद्धि और ज्ञानसे विरुद्ध है. कारण यह है कि इसमें वह शोधकबुद्धि नहीं है जिसके द्वारा मनुष्यकी बुद्धिकी उन्नति हो. ऊपरकी बातोंसे विदित है कि इन्द्रियजन्य ज्ञानसे मनुष्यमें श्रद्धा उत्पन्न होती है. इसलिये श्रद्धा सर्व सान्त पदार्थोंका ज्ञान है और इसलिये उन अनन्त पदार्थोंका —जो सान्त पदार्थोंके बाहर हैं—हमारे पूर्व्वजोंको अनन्तकी कल्पनाके पहिले सान्तहीका ज्ञान हुआ होगा. अनन्तका ज्ञान प्रथमतः पर्व्वत,

किम्वा नदी, वृक्ष, विद्युत्, मेघगर्जना इत्यादि वस्तुओंसे हुआ होगा. परन्तु वह अनन्तकेलिये कोई निश्चित नाम न दे सके इसलिये वह उसको गर्जन करनेवाला, प्रकाश देनेहारा, आयुष्य देनेहारा, कहते थे. जव उन्होंने अनन्तका हाल अधिक जाना तव वह उसे कर्त्ता, राज्यकर्त्ता, आश्रयदाता, राजा, पिता, पति, अधिपति, देव, देवाधिदेव, कारण, कारणका कारण, आदि नामोंसे कहने लगे. और ज्यों ज्यों उनकी वुद्धि अनुभवसे अधिक अधिक विकास पाने लगी तव वह उसे अनन्त, अविनाशी, और अज्ञेय ऐसे नामोंसे कहने लगे.

इससे हमको क्या फल निकालना चाहिये? मनुष्य इन्द्रिय, वुद्धि, और श्रद्धा इन तीनोंके योगसे जो उसमें व्याप्त हैं धीरे धीरे अनन्त वस्तुओंके ज्ञानका सामर्थ्यी हुआ. यह अनन्त वस्तुओंके ज्ञानकी शक्ति कहीं अघटित व अकस्मात वस्तु न थी; यह केवल उत्तरोत्तर मनुष्य-क्रियाओंका परिणाम है. संसारमें सव पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वृद्धिको प्राप्त होते हैं. धर्म्मकाभी यही हाल है. सव धर्म्मोंकी उत्पत्ति एकसी है. वह अनन्तके जाननेकी इच्छा है. परन्तु धर्म्मकी वृद्धि मात्र लोककी रीतिके अनुसार निराली होती है. निम्नलिखित व्याख्यानमें भट्टमोक्षमूलर दिखलावेंगे कि यह वृद्धि आर्य्योंमें कैसे हुई. हमने इस प्रकारसे देखा कि धर्म्म कोई वस्तु है कि उसका होना सम्भव है और हमें उसकी आवश्यकता है. अनन्त वस्तुकी भावना एक वीज है जिससे धर्म्मरूपी पौधा उत्पन्न हुआ जो कि वढकर अव विशाल वृक्ष हो गया है.

धर्म्मकी रचना सृष्टिनियमानुसार है. इसमें कुछ अतर्क्य, अलौकिक किम्वा अद्भुत नहीं है. इसके द्वारा मनुष्यका उद्धार होगा वा न होगा, व इसके द्वारा हम संसार आत्रा गमनसे मुक्त हो जायंगे वा नहीं, और मेरा धर्म्म अच्छा है, तुह्मारा धर्म्म खोटा, ऐसा वृथा अभिमान करना परस्पर वंधुत्व तोडकर उचित है वा नहीं, ऐसे प्रश्न हमारे विषयसे कुछ सम्वन्ध नहीं रखते. प्रत्येक वाचक अपनी वुद्धि व अनुभव प्रमाण अपना समाधान कर लेगा.

किम्वा नदी, वृक्ष, विद्युत्, मेघगर्जना इत्यादि वस्तुओंसे हुआ होगा. परन्तु वह अनन्तकेलिये कोई निश्चित नाम न दे सके इसलिये वह उसको गर्जन करनेवाला, प्रकाश देनेहारा, आयुष्य देनेहारा, कहते थे. जब उन्होंने अनन्तका हाल अधिक जाना तब वह उसे कर्त्ता, राज्यकर्त्ता, आश्रयदाता, राजा, पिता, पति, अधिपति, देव, देवाधिदेव, कारण, कारणका कारण, आदि नामोंसे कहने लगे. और ज्यों ज्यों उनकी वुद्धि अनुभवसे अधिक अधिक विकास पाने लगी तव वह उसे अनन्त, अविनाशी, और अज्ञेय ऐसे नामोंसे कहने लगे.

इससे हमको क्या फल निकालना चाहिये? मनुष्य इन्द्रिय, वुद्धि, और श्रद्धा इन तीनोंके योगसे जो उसमें व्याप्त हैं धीरे धीरे अनन्त वस्तुओंके ज्ञानका सामर्थ्यी हुआ. यह अनन्त वस्तुओंके ज्ञानकी शक्ति कहीं अघटित व अकस्मात वस्तु न थी; यह केवल उत्तरोत्तर मनुष्य-क्रियाओंका परिणाम है. संसारमें सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वृद्धिको प्राप्त होते हैं. धर्म्मकाभी यही हाल है. सब धर्म्मोंकी उत्पत्ति एकसी है. वह अनन्तके जाननेकी इच्छा है. परन्तु धर्म्मकी वृद्धि मात्र लोककी रीतिके अनुसार निराली होती है. निम्नलिखित व्याख्यानमें भट्टमोक्षमूलर दिखलावेंगे कि यह वृद्धि आर्य्योंमें कैसे हुई. हमने इस प्रकारसे देखा कि धर्म्म कोई वस्तु है कि उसका होना सम्भव है और हमें उसकी आवश्यकता है. अनन्त वस्तुकी भावना एक वीज है जिससे धर्म्मरूपी पौधा उत्पन्न हुआ जो कि वढकर अव विशाल वृक्ष हो गया है.

धर्म्मकी रचना सृष्टिनियमानुसार है. इसमें कुछ अतर्क्य, अलौकिक किम्वा अद्भुत नहीं है. इसके द्वारा मनुष्यका उद्धार होगा वा न होगा, व इसके द्वारा हम संसार आवा गमनसे मुक्त हो जायंगे वा नहीं, और मेरा धर्म्म अच्छा है, तुह्मारा धर्म्म खोटा, ऐसा वृथा अभिमान करना परस्पर वंधुत्व तोडकर उचित है वा नहीं, ऐसे प्रश्न हमारे विषयसे कुछ सम्वन्ध नहीं रखते. प्रत्येक वाचक अपनी वुद्धि व अनुभव प्रमाण अपना समाधान कर लेगा.

---

घटते घटते इतना सूक्ष्म हो जाता है कि अन्तको श्याम रंगका स्वरूप वन जाता है. पहिलेके लोग रंगोंकी अनेक जातियोंको नहीं जानते थे. जान पडता है कि मनुष्यको पहिले दोई रंगोंका ज्ञान था अर्थात् श्वेत और श्याम. इन दोनों रंगोंको न्यूनाधिकताकेसाथ एक दूसरेमें मिलाने और एकके मध्यसे दूसरेको काढ़नेसे कितेक रंग उत्पन्न हो गये. यह कहा जा सक्ता है कि सबसे अधिक मनुष्य नीले रंगको जानते हैं परन्तु इस रंगकेलिये वेद मध्य व पारसियों-के धर्म्मशास्त्र ज्यंद व्यस्त मध्य व यूनानदेशीय धर्मपुस्तकोंमें कहीं कोई शब्द नहीं है. यूनान देशका प्रसिद्ध कवि होमर अपनी महा-काव्यमें इस रंगका वर्णन नहीं करता. ऐसेही ओल्ड और न्यू ट-स्टाम्यंटमें इसका वर्णन नहीं है. इसमें संशय नहीं कि इसमें हमको वडा आश्चर्य्य करना चाहिये. इससे प्रत्यक्ष है कि पूर्व्वकालके लोग नीले रंगको नहीं जानते थे. उनकी भाषाओंमें इसके वोधकेलिये कोई निराला शब्द नहीं था. भट्टमोक्षमूलरके मत प्रमाणसे यह निर्वि-वाद है इसलिये हम दृढताकेसाथ कह सक्ते हैं कि अनन्त वस्तुके वोधविना सान्त वस्तुका वोध होना असम्भव है. इस कल्पनाद्वारा और इतिहासिक परिणामकी सहायतासे हम मनुष्यधर्म्मके मूलको पहुंच जाते हैं.

हमने कई वार बडे बडे विद्वानोंको कहते सुना है कि मनुष्य मर्य्या-दित अथवा अल्प सामर्थ्य बुद्धि अनन्त वस्तु विषय विचार करनेमें असामर्थ्य है. इसलिये यही योग्य है कि धर्म्मपुस्तकोंमें अपना विश्वास करें. हमको कहना पडा कि यह मत हमारी वुद्धि और ज्ञा-नसे विरुद्ध है. कारण यह है कि इसमें वह शोधकवुद्धि नहीं है जिसके द्वारा मनुष्यकी वुद्धिकी उन्नति हो. ऊपरकी वातोंसे विदित है कि इन्द्रियजन्य ज्ञानसे मनुष्यमें श्रद्धा उत्पन्न होती है. इसलिये श्रद्धा सर्व सान्त पदार्थोंका ज्ञान है और इसलिये उन अनन्त पदार्थोंका —जो सान्त पदार्थोंके वाहर हैं—हमारे पूर्व्वजोंको अनन्तकी कल्पनाके पहिले सान्तहीका ज्ञान हुआ होगा. अनन्तका ज्ञान प्रथमतः पर्व्वत,

घटते घटते इतना सूक्ष्म हो जाता है कि अन्तको श्याम रंगका स्वरूप बन जाता है. पहिलेके लोग रंगोंकी अनेक जातियोंको नहीं जानते थे. जान पडता है कि मनुष्यको पहिले दोई रंगोंका ज्ञान था अर्थात् श्वेत और श्याम. इन दोनों रंगोंको न्यूनाधिकताकेसाथ एक दूसरेमें मिलाने और एकके मध्यसे दूसरेको काढ़नेसे कितेक रंग उत्पन्न हो गये. यह कहा जा सक्ता है कि सबसे अधिक मनुष्य नीले रंगको जानते हैं परन्तु इस रंगकेलिये वेद मध्य व पारसियों-के धर्म्मशास्त्र ज्यंद व्यस्त मध्य व यूनानदेशीय धर्मपुस्तकोंमें कहीं कोई शब्द नहीं है. यूनान देशका प्रसिद्ध कवि होमर अपनी महा-काव्यमें इस रंगका वर्णन नहीं करता. ऐसेही ओल्ड और न्यू ट-स्टाम्यंटमें इसका वर्णन नहीं है. इसमें संशय नहीं कि इसमें हमको बडा आश्चर्य्य करना चाहिये. इससे प्रत्यक्ष है कि पूर्व्वकालके लोग नीले रंगको नहीं जानते थे. उनकी भाषाओंमें इसके बोधकेलिये कोई निराला शब्द नहीं था. भट्टमोक्षमूलरके मत प्रमाणसे यह निर्वि-वाद है इसलिये हम दृढताकेसाथ कह सक्ते हैं कि अनन्त वस्तुके बोधविना सान्त वस्तुका बोध होना असम्भव है. इस कल्पनाद्वारा और इतिहासिक परिणामकी सहायतासे हम मनुष्यधर्म्मके मूलको पहुंच जाते हैं.

हमने कई बार बडे बडे विद्वानोंको कहते सुना है कि मनुष्य मर्य्या-दित अथवा अल्प सामर्थ्य बुद्धि अनन्त वस्तु विषय विचार करनेमें असामर्थ्य है. इसलिये यही योग्य है कि धर्म्मपुस्तकोंमें अपना विश्वास करै. हमको कहना पडा कि यह मत हमारी बुद्धि और ज्ञा-नसे विरुद्ध है. कारण यह है कि इसमें वह शोधकबुद्धि नहीं है जिसके द्वारा मनुष्यकी बुद्धिकी उन्नति हो. ऊपरकी बातोंसे विदित है कि इन्द्रियजन्य ज्ञानसे मनुष्यमें श्रद्धा उत्पन्न होती है. इसलिये श्रद्धा सर्व सान्त पदार्थोंका ज्ञान है और इसलिये उन अनन्त पदार्थोंका —जो सान्त पदार्थोंके बाहर हैं—हमारे पूर्व्वजोंको अनन्तकी कल्पनाके पहिले सान्तहीका ज्ञान हुआ होगा. अनन्तका ज्ञान प्रथमतः पर्व्वत,

किम्वा नदी, वृक्ष, विद्युत्, मेघगर्जना इत्यादि वस्तुओंसे हुआ होगा. परन्तु वह अनन्तकेलिये कोई निश्चित नाम न दे सके इसलिये वह उसको गर्जन करनेवाला, प्रकाश देनेहारा, आयुष्य देनेहारा, कहते थे. जब उन्होंने अनन्तका हाल अधिक जाना तब वह उसे कर्त्ता, राज्यकर्त्ता, आश्रयदाता, राजा, पिता, पति, अधिपति, देव, देवाधिदेव, कारण, कारणका कारण, आदि नामोंसे कहने लगे. और ज्यों ज्यों उनकी बुद्धि अनुभवसे अधिक अधिक विकास पाने लगी तब वह उसे अनन्त, अविनाशी, और अज्ञेय ऐसे नामोंसे कहने लगे.

इससे हमको क्या फल निकालना चाहिये? मनुष्य इन्द्रिय, बुद्धि, और श्रद्धा इन तीनोंके योगसे जो उसमें व्याप्त हैं धीरे धीरे अनन्त वस्तुओंके ज्ञानका सामर्थ्यी हुआ. यह अनन्त वस्तुओंके ज्ञानकी शक्ति कहीं अघटित व अकस्मात वस्तु न थी; यह केवल उत्तरोत्तर मनुष्य-क्रियाओंका परिणाम है. संसारमें सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वृद्धिको प्राप्त होते हैं. धर्म्मकाभी यही हाल है. सब धर्म्मोंकी उत्पत्ति एकसी है. वह अनन्तके जाननेकी इच्छा है. परन्तु धर्म्मकी वृद्धि मात्र लोककी रीतिके अनुसार निराली होती है. निम्नलिखित व्याख्यानमें भट्टमोक्षमूलर दिखलावेंगे कि यह वृद्धि आर्य्योंमें कैसे हुई. हमने इस प्रकारसे देखा कि धर्म्म कोई वस्तु है कि उसका होना सम्भव है और हमें उसकी आवश्यकता है. अनन्त वस्तुकी भावना एक बीज है जिससे धर्म्मरूपी पौधा उत्पन्न हुआ जो कि बढकर अब विशाल वृक्ष हो गया है.

धर्म्मकी रचना सृष्टिनियमानुसार है. इसमें कुछ अतर्क्य, अलौकिक किम्वा अद्भुत नहीं है. इसके द्वारा मनुष्यका उद्धार होगा वा न होगा, व इसके द्वारा हम संसार यात्रा गमनसे मुक्त हो जायंगे वा नहीं, और मेरा धर्म्म अच्छा है, तुह्मारा धर्म्म खोटा, ऐसा वृथा अभिमान करना परस्पर बंधुत्व तोडकर उचित है वा नहीं, ऐसे प्रश्न हमारे विषयसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखते. प्रत्येक वाचक अपनी बुद्धि व अनुभव प्रमाण अपना समाधान कर लेगा.

---

# पहिले, दूसरे व तीसरे व्याख्यानका सारांश ( खुलासा. )

हमारा धर्म कैसे हुआ ? इस प्रश्नसे वहुधा लोगोंको आश्चर्य होगा. मगर ऐसे सवाल वहुधा होते हैं कि हम उन पदार्थोंमें क्यों निश्चय करते हैं जिनको न हम अपनी इंद्रियोंसे, न बुद्धिसे जान सकते हैं. यह प्रश्न वहुत स्वाभाविक है, और वडे बडे तत्वज्ञानशास्त्रियोंको जिस कदर ध्यान इधर करना चाहिये था उतना उन्होंने नहीं किया. यह प्रथमवारी नहीं है कि ऐसा प्रश्न किया गया हो, बल्कि इसके पूर्वभी तत्वज्ञानवेत्ताओंने इस बातपर विवाद किया है; मगर वात यह है कि जिन लोगोंने धर्मपर विचार किया उन्होंने धर्मकी परिभाषा अच्छी तरह न की. श्लियरमेकरने धर्मकी परिभाषा यह लिखी है कि " धर्म वह है कि जिसमे अपनी निपट आधीनताका उसपर ज्ञान हो, जो हमको जान सके परन्तु हम उसके अन्तको न पावें."

विरोधियोंने अपने अपने कल्पित धर्मकी परिभाषा लिखी है. मगर एकने जो लिखा है दूसरेने उसे काट दिया है. मै ( मोक्षमूलर ) ने सन १८७३ इ० मे धर्मकी यह परिभाषा लिखी थीः—" धर्म वह मन ज्ञान जो इन्द्री और वुद्धिसे परे, तथा विरुद्ध होकर, मनुष्यको अनन्तके अगणित नाम और रूपोंके समझनेकी सामर्थ्य प्राप्त करता है."

इस ज्ञानके विना कोई धर्म नहीं हो सक्ता. वरन मूर्ति पदार्थ-पूजाभी नहीं हो सकती. यदि हम ध्यानसे देखें तो ज्ञान होगा कि सब धर्मोंमे इस वातकी बडी आकांक्षा है कि अज्ञातको जानें और अनन्तको समझें. अव यह देखना चाहिये कि धर्मज्ञानमे कोई ऐसी वात —चाहे जो सब धर्मोंमे व्यापक हो.—मैने इसको " अनन्त " कहा है और इससे मेरा प्रयोजन उस पदार्थसे है जो हमारी इन्द्रियों और वुद्धिसे जो वातें ज्ञात होती हैं उनका अन्त होता है, इसलिये मैने

मुनासिब समझा कि उस अनुमानको अनन्त कहूं. जो इंद्री और बुद्धि-से परे हैं. अब यह सवाल होगा कि जब हमारी विद्या इन्द्री व ज्ञान-पर आवश्यक है तो अनन्तको हम किस तरह समझ सक्ते हैं ? मेरा उत्तर यह है कि जब इन्द्रियों और बुद्धिसे हम सान्त पदार्थोंका ध्यान करते हैं तो उसीकेसाथ अनन्तकाभी संबंध होता है. मनुष्य पदार्थोंको एक मुख्य स्थानतक देख सकता है, और आगे उसकी दृष्टि काम नहीं करती. यहींपर अवश्य उसे अनन्तका ज्ञान हो जाता है. अनंतके देखनेमे हम न गिनते हैं, न नापते हैं, न नाम रखते हैं. हम नहीं जानते हैं कि वह क्या है ? मगर यह जानते हैं कि वह है अवश्य. क्यों कि एक पदार्थके अन्तपर पहुंचकर उससे अवश्य-ही संबंध हो जाता है. जितनेही ऊंचेपर हम चढते हैं, उतनीही दूरतक हमें दिखाई पडता है. मगर यह अनुमान तुर्त हमारे अन्तः-करणमें उत्पन्न हो जाता है कि जहांपर हमारी दृष्टि रुकती है उसके आगेभी और कुछ है. हमारीभी यही राय है कि मनुष्यको जो कुछ ज्ञात होता है वह इंद्रियोंसे होता है. मैभी यही कहता हूं कि हमको अनन्तका ज्ञान इंद्रियोंहीसे होता है. मैं इन व्याख्यानोंमे केवल आर्यावर्तके धर्मकी बुनियादका वर्णन करूंगा. आर्यावर्तकी पुस्तकोंमे इस कामके निमित्त जो जो बातें मिलैंगी वह कहीं न मिलैंगी. अबत-क आम तौरपर यह अनुमान है कि सब धर्मोंमे प्रथम पदार्थ-पूजा हुई.

डीब्रोसने लिखा है कि आफ्रिका, अमेरिका, और एशियामे "फिटिश" अर्थात् पदार्थपूजा प्राचीन जातियोंमे वर्तमान है. सं-सारमे जहां जहां लोग गये वहांके प्राचीन कौमोंके लोगोंने मतके बारेमे यही लिखा है कि वह पदार्थपूजा करते थे. विरुद्ध पदार्थोंका मिलाना अच्छा है मगर उनमे जो विरुद्ध है उसको अवश्य जान लेना चाहिये.

यदि पदार्थपूजा सब जगह है तो हमको यह खोजना चाहिये कि उसका कारण क्या है? यह नहीं हो सकता कि विरुद्ध जातियोंमे

पदार्थपूजा एकही कारणसे हो, जिससे यह परिणाम निकाला जाय कि संसारमे सबसे पहिले पदार्थपूजाहीसे धर्मारम्भ हुआ. कई उदाहरणोंसे प्रगट हो जायगा कि पदार्थपूजाके विरुद्ध मार्ग प्रतिस्थान थे. मरे कुटुम्बी या मित्रोंकी हड्डियां, या राख, या वाल, वडी रक्षासे पाकस्थानमें रक्खे जाते हैं; किसी प्राचीन शूर सिपाहीकी तलवारको या अपने या अपने वुजुर्गोंकी युद्ध विजयके पताकोंको वडी प्रतिष्ठासे नमस्कार करते हैं, और उनसे सहाय मांगते हैं, तो यह पदार्थपूजा है. किसी स्थानपर पत्थरकी पूजा इसलिये होती है कि वहांपर प्राचीन यज्ञस्थान था, या वहांपर कोई वडी लडाई हुई थी, या कोई राजा गाडा गया था, या वहांपर दो मुल्कोंकी सीमा है. इससे हमको ज्ञात होता है कि पदार्थपूजाके विरुद्ध कारण हैं. मैं यहभी दिखला सकता हूं कि पदार्थपूजा केवल उसी कालमे नहीं उत्पन्न हुई जब कि पहिले पहिले धर्म प्रसिद्ध हुआ.

मैं ईसाइयोंका हाल लिखता हूं कि कोई कोई मुल्कोंमें रोमन कैथलिक ईसाई सन्तोंकी मूर्तिसे कैसा वर्ताव करते हैं? एक पुर्तगीज मल्लाहने सन्त ऐन्थुनीकी मूर्तिको जहाजकी रस्सियोंमें लटका दिया और नमित होकर आशिष मांगी कि " हे सन्त अन्थुनी, जबतक तुम अच्छी वायु न चलाओ तबतक तुम वहीं टंगे रहो. "

इसी तरह एक स्पेनके मल्लाहने वर्जिन मेरी ( ईसाकी मा ) की मूर्तिको डोरियोंमे यह कहकर बांध दिया कि जबतक ये अच्छी हवा न चलावें वहीं बंधी रहें.

नियापालिटन् अपने सन्तोंके कोडे लगाते हैं, जबतक उनकी आशा पूर्ण नहीं होती. रूसी किसान अपने देवताओंकी मूर्तिपर वस्त्र ढांप देते हैं जब कोई कुकर्म करते हैं. " इसकोभी पदार्थपूजा कह सकते हैं. ऐसी पूजा बहुत पीछेसे हुई, और ईसाई मत पहिलेसे था. यहांपर साफ मालूम होता है कि यह वात आवश्यक नहीं है कि सबसे पहिले पदार्थपूजाही आरंभ हुई हो. इसी तरह संभव है कि अन्य देशोंमेंभी पदार्थपूजा पीछे हुई हो." यह ख्याल छोड देना

चाहिये कि धर्मोंका मूल पदार्थपूजाही है, और यह देखना चाहिये कि हमारी इंद्रियोंपर वह कैसा असर पड़ा था जिससे हमारे मनमें अनन्त व दिव्यका ज्ञान उत्पन्न हुआ.

## आर्यावर्तका प्राचीन ग्रंथसंग्रह.

आर्यावर्तसे वढकर और किसी देशमे हम धर्मकी जड व उन्नति नहीं पा सक्ते. हिन्दुस्थानमे हम देख सकते हैं कि धर्मके अनुमान व धर्मकी भाषा कैसे उत्पन्न हुई, उन्होने किस तरह जोर पकडा, व कैसे फैले, और उनकी शकलमें तबदीली होती गई, मगर मुख्य मूलके चिन्ह सबमे शेष रहे. मैंने अपनी आयु पवित्र संस्कृत पुस्तकोंके पढनेमे लगाई और मैं कह सक्ता हूं कि उनसे धर्मकी जड व उन्नति उसी तरह ज्ञात होती है जैसे कि भाषाओंकी उन्नति संस्कृतसे हुई.

संस्कृतमे हाथकी लिखी प्राचीन पुस्तकें दससहस्र उपस्थित हैं. ये वहुत प्राचीन पुस्तकें हैं. और वेदोंमें जो वातें लिखी हैं विना उनके दुनियांके इतिहास पूरे नहीं हो सकते. वौद्ध समयके पूर्व तीन चार स्वरूप संस्कृतके हुए. पहिले सूत्रकाल है, इस समयकी संस्कृत वहुत अल्पाक्षरी व मंत्रासारखी हैं, जिसका अर्थ विना टीकाके हमारी समझमे नहीं आ सकता. ब्राह्मणोंका वाक्य है कि सूत्रकारको एक अक्षरके कम करनेमे एक पुत्रोत्पादनकी प्रसन्नता प्राप्त होती थी.

इन सूत्रोंमे वह वातें जमा की गई हैं जो परिषदोंमें फैली हुई हैं. इनमे यज्ञके नियम, स्वरशास्त्र और शब्दव्युत्पत्ति, व्याकरण, वृत्त-शास्त्र, धर्म, व्यवहार, भूमिति, ज्योतिष, तत्वचिंताका वर्णन है. इन सवमे स्वतंत्र विचार व स्वतंत्र कल्पनाएं लिखी हैं, जिनके विना किसी विद्यार्थीको पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता. यज्ञ व कर्मका-ण्डका हाल इनमे वहुत अच्छी तरहसे लिखा गया है. स्वरशास्त्रमे जो वातें लिखी हैं वह ऐसी हैं कि उनसे वढकर आजतक किसी देशके शास्त्रीने कोई वात नहीं लिखी. पाणिनिके सूत्रोंसे वढकर कोई उत्तम और परिपूर्ण व्याकरण दुनियांकी किसी भाषामे नही है. वृत्त-

शास्त्रमे वह बातें लिखी हैं जिनको आजकलके लोग बडे अभिमानसे अपनी विज्ञापना समझते हैं, अर्थात् यह कि वृत्त नाचने व रागसे संबंधित हैं. संस्कृतमे वृत्तके जो नाम रक्खे गये थे उनसे यह बात साबित होती है जैसे " छन्दस " पग उछालना. इसी तरह वृत्त जिसके अर्थ फिरना है और जो गति नाचनेके ३–४ आन्तिक पग तालोंको कहते थे.

"त्रिष्टुभ" वेदमे एक प्रकारका छन्द है जिसके अर्थ त्रिपाद हैं. इसी तरहपर मैं आर्य ज्योतिष व आर्य भूमिति जो सूत्रोंमे लिखी हैं उनके बारेमे नहीं कह सकता हूं. इसमे सन्देह नहीं है कि पुरानी आर्य्य ज्योतिष सत्ताईस नक्षत्रोंके आधारसे थी, और यज्ञकी रचनाकेलिये, आर्य भूमिति थी. शुल्वसूत्रमें एक सिद्धांत है कि एक गोल वेदीके बराबर एक चतुष्कोण वेदी कैसे बन सक्ती है? यह प्रथम समय था जब भूमितिका यह सिद्धान्त पूरा हुआ होगा कि वृत्ताकार चतुष्कोण कैसे हो सक्ता है. व्योहारसम्बन्धी नियम, जो विवाह, जन्म, उपनयन, प्रेतसंस्कार, शिक्षणपद्धति, दायभाग, सरकार देन, व राज्यव्यवस्थाके विषयमें गृह्य व धर्मसूत्रोंमें मिलेंगे उससे उत्तम कहीं नहीं मिलेंगे. मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पाराशरस्मृति, आदि ग्रंन्थोंके मूल वही गृह्य व धर्म्मसूत्र हैं. इन्ही सूत्रोंके कई भाग तत्वज्ञान विषयमें हैं जिनमें ऐसी ऐसी बातें लिखी हैं कि उनको पढकर आजकलके बड़े बड़े तत्वज्ञानवेत्ता आश्चर्य करेंगे.

२. सूत्रकालके पहिले ब्राह्मणकाल था. जब ग्रंथ गद्यात्मक लिखे जाते थे, भाषा कुछ निराली होती थी, और उनका हेतुभी निराला होता था. इनमें मुख्यकर यज्ञका हाल लिखा है. सूत्रोंमें बहुत जगह ब्राह्मणोंका हवाला दिया है. ब्राह्मणोंका बहुत बड़ा हिस्सा वह है, जिसे आरण्यक कहते हैं और जिसमें उस मानसपूजाका हाल लिखा है जो वानप्रस्थ या जंगलके रहनेवाले करते थे, और इसके अन्तमें उपनिषद हैं जिनमें हिन्दुओंके तत्वज्ञानका हाल लिखा है. सूत्रकाल सन ईसवीके छःसौ वर्ष पहिले था व ब्राह्मणकाल आठसौ वर्ष पहिले होगा.

३. ब्राह्मणकालके पहिले मंत्रकाल था, जिसमें वह मंत्र इकट्ठा किये गये थे जो चार संहिताओंमें हैं जिनको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, व अथर्ववेद कहते हैं. सामवेदमें वह मंत्र लिखे हैं जो गानेवाले उपाध्याय ( उदगातृ ) गाते थे, यजुर्वेद संहितामें वह मंत्र हैं जो यज्ञ करानेवाले गुरु ( अध्वर्यु ) पढ़ते थे. ऋग्वेद संहितामें वह मंत्र लिखे हैं जो होत्री गुरु पढ़ते थे. परंतु इसमें औरभी पवित्र व लोकप्रिय कविताई है. अथर्ववेद संहितामें बहुतसे मंत्र ऋग्वेदके लिखे हैं, और बहुतसे मंत्र, तंत्र, जादू, व वीरविद्या, इत्यादिका हाल लिखा है.

४. एक हजार वर्ष सन ईसवीके पहिले छंदकाल होगा जब कि ऋग्वेदकी काव्य हुई होगी. कोई कोई विद्वज्जन कहते हैं कि यह काल दो तीन हजार वर्ष सन ईसवीसे पहिले था. जो कुछ हो; एक बातमें संदेह नही है कि ऋग्वेदके मंत्रोंसे बढकर हिन्दुस्तानमें क्या, तमाम आर्य्य दुनियामें ( जहां जहां आर्य्य लोग विस्तारित हुये ) कोई प्राचीन ग्रंथ नहीं है.



## व्याख्यान चौथा.

---

### स्पृश्य, अर्द्धस्पृश्य व अस्पृश्य पदार्थोंकी पूजा.

हमको ठीक ठीक समझ लेना चाहिये कि हमको किस स्थानसे चलना है और किस स्थानपर पहुंचना है और किस मार्ग होके जाना है? हम उस स्थानपर पहुंचना चाहते हैं जहांसे धर्मविषयक कल्पनाकी जड़ पड़ी है. लेकिन हम उस घिसे हुये मार्ग होकर नहीं जाना चाहते, जिसके बाईं ओर पदार्थपूजा (Fetish theory) है और दाहिनी ओर आगम अर्थात् आप्तोपदेश हैं.

हम एक ऐसी राहकी खोज करना चाहते हैं कि जिसमें हम ऐसी जगहसे रवाना हों जिसको सब लोग स्वीकार करें अर्थात् उस विद्यासे, जो पांचों इंद्रियोंसे हासिल होती है, और वह मार्ग ऐसा है कि यद्यपि हम धीरे धीरे क्यों न जायें परन्तु वह मार्ग हमको उस पदार्थके निश्चयको पहुंचा देगा कि जिसको हम पांचों इंद्रियोंके द्वारा नहीं जान सकते. अर्थात् अनन्त, अदृश्य, दिव्य रूपसे विरुद्ध स्वरूपमें.

### धर्मका प्रमाण सदैव इंद्रियोंकेही द्वारा नहीं.

चाहे और बातोंमें अन्तर हो लेकिन इस बातपर सब मतोंका सिद्धान्त एकही है कि उनका सारा प्रमाण इंद्रियज्ञानवाले पदार्थोंसेही नहीं है. यही बात पदार्थपूजा (Fetish worship) मेंभी है. क्यों कि उस पूजामें पूजनेवाला केवल एक मामूली पत्थर नहीं पूजता जो केवल इसी लायक हो कि उसको छू सकें, या हाथमें ले सकें. किन्तु उसमें कोई औरभी ऐसा अनुमान किया जाता है कि जिसका ज्ञान हमारे हाथ, नाक, कान आदि द्वारा नहीं हो सकता.

इसका कारण क्या है? वह इतिहास संबंधी परंपरासे चला हुआ क्या है, जिससे यह निश्चय हो जाता है कि सिवाय उन बातोंके जो हमारी इंद्रियोंसे जानी जाती हैं कोई और पदार्थभी ऐसा है या हो

सकता है जो अदृष्ट, अनन्त, अद्भुत, दिव्य हो? निस्संदेह यह हो सकता है कि यह अनुमान बिलकुल अशुद्ध और भ्रान्तिक हो कि अदृष्ट, अनन्त, और दिव्यभी कुछ है. जो ऐसा है तो औरभी आवश्यक है कि हम यह ढूंढें कि जो लोग प्रकटत: अन्य सब बातोंमें जानकार हैं इस एक बातमें सृष्ट्यारम्भसे आजतक क्यों अज्ञान रहे? हमें इसका जवाब चाहिये. नहीं तो हमको यह समझकर मनका व्याख्यान छोड देना पडेगा कि बिलकुल इस लायक नहीं है कि उसका शास्त्रानुसार प्रतिपादन हो.

### बाह्य प्रतिपत्ति अथवा आगम.

यदि हम यह समझे कि केवल शब्दोंके वर्तनेसेही हमारा इच्छित मिल जायगा तो हम यह कहेंगे कि सारे मत संबंधी अनुमान जो इंद्रियोंकी पहुंचसे बाहर हैं उनकी जड़ परमेश्वरकी शिक्षासे हैं. यह बात कहनेमें अच्छी मालूम होती है और बहुत कम मत ऐसे हैं कि जिनमें ऐसी तर्कना नहीं की जाती, लेकिन यह मालूम हो जायगा कि यह तर्कना ( दलील ) हमको उन कठोरताओंके दूर करनेमें बहुत कम सहाय देती है जो उसवक्त होते हैं. जब हम मतोंके अनुमानकी जड़ और उसकी उन्नतिको इतिहासिक तौरपर बहुत अच्छी तरह जानना चाहते हैं. जैसे हम किसी पत्थर पूजनेवालेसे पूछें कि तुमको क्या मालूम है कि इस पत्थरमें सिवाय मामूली पत्थरके कोई और पदार्थ है? तब यदि वह पुजारी ऐसा कहे कि इसी पाषाणमूर्तिनेही हमे यह सूचित किया है. तो हम इसका क्या जवाब देंगे? "बाह्य प्रतिपत्ति अथवा आगम" नियममेंभी ऐसाही वादविवाद है चाहे हम उसे किसी रूपमें दर्शाएं.

आदमीको कैसे मालूम हुआ कि देवता हैं? ( उत्तर ) स्वयं देवोंने उसे यह बात बताई.

यह कल्पना आजकलकी भली बुरी सब कौमोंमें पायी जाती है. आफ्रिकाकी जातियोंमें यह बात सदैव कही जाती है कि "पूर्व-

कालमें आकाश मनुष्योंसे अधिक नगीच था और सबसे बड़ा देवता उत्पन्नकारक मनुष्योंको बुद्धिमानीकी बातें सिखाता था; परन्तु पीछेसे अब वही देवता मनुष्योंसे अलग होकर आकाशमें रहता है." हिन्दूभी यही कहते हैं ( ऋग्वेद १–१७८,२,७,७६,४ ) इसी तरह युनानी लोगभी देवोंके माननेमे अपने प्राचीन पुरुषोंकी बातको मानते हैं इस ख्यालसे कि वह लोग देवताओंसे मिलजुलकर रहते थे. लेकिन प्रश्न यह है कि देवोंकी कल्पना या और किसी ऐसे अदृश्य पदार्थकी कल्पना पूर्वके मनुष्योंके या पूर्वसे पूर्व हमारे प्राचीन पुरुषोंके हृदयमे कैसे पैदा हुई?

मुख्य विचार यह है कि मनुष्यको 'देव'का शब्द कहांसे मिला? क्यों कि प्रथम देवका शब्द बना होगा तब वह दृश्य या अदृश्य पदार्थोंकेलिये वर्ता गया होगा.

### अंतःप्रतिपत्ति किंवा अन्तर्ज्ञान.

जब यह मालूम हुआ कि अनन्त या अदृश्य, या दिव्यकी कल्पना बाहिरी असरसे हमारे दिलमें नहीं जमेगी तो यह सोचा गया कि यह कठिनता एक और शब्दके वर्तनसे दूर हो जायगी. यह कहा गया कि मनुष्यमे मतकी कल्पना होनेकी प्रकृतिही होती है कि जिसके द्वारा जीवधारी जन्तुओंमेंसे केवल उसीको अनन्त, अदृश्य, व दिव्यके जाननेकी शक्ति होती है. यदि इस उत्तरको हम पदार्थपूजकीय भाषामे उल्था करें तो मैं कह सक्ता हूं कि हमको अपनी वास्तविक अवस्थापर अचम्भा होगा. अगर एक जंगली आशान्टी हमसे यह कहे कि वह अपनी आत्मज प्रकृतिसे जान सकता है कि उसकी मूर्तिमे सिवाय पत्थरके कुछ औरभी है. तो हमको आश्चर्य होगा कि युरोपियन शिक्षाके प्रतापसे यह निरर्थक शब्द वर्ता जाता है. मतमतांतरोंकी कल्पनाके समझानेकेलिये यह मान लेना कि एक आत्मज प्रकृति है कि जो हमारी इंद्रियोंके जाननेसे बाहर है ऐसाही होगा जैसे भाषाकी जड़ समझानेकेलिये बोलनेकी प्रकृति है या गणितकी मुख्यताकेलिये गणितकी प्रकृतिका मानना है.

यह वही पुरानी कहावत होगी कि अमुक औषधसे निद्रा आ जाती है क्यों कि उसकी प्रकृतिही निद्रा लानेकी है. मै इससे इन्कार नहीं करता कि इन दोनों उत्तरोंमे सत्यताकाभी कण ( लेश ) है. लेकिन इस कणको झूठके झुंडसे निकाल लेना चाहिये. ताकि समझनेमे भूल न हो. हम इन दोनों शब्दोंको अब न वर्तेंगे.

अब हमने उन पुराने ( पुलों ) सेतुओंको ढहा दिया जिनपर होकर हम उन कठोरताओंसे भाग जाते थे. जो मतसंबंधी कल्पनाओंकी असलियत जाननेमे होती हैं. अब हमको आगे बढ़ना चाहिये और देखना चाहिये कि ऊपरके दोनों उत्तरोंकी सहायके बिना हम कहांतक धार्मिक कल्पनाकी जड़ जान सकते हैं ?

हमारेपास पांचों इंद्रियां हैं और हमारे सामने सब दुनिया है जिसको हम सब इंद्रियोंसे जान सकते हैं. प्रश्न यह है कि इस दुनियांके बाहर हम कैसे पहुंचते हैं या हमारे आर्यपुरुष कैसे पहुंचे ?

## अपनी इन्द्रियां और उनकी साक्षी.

हमको आरम्भसे चलना चाहिये. जिस पदार्थको हम पांचों इन्द्रियोंके द्वारा जान सकते हैं उसे वास्तविक व स्पष्ट कहते हैं. निदान बहुतेक प्राचीनकालीय मनुष्योंका यही कथन था और हमको यहांपर यह प्रश्न करना उचित नहीं कि हमारी इन्द्रियां यथार्थही हममें वास्तविक ज्ञान उत्पन्न करती हैं. हमारा अभिप्राय इस समयमें बर्क्ले व ह्यूम व ईपिडोक्लीस व झेनोफॅनीस आदिसे नहीं किन्तु प्राचीन वनान्त अथवा गुहावासियोंसे है. आरंभकाळके मनुष्योंकीभी यही कल्पना थी की जिस हड्डीको वह छू सकता, व सुंघ सकता, व स्वाद ले सकता था, वा देख सकता था, और आवश्यकताके समय तोडकर सुन सकता था, वह उसकेलिये आवश्यक पदार्थ था. हमको उस वक्तके लोगोंमेभी इन्द्रियोंके दो भेद करना चाहिये अर्थात् छूने, सूंघने, और चखनेकी इन्द्रियां, और देखने व सुननेकी इन्द्रियां.

पहिली तीन इन्द्रियोंसे किसी पदार्थके होनेको अधिक पुष्टता होती

है. आखिरी दो इन्द्रियोंसे कभी सन्देहभी हो जाता है जिसकी पुष्टता पहिली उक्त तीन इन्द्रियोंसे करनी होती है. छूनेसे बहुत पुष्ट प्रमाण पदार्थका मिलता है. यह सबसे नीची और एक तरहपर पुरानी इन्द्री कही जाती है. सूंघने और चखनेकी इन्द्रियां इसके पीछे हैं. सूंघनेसे जानवर और चखनेसे लडके और पदार्थोंकी पुष्टता कर लेते हैं. बहुतसे जानवरोंको पदार्थोंकी अस्लियत सूंघनेसे मालूम होती है, परन्तु यह इन्द्री मनुष्योंके बहुत कम काम आती है. लडका तो सूंघनेसे बहुत कम काम लेता है, लेकिन किसी पदार्थके जाननेकेलिये वह पहिले उसे छूता है और पीछेसे यदि बन पडे तो मुखमे रख लेता है. कुछ आयु गत होनेपर यह स्वभाव तो छूट जाता है लेकिन स्पर्श कर हाल जाननेका स्वभाव बढता जाता है. अबभी बहुतसे लोग ऐसे हैं जो यह कहेंगे कि जिस पदार्थको वह छू नहीं सकते वह पदार्थही नहीं है. लेकिन यही बात सूंघने और चखनेके बारेमे न कहेंगे.

### "व्यक्त" किंवा "स्पष्ट" इस शब्दका अर्थ.

भाषासेभी हमको यही ठीक मालूम होता है. जब हम यह कहना चाहते हैं कि कोई पदार्थ अवश्य है जिसमे सन्देह नहीं हो सकता. तो हम कहते हैं कि वह व्यक्त अथवा स्पष्ट (Manifest) है. जब कि रूमियोंने वह शब्द बनाया तो वह इसका अर्थ जानते थे. इससे मतलब वह पदार्थ था जिसको हाथसे छू सकें या मार सकें. पुरानी क्रिया फेण्डो ( Fendo ) है जिसका अर्थ मारना है. यही क्रिया (offendo) किंवा (Defendo) मे है जिसका अर्थ किसीको मारना या हटाना है. (Festus) असलमे (Fend) व tus दोनों शब्द मिले हुए हैं जैसे ( Fustis ) वास्ते Fostis, Foustis, fond-tis के है ( Fendo, Fustis) व ( Festus) शब्द Dhan या Han से बना है जिसका अर्थ मारना है. जैसे "हन"=मारना, "निधन" =मृत्यु इत्यादि. अब हमे उन चीजोंको देखना चाहिये, कि जिनको पृथ्वी-परके प्राचीन लोगभी वास्तविक पदार्थ कहते थे. जैसे पत्थर, हड्डी,

शंख, वृक्ष, पर्वत, नदी, जानवर, आदमी, अवश्य पदार्थ होंगे. क्यों कि इनपर हाथ मार सकते थे. जितने पदार्थ कि उनको इंन्द्रियोंसे मालूम होते वे सब अवश्य पदार्थ थे.

### इन्द्रियज्ञेय पदार्थोंके स्पृश्य व अर्द्धस्पृश्य ऐसे दो भेद.

जिन पदार्थोंको हम इन्द्रियोंके द्वारा जान सकते हैं उनकी दो किस्मे कर सकते हैं:—

( १. ) कई एक पदार्थ—जैसे, कंकड, हड्डी, कौडी, फूल, बेर, लकड़ीकी शाखें, पानीके बूंद, मिट्टीके लोंदे, जानवरोंकी खाल, और स्वयं जानवर ऐसे हैं कि जिनको हम अच्छे प्रकार सम्पूर्ण स्पर्श कर सकते हैं. ये पदार्थ सम्पूर्ण हमारे सन्मुख होते हैं. ये पदार्थ हमारे ग्रहण करनेमें पूर्ण रूपसे आते हैं. अग्राह्य नहीं. इनमे ऐसा कोई पदार्थ नही है कि जिसको हम नहीं जानते हैं वा जानभी न सकते हों.

प्रथम ये शब्द आगेके मनुष्योंमें सदैव घर घरमे वर्ते जाते थे. ( दूसरे ) लेकिन वृक्ष, पर्वत, नदी, पृथ्वी, आदिका व्योरा और है.

### वृक्ष.

पूर्वकालके जंगलमें वृक्ष एक बड़ा भयंकर पदार्थ था उसमेभी कई बातें भयदायक थीं. उसकी गहरी जडें हमारी पहुंचसे बाहर थीं व उसकी चोटी हमसें ऊंचेपर.

हम उसके नीचे खडे हो सकते हैं, उसे छू सकते व देख सकते हैं, लेकिन हमारी इंद्रियां एकही दृष्टिमें उसका सारा हाल नहीं जान सकतीं. इसके पश्चात् जैसा अबभी कहा जाता है कि वृक्षमें जान है किन्तु उसकी धन्नी वे जान है. पुराने मनुष्योंके मनमेंभी यही अनुमान थे, परन्तु वे इसको इसी तरहपर कह सकते थे कि वृक्ष सजीव है. ऐसा कहनेसे उनका यह प्रयोजन था कि उसमे स्वासोच्छ्वास होता था अथवा नाडिका चलती थी, लेकिन इसमे शक नहीं कि जब वह यह देखते थे कि वृक्ष उनके नेत्रोंके सन्मुख बढ-

ता है, और शाखें फूटती हैं, पत्तियां निकलती हैं, कलियां खिल-ती हैं, फल लगता है, वसन्तमें पति झाड़ हो जाता है, और अन्तमे वह काट डाला जाता है, या मार डाला जाता है, तव वह इस वातको मानते थे कि वृक्षमे कोई औरभी ऐसी बात है जो उनकी इंद्रियोंके द्वारा जाननेसे वाहर है, और जिसको वे नहीं जानते हैं, और वह वात अद्भुत है परन्तु है यह अवश्य.

उनमे जो लोग विचारवान् थे उनको बराबर आश्चर्य रहता था कि वह कौन पदार्थ है जिसको हम नहीं जानते. अपनी इन्द्रियोंसे वे उसको मालूम करते थे परन्तु फिरभी वह उनसे अन्तर्ध्यान रहता था.

## पर्वत.

इसी तरहका आश्चर्य पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वीके देखनेसे होता था. पर्वतके नीचे खडे होकर जो हम उसकी चोटीको देखें, जो मेघमंडलमे अन्तर्ध्यान रहती है तो हम देवके सामने वौने ( छोटा मनुष्य ) से मालूम होते हैं. ऐसे पर्वतभी हैं कि जिनपर हमारी पहुंच नहीं और जो लोग उस पर्वतकी खोहोंमें रहते हैं उनकी समझमे दुनि-या इतनीही है. उषा, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वतसे निकलते जान पड़ते हैं, आकाश पर्वतपर ठहरा हुआ मालूम होता है, जब हम उनकी सबसे वडी ऊंची चोटीपर पहुंच जाते हैं तव मालूमही होता है कि हम एक नई सृष्टिके द्वारपर पहुंचे. हमें अपनी युरोपकी घनी वस्तीका ध्यान न करना चाहिये, और न आल्पेन पर्वतका वरन. हमको उस देशमें देखना चाहिये जहां वेदके मंत्र पहिले जिव्हासे निकले व जहां हूकर साहाबने एक जगहसे वीस चोटियां पालाहीकी देखीं थीं, जो वीस वीस सहस्र फीटसे अधिक ऊंची थीं, और जिनपर आकाश व पृथ्वीके संयोगका नीला वृत्तार्ध १६०° अंशतक फैला है. ऐसे मन्दिरके सामने पुष्टसे पुष्ट अन्तःकरण अनन्तकी वर्तमानताका ध्यान करके कांप उठेगा.

## नदी.

पर्वतोंके वाद झरना, और नदी हैं. नदी शब्दसे हम संपूर्ण कोई पदार्थ नहीं जान सकते. हम देखते हैं कि ढेरों पानी हमारे मकानकेपाससे वहता चला जाता है लेकिन हम पूरी नदी कभी नहीं देख सकते. वह नदी हमारे ध्यानमे सामान्य पदार्थ है परन्तु हमारी पांचों इन्द्रियां उसके आदि अन्तको कभी नही जान सकतीं.

सेनिका ( नाम तत्वज्ञ मनुष्यका ) अपनी एक चिट्ठीमें लिखता है कि " वडे वडे दर्याओंके उगम विषयोंको हम देखते हैं तो एक प्रकारका पूज्यभाव उत्पन्न होता है. हम उस नदीकेलिये एक मंदिर वनाते हैं जो अचानकही वहुत वेगसे अंधेरे स्थानसे निकलती हैं. हम गर्म पानीके सोतेको पूजते हैं, और वहुधा झीलोंको पवित्र पूजनीय समझते हैं क्यों कि वे अंधेरेमें अथाह गहरी हैं. " चाहे इसका ध्यान नदीके तटवासियोंको न हुआ हो कि इससे ये लाभ हैं कि खेत सदैव हरे रहते हैं, जिनसे वहुत जीव जन्तुओंको चारा मिलता है, मनुष्योंकी रक्षा किलेसे अधिक होती है–शत्रुके धावा ( डांका आदि ) से वचाती है–अधिक वेगको प्रवाहवाले नदसे, व जिसमे लोग डूबकर मर जाते हैं; तोभी धाराहीके देखनेसे जो पथिककी नाईं नहीं जान पडती कि कहांसे आती है और कहांको जाती है ? लोगोंको यह कल्पना अवश्य हुई होगी कि सिवाय उस धरतीके खंड के जहां हम रहते हैं औरभी है, और ऐसे पदार्थभी उसके चारों ओर हैं जो अदृष्ट, अनन्त, व दिव्य हैं.

## पृथ्वी.

हम जहांपर खड़े होते हैं उससे अधिक और क्या प्रमाण पृथ्वीके होनेका दें ? लेकिन जो हम एक कंकड़ व सेव आदिको लेकर सम्पूर्ण पृथ्वीका ध्यान करते हैं तो हमारी वुद्धि क्या, हमारे उन पूर्व पुरुषोंकी वुद्धि नहीं काम करती, जिन्होंने ये शब्द पैदा किये थे.–धरती

केवल एक नाम था परन्तु जिस पदार्थका वह नाम था उसे देखनेसे उसकी सीमा नहीं मालूम होती, वरन वह ऐसा पदार्थ था कि जो पृथ्वी आकाशके संयोग ( मिलाफ ) के बाहरभी था, और थोडा भाग दिखाईभी पड़ता था, परन्तु सम्पूर्ण हिस्सा उसका नहीं दिखाई पड़ता था. ये बातें जो प्राचीन लोगोंने पूर्वकालमे जानी थीं, अब बहुत तुच्छ मालूम होंगी लेकिन इनसे हम यह जान सकते हैं कि उनका ध्यान किस ओर चला ? इन्हीं मार्गोंसे मनुष्य ससीम पदार्थोंके ध्यानसे जिन्हे वह हाथमे ले सकता था उन पदार्थोंके जाननेको पहुंचा जो पूरे ससीम न थे और जिनको वह नाप नहीं सकता था, और न पूरा देख सकता था. यह मार्ग पहिले बहुत छोटा था परन्तु इसीसे असीम और अज्ञातका ध्यान पैदा हुआ, इसी मार्गसे उसे असीम और ईश्वरका ध्यान हुआ.

## अर्द्धस्पृश्य पदार्थ.

हम इस दूसरे भेदको अर्द्धस्पर्शवाले पदार्थ कहते हैं और पहिले प्रकारको स्पर्शवान् पदार्थ कहते हैं. यह दूसरा भेद बहुत बड़ा है और जो बातें इनमे मालूम होती हैं उनमें बहुत अन्तर होता है.

फूल या छोटा वृक्ष, इस भेदमें नहीं आ सकता क्यों कि इनमें कठोरतासे कोई ऐसी चीज है जो हमारी इन्द्रियोंसे नहीं मालूम हो सकती, लेकिन और बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जिनमे जाना हुआ भाग बहुत कम है और अन जाना बहुत है. जैसे धरती. यह ठीक है कि उसे सूंघ सकते हैं, चख सकते हैं, छू सकते हैं, देख सकते हैं, और सुन सकते हैं, लेकिन हम उसके थोडे हिस्सेके सिवाय अधिक नहीं देख सकते, और पूर्वकालके लोग पूरी धरतीका ध्यान बडी कठिनतासे कर सकते थे. वे अपने निवासस्थानके निकट मिट्टी, खेतकी घास, जंगल, या बहुधा स्थानपर पर्वत देखते थे, मगर यहींतक सीमा थी. धरती और आकाशके संयोगके उस ओर वे नहीं देख सकते थे या केवल विचारके नेत्रोंसे देख सकते थे. यह केवल शब्दोंका वर्ताव

नहीं है वरन हम स्वयं इसे निश्चय कर सकते हैं. जब हम पर्वतकी चोटी-पर खडे होकर इधर उधर देखते हैं तो हमको पहाडकी शेष चोटियां और बादल दिखाई पडते है. इनके उसपारभी देखनेको पदार्थ हैं, परंतु हमारी आंखें उनको नहीं देख सकतीं. यह फल बुद्धिहीसे नहीं मिलता वरन हमारे ध्यान करनेसेभी जान पडता है कि उधरभी कुछ है. इस अनुमानसे कि हम एक बंधी हुई सीमाहीतक देख सकते हैं हमें यह ध्यान हो जाता है कि इसके पारभी कुछ है. हमारी इन्द्रियोंके सामने दृश्य, स्वदृश्य, असीम होते हैं; क्यों कि असीम वही पदार्थ नहीं है जिसका सीमा न हो, किन्तु हमारे और हमारे पुरुषोंकेलिये असीम वह पदार्थभी है जिसकी हद हमको अज्ञात हो.

## अस्पर्श पदार्थ.

अब हम आगे चलते हैं. उन सब पदार्थोंका थोडा भाग हमारी इन्द्रियोंसे हमे मालूम होता है जिनको अर्द्धस्पर्शवान् पदार्थ कहते है जिनको हम हाथोंसे छू सकते हैं.

अब हम एक तीसरे भेदका वर्णन करते हैं. इसमें यहभी नहीं हो सकता है, और जिनको हम देखते, या सुनते हैं, मगर हाथ नहीं लगा सकते. उनकी ओर हमारा क्या ध्यान है? अलबत्ता इससे आश्चर्य हो कि संसारमें ऐसे पदार्थभी हैं कि जिनको हम देख सकते हैं परन्तु छू नहीं सकते. लेकिन संसार ऐसे पदार्थोंसे भरा है. बहुतसे लोग बादलोंको केवल देख सकते हैं परन्तु छू नहीं सकते. अगर पहाडी देशोंके ध्यानसे बादलोंको कम स्पर्श कहें तो आकाश, चन्द्र, नक्षत्र, सूर्य ऐसे हैं कि हम उनको देखते हैं परन्तु छू नहीं सकते.

इस तीसरे भेदको मैं " अस्पर्श " पदार्थ कहूंगा. इस प्रकार मैंने पदार्थोंको तीन भेदोंमे बांटा, जिनको हम अपनी इंद्रियोंसे जान सकते हैं परन्तु उनसे तीन विरुद्ध प्रकारके असर हृदयपर होते हैं.

१. स्पर्शवान्—जैसे कंकड, कौडी, हड्डी आदि. कोई कोई लोगोंका अनुमान है कि पूर्वकालमें धर्मका अनुमान ऐसेही पदार्थोंसे प्रारंभ

हुआ और वही पदार्थ सबसे पहिले पूजे गये जो ससीम थे.

२. अर्द्धस्पृश्य पदार्थ—जैसे झाड़ें, पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी, आदि. इन्ही पदार्थोंसे यह अनुमान पैदा हुआ जिनको आगे बढकर हम " अर्द्धदेवता " लिखेंगे.

३. अस्पृश्य पदार्थ—जैसे आकाश, नक्षत्र, सूर्य, उषा, चंद्र, आदि. इन्ही पदार्थोंसे उनकी जड़ पड़ी है जिन्हे हम आगे बढ़कर "देवता" के नामसे लिखेंगे.

### प्राचीन मनुष्योंकी साक्षी कि उनके देवता क्या थे?

पहिले हम प्राचीन लोगोंके उन वाक्योंपर ध्यान देंगे कि जिनसे यह जान पडेगा कि वे देवतासे क्या समझते थे.

एपिच्चारमाँसका सिद्धान्त है " आंधी, पानी, धरती, सूर्य, अग्नि, और नक्षत्र, देवता हैं. "

प्रोडीकासका सिद्धान्त है कि " पुराने लोग सूर्य, चन्द्र, नदी, धारा और सब लाभकारक पदार्थोंको देवता मानते थे,—जैसे मिश्रके लोग नील नदीको देवता मानते थे. वरन रोटीको देमेतर, मद्यको दायोनीसास जलको पोसिडान, अग्निको हेफीसास देवता करके पूजते थे. "

कैसरने जर्मनीके मतको लिखा है कि " वहां लोग सूर्य, चंद्र और अग्निको पूजते थे. "

हिराडोटस्ने फारिसवालोंकी व्याख्यामें लिखा है कि " वे लोग सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायुको वलिदान देते थे. "

सेल्ससनेभी फारिसवालोंकी व्याख्यानमे लिखा है कि " वह पर्वतकी चोटीपर एक देवताको वलिदान देते थे जिसे वह " डिस " ( श्रेष्ठ ) कहते थे."

क्विंटस कर्शियसने हिन्दवालोंके मतके वारेमे लिखा है कि " जिस पदार्थका वे मान करते थे उन्हीको वे देवता कहते थे. वह वृक्षोंको पूजते थे; जिन्हें हानि पहुंचाना पाप समझा जाता था. "

## वेदकी साक्षी.

अव हम वेदके मंत्रोंको देखते जनाते हैं कि पूर्वकालमें आर्यावर्तीय मनुष्योंका क्या धर्म था जिसको, सिकन्दर व उसके प्रतिनिधियोंने वर्णन किया है. वे मंत्र मुख्यकर किसकी ओर व क्या मुख्य अर्थसे कहे गये हैं, जो कि प्राचीन आर्य कवियोंके आगेसे आजतक वर्तमान हैं. वे मंत्र लकड़ीके ठूंठों, या कंकड़ोंकी ओर नहीं कहे गये हैं, किन्तु नदी, पर्वत, वादलों, पृथ्वी, आकाश, उषा, सूर्य आदिकाही विशेष वर्णन है, वल्कि अर्द्धस्पृश्य, अस्पृश्य पदार्थोंकाही वर्णन विशेषतासे है. अलवत्ता यह ऐसा विश्वस्त है कि जिसके १०० सौ वर्ष पूर्व किसीको हाल मालूम न था, क्यों कि उस समय किसको जान पडता था कि एक दिन ऐसा होगा कि हम सिकन्दरके वर्णनको कि जो आर्यावर्त और आर्य लोगोंकेलिये कहा गया है उसकी जांच हम ऐसी साक्षीसे करेंगे या ऐसी विद्यासे जो सिकन्दरकी चढाईसे १००० सहस्र वर्ष पूर्वकी है. लेकिन हम औरभी अधिक जान सकते हैं, क्यों कि यदि हम उन आर्य लोगोंकी भाषाको उन लोगोंकी भाषासे जो कि यूनान, इटली, युरुपके और और हिस्सोंमे चले गये थे मिलाएं तो हमको थोड़ावहुत हाल उनकी उसवक्तकी भाषाका जान पड़ता है जव कि आर्य लोग जूदा जूदा नहीं हुए थे.

## अविभक्त आर्य भाषाकी साक्षी.

हमको अवभी कुछ कुछ जान पडता है कि प्राचीन आर्य लोग नदियों, पर्वतों, पृथ्वी, आकाश, उषा, सूर्य को क्या क्या समझते थे व जो कुछ इन पदार्थोंमें देखते थे उनसे क्या समझते, क्यों कि हम यह जान सकते हैं कि उन लोगोंने इन पदार्थोंके नाम कैसे रक्खे.

आर्य लोगोंने प्रत्येक पदार्थकी क्रियाशक्त्यनुसार उन पदार्थोंके नाम रक्खे कि जिसको वे देखते थे और सवको यथोचित जानते थे; जैसे मारना, धक्का देना, घिसना, नापना, मिलाना, आदि. इन सव कार्योंसे शब्द अपनेहीसे प्रकट होते थे कि जिनसे धीरे धीरे

पद बन गये कि जिनको आजकल हम धातु कहते हैं. जहांतक मुझे मालूम है यही भाषा और विचारोंकी जड़ है, और इसीको निडर प्रोफेसर नोयर साहवने अपनी किताबमे लिखा है.

## भाषाकी उत्पत्ति.

भाषाका प्रथम स्वरूप क्रिया है. वाज् कार्य जैसे मारना, घिसना, धक्का देना, फेकना, काटना, मिलाना, नापना, हल जोतना, वुनना, ऐसे हैं कि इन कार्योंसे अवभी स्वयं शब्द होते हैं. यह शब्द पूर्वकालमे विरुद्ध होते हैं परन्तु होते होते वह एक मुख्य प्रकारके हो जाते हैं.

पहिले ये शब्द कार्यसम्वन्धी उत्पन्नतामे लिये जाते थे, जैसे " मर " का शब्द घिसने, कंकडोंके स्वच्छ करने, शस्त्रास्त्रोंके तीव्र करनेकेसाथ होगा.

सिवाय इसके उस समय कोई ध्यान वोलनेवालेका और किसी पदार्थका न होगा. परन्तु बहुत शीघ्र इसी शब्दसे संकेतभी हो सकेगा. जैसे वाप कोई कार्य करने या विसने या कोई पत्थरके हथियार साफ करने जाता है. एक मुख्य प्रकारके वलके लगानेसे और मुख्य शरीरके तद्रूप भाव दिखलाने ( अर्थात् क्रिया अनुकूल चेष्ठा ) से प्रसिद्ध मतलव यह निकल सकेगा कि वाप चाहता है कि उसके लड़के या नौकर व्यर्थ न वैठे रहैं जव कि वाप काम करता हैं. इस स्थानपर " मर " के शब्दसे एक प्रकारकी आज्ञा पायी जायगी. इस अर्थको सब अच्छी तरह समझ लेंगे क्यों कि हमारी कल्पनाके अनुकूल प्रारम्भहीसे लोग ऐसा वर्तने लगे थे केवल एकही मनुष्य किन्तु वहुतसे लोग एकही तरहके कार्य करते थे.

कुछ कालके व्यतीत होनेपर कुछ शब्द वर्तावमे और उन्नति होगी. " मर " का शब्द केवल ऐसे काम न आवेगा कि जिससे अपनेलिये या किसी दूसरेकेलिये आज्ञा देवें. ( जैसे " मर " का अर्थ यह कि " आओ, काम करें " ) वल्कि यदि यह अवश्य होगा

कि जो पत्थर कि स्वच्छ करनेकेलिये हैं वे एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाने हैं, जैसे समुद्रके किनारेसे किसी गढ़ेमें या किसी गढ़ेसे झोपड़ेको तो "मर्"का शब्द केवल उन्ही पत्थरोंमें चिन्ह करनेको होगा जिनको स्वच्छ या तीव्र करना होगा. वरन उसी तरह उन पत्थरोंके वतलानेकेलियेभी उपयोगी होगी जो छांटने या तीव्र करने या स्वच्छ करनेकेलिये वर्ते गये थे. इसी तरहपर "मर्" शब्दकी सीमा केवल कामहीतक न रहेगी वरन जिन पदार्थोंसे काम हुआ उनसेभी कुछ संबंध होगा.

लेकिन जब शब्द "मर" यह बहुत अर्थोंमें वर्तने लगा तो अवश्य गड़बड़ पैदा होगा. जब ऐसा हुआ तो यह इच्छा होगी कि कोई ऐसा उपाय किया जाय कि यह गड़बड़ जाता रहे. यदि इसकी आवश्यकता हो कि उस 'मर' में जिसका अर्थ ( आओ पत्थर रगड़ें ) और उस 'मर' मे कि जिसका अर्थ ( अच्छा रगड़नेकेलिये पत्थर ) है अन्तर किया जाय तो यह अन्तर विरुद्ध प्रकारसे होगा.

सबसे सादा व सबसे पूर्वका मार्ग यह है कि किसी मुख्य अक्षरपर बल दें या उसे किसी मुख्य शब्दसे बोलें. यह चीनी वा और अन्य एकाक्षरी भाषाओंसे जान पड़ता है जिनमें एकही शब्दको कई तरहपर बोलनेसे अर्थ औरका और हो जाता है. इसी प्रकार एक और मार्गभी था कि चिन्हसंकेत आदि वर्ताव किये जायं. इन चिन्होंको शब्दमे लगानेसे अर्थमे अंतर हो जायगा. जैसे 'मर' के अर्थ दो हो सकेंगे—१ ( यहां घिसना ) से मतलब होगा कि वह आदमी घिसता है. २—( घिसो वहां ) से मतलब होगा वह पत्थर जो घिसा जाता है. चाहे यह काम बहुत सादा हो परन्तु यह वह है जिससे मनुष्यको पूर्वमें कामके परिणाममें अन्तर जान पड़ा. इससे सिवाय काम करनेवाले और कामके यह ध्यानभी आदमीके हृदयमें उत्पन्न हुआ कि कामभी कोई पदार्थ है, अर्थात् वह पदार्थ जो कामके भेद और कामके परिणाम फलसे अलग है. यही ज़ीना है, जिससे मालूम शब्दोंसे ध्यान प्रकट हो गये. यह मार्ग नोयर साहबके पूर्व किसीके

ध्यानमे नही आता था. जो शब्द कि वारवार काम करनेसे उत्पन्न होते हैं सदैवसे किसी कल्पनाके उत्पन्नकारक हैं; अर्थात् ये चिन्ह उन कल्पनाओंके हैं जो उत्पन्न होती हैं. जब वल देनेसे या वाहिरी गतीसे शब्दोंसे विरुद्ध होने लगे, जिनसे काम करनेवाला हथियार, या स्थान, या वक्त, या काम करनेके पदार्थसे मतलब हुआ तो जो शब्द कि सवमे एकही हैं वह वही शब्द हैं जिसे अव हम धातु कहते हैं, अर्थात् शब्दकी जड़ जिसकी एक मुख्य सूरत है और जिससे सारी वार्ताएं प्रकट होती हैं और जो इसीलिये अर्थसे लिप्त हैं. इन वार्तोका चर्चा भाषाशास्त्रमें होना चाहिये था परन्तु धर्मशास्त्रके वर्णनमे हम इनको छोड़ नही सक्ते.

## प्राचीन कल्पना.

यदि हम यह जानना चाहैं कि आर्य लोग जव नदी शब्द कहते थे तो उसे क्या समझते थे? उत्तर यह है कि उससे वह वही समझते जो उसे कहते थे, और वे उसे कई प्रकारसे कहते थे जैसे " सरित्" (दौड़नेवाली, ) या " नदी " ( ध्वनि ) जिसके अर्थ शब्दकर्ता-के हैं. यदि नद सीधे नहीं वहते थे तो उसे हल जोतनेवाला या हल ( सीरा, दरिया ), ( सीरा, हल ) या तीर कहते थे. जो उससे खेतको पानी पहुंचता था तो उसे " मातृ " कहते थे. जो वह एक देशको दूसरे देशसे विलग करता था तो उसे सिंधु* कहते थे. इन सब नामोंसे तुम देख सकते हो कि दरिया कुछ न कुछ काम करता हुआ कल्पना किया गया है. जिस प्रकारसे आदमी दौड़ता है, नदी दौड़ती है, जैसे मनुष्य चिलाता है वैसे नदी पुकारती है, जिस प्रकार मनुष्य हल जोतता है उसी प्रकार नदीभी खेत जोतती है, जैसे मनुष्य रक्षा करता है वैसे नदी रक्षा करती है. प्रारंभमें नदीको हलके नामसे नहीं कहा, वरन हल चलानेवाली नदी कहा. हलतकको बहुत काल व्यतीततक केवल एक हथियार न समझा वल्कि एक

*सिंधु " सिध् " से निकला है. 'सेधति' का अर्थ अलग करना है.

काम करनेवाला पदार्थ. हल, अलग करना, फाड़नेवाला, और भेड़िया है और इसी कारणसे उसके वेही नामहैं जो खोदनेवाले रीछके, या फाड़नेवाले भेड़ियाके हैं. ( वेदमे "वृक"=भेडिया, व हल, लिखा है. )

## प्रत्येक पदार्थ क्रियावान् है यह कल्पना.

इस तरह समझमें आता है कि प्रारम्भकालमे जो पदार्थ मनुष्यके आसपास थे उनको उसने किस तरहपर कल्पना किया. आदमी सारे पदार्थोंमें अपने कामोंकी तरह कार्य देखने लगा और जो शब्द कि अपने कामके प्रकट करनेमें वर्तावहोते थे उन्हे अपने आसपासके पदार्थोंपरभी वर्ता. इस भाषाके पर्तमें उस पदार्थका वीज है जिसे हम कल्पना कहते हैं. जैसे शब्दके द्वितीयार्थ करना, निर्जीवको सजीव वर्णन करना, ईश्वरके स्वरूप व गुणोंको मनुष्यके सदृश बताना आदि.

यहां हमको जान पड़ता हैं कि ये पदार्थ केवल कवित्व कल्पनाके कारण नहीं हुए वल्कि आवश्यकताके कारणसे. यह वह समय था कि जव उस पत्थरको, जिसे मनुष्य स्वयं तीव्र करता था, काटनेवाला कहते थे कि वह पदार्थ जिससे कोई पदार्थ काटा जाय.

जव कि "पैमायषकी लकड़ी" नापनेवाली, 'हल' फाड़नेवाला, 'जहाज' उड़नेवाला चिड़िया कहलाता था तो सिवाय इसके और क्या सम्भव था कि नदीका नाम चिल्लानेवाली, पहाड़का बचानेवाला, चांदका नापनेवाला होता. चंद्र अपनी गतिमे आकाशको नापता हुआ मालूम होता था और इसी प्रकार आदमीको महीनाके नापनेमें सहायता मिलती थी. आदमी और चंद्रमा दोनो काम करते थे, नापते थे, और जिस मनुष्यको जो क्षेत्र या धर्त्री नापता था नापनेवाला कहते थे, इसी प्रकार चांदकोभी मास ( नापनेवाला ) कहते थे, और यही नाम उसका संस्कृतमें है और इससे मिलता हुआ यूनानीमें "मेईस" या लातानीमे "मेन्सीस्" और अंग्रेजीमे "मून" है. भाषाकी ये सवसे साफ और सीधी सिढ़ियां हैं. यह समझमें आती हैं चाहे

पूर्वमें अर्थ अशुद्ध लगाये गये हों. आवश्यकता यह है कि हम मनुष्य भाषा और उसकी कल्पनाको सिड्ढी सिड्ढी देखें.

## काम करनेवाले पदार्थोंमें और मनुष्योंमें अन्तर.

वरन वे चंद्रमाको नापनेवाला या वढ़ई कहते थे, लेकिन इससे यह मतलव नहीं निकल सक्ता कि वे चंद्रमा व मनुष्योंमें कुच्छ अन्तर नहीं कर सकते थे. इसमें कुच्छ संदेह नहीं कि उनकी कल्पना हमारी ऐसी न थीं, परन्तु हम यह एक क्षणमात्र नही स्वीकार कर सकते कि वे मूर्ख थे. हम यह नहीं कह सकते कि जो वे अपने कामोंमें और सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, आकाशके कामोंमे समता पाते थे इसलिये उनके वही नाम रख दिये, और इससे यह परिणास निकालें कि उनको यह अन्तर नहीं ज्ञात था कि मनुष्य नापनेवाले व चंद्रमा नापनेवालेमें कुच्छ अन्तर नही है; कि मुख्य माता व उस नदीमें जिसे वे माता कहते थे कुच्छ अन्तर नहीं है. उस समय जो पदार्थ ज्ञात था और जिसका नाम रक्खा गया था कोई काम करता हुआ अनुमान किया जाता था. वह कुच्छ काम करता था इसलिये उसे सदृश मनुष्य माना, जैसे पत्थरको काटनेवाला, या दांत, या पीसनेवाला, या खानेवाला, या छेद करनेवाला, कहते थे. इसमे संदेह नहीं कि उन्हे वड़ी कठोरता थी कि उसे इस तरह कहते कि यह न मालूम होता कि वह मनुष्य है. वड़ी दिक्कत थी कि वह नापनेवाले और चंद्रमाकेवास्ते अलग अलग शब्द निकालते, व ऐसा करते कि यंत्रों और हाथों, और मनुष्यमें अन्तर उत्पन्न करते. उन्हे वड़ी कठिनता थी कि पत्थरको वह पदार्थ कहते जो पर्गोके तरे खूदा जाता है. मगर उनको मनुष्य मानकर वर्णन करना या निर्जीवको सजीव करना कुछ कठिन न था. इस तरह हम देखते हैं कि निर्जीव पदार्थोंको मनुष्य वनाकर वर्णन करनेका वादविवाद जिसमे धर्मज्ञाता लोग घवराते है स्वच्छ हो गया.

हमे यह प्रश्न नहीं लगाना है कि मनुष्योंने निर्जीव पदार्थोंको

मनुष्यकी तरह कैसे रक्खा; वरन यह प्रश्न लगाना है कि एक वार मनुष्योंकी पदवी देकर कैसे लेली.

### व्याकरणके लिंगभेद.

अधिकतासे अनुमान किया गया है कि व्याकरणके लिंगभेदके कारणसे अचेतन वस्तुको चेतन भाव वर्णन किया. यह कारण नहीं वरन फल था. इसमें सन्देह नहीं कि जिन भाषाओंमें लिंगका अन्तर अच्छी प्रकार कर दिया गया है तो इससे कवियोंको निर्जीव पदार्थोंको सजीव कहना सरल हो गया, परन्तु हम वहुत प्राचीन आरम्भीय कालका चर्चा करते हैं. लिंगसूचक भाषाओंमेंभी एक ऐसा समय था जव कि लिंगभेद न रहा हो. आर्यावर्तकी भाषाओंमें, जिनमें अव लिंगभेदका इतना अन्तर है वहुतसे पुराने शब्द विना लिंगके हैं. Pater "पेतर" पुल्लिंग नहीं है; न Mater "मेतर" स्त्रीलिंग. वहुतसे पुराने शब्द जो नदी, पर्वत, वृक्ष, आकाशकेलिये थे उनमें भी कोई लिंगभेद न था. इनकेलिये ऐसे जो शब्द थे उनसे कार्य करना प्रकट होता था. भाषाकी उस दशामें यह असंभव था कि किसी पदार्थका ऐसा नाम होता जो काम करनेवाले या मुख्य मनुष्यका न होता था. शब्द Calx "काल्क्स" ( एड़ी ) के अर्थ लात मारनेवालेके थे और पत्थरकोभी "काल्क्स" कहते थे. सिवाय इसके और कोई मार्ग इनके नाम रखनेका नहीं था. यदि एड़ी पत्थरके लात मारती थी तो पत्थर एड़ीके लात मारता था. परन्तु दोनों "काल्क्स" थे.

वेदमे "वी" के अर्थ पक्षी और उड़नेवालेके थे परन्तु उसी शब्दके अर्थ तीरकेभी हैं. शब्द "युद्ध" के अर्थ लड़नेवाला, यंत्र, और लड़ाईके थे. उस समयमें अधिक उन्नति की गई थी जव कि ठोकर लगानेवालेमें और ठोकर खानेवालेमें यह अन्तर हुआ और इसीसे निर्जीव और सजीवमे अन्तर हुआ. वहुतसी भाषाएं तो यहींतक रह गई, परन्तु आर्य भाषाओंमें सजीव पदार्थोंमे पुल्लिंग और स्त्री-

लिंगका अन्तर हुआ. यह अन्तर पुलिंग संज्ञाके वर्तावसे नही हुआ वरन स्त्रीलिंग संज्ञाके कारण हुआ. कई शब्द प्रत्यय लगानेसे पुलिंगसे स्त्रीलिंग हुए जिसका परिणाम यह हुआ कि शेष शब्द पुलिंगही रह गये. तत्पश्चात् कई शब्दोंकी चेष्टा नपुसकलिंग थी. इसलिये व्याकरणका लिंगभेद मूल कारण पौराणिक काव्यकेलिये नही था. यद्यपि अन्तमे कवियोंने इससे सहायता ली, परन्तु मूल कारण भाषा और अनुमानसे उत्पन्न हुआ. अपने कामोंकेलिये मनुष्यने शब्दोंको वर्ता. संसारके और पदार्थोंमें उसने वैसेही काम देखे मनुष्यने उनको समझा और देखा, और उन्हीके मार्ग दुनियाके अन्य पदार्थोंका अनुमान किया.

प्रथम इसको स्वप्नमे अनुमान न था कि वह नदीको रक्षक कहता है इसलिये नदीमें हाथ, पग, और वचानेके यंत्र हैं, अथवा यह कि चन्द्रमा वढ़ई है क्यों कि वह आकाशको वांटता है और नापता है. ऐसे अशुद्ध अर्थ पीछेसे हो जायंगे परन्तु हम अभी वहुत प्राचीन कालका हाल कहते हैं.

## सहायक क्रिया के पद.

हम कल्पना करते हैं कि विना वाक्यके भाषाका होना असम्भव है और विना संयोगी शब्दोंके वाक्यका होना. यह कल्पना संभव, असंभव वाक्य दोनों है. यदि हम वाक्यसे वही अर्थ समझें जो उसके अर्थ कहे जाते हैं अर्थात् ऐसा वर्णन जिससे कोई अर्थ सिद्ध हो तो यह अनुमान ठीक है. हां यदि हम यह समझें कि वाक्य वही है जिसमें कई शब्द अर्थात् कर्ता, क्रिया और संयोगी शब्द हैं तो यह अनुमान अशुद्ध होगा. केवल आज्ञाका शब्द एक वाक्य हो सकता है और क्रियापदके प्रत्येक रूप एक " वाक्य " है. जिसे हम संज्ञा कहते हैं वह मुख्य तो एक वाक्य था जिसमें धातु और वह अव्यय मिला था जिससे कि वह पदार्थ प्रकट होता था जिसका धातुमें वर्णन होता था. इसी प्रकार जव कर्ता, क्रिया उपस्थित हैं तो हम कह सकते

हैं कि संयोग शब्द छिपा है. मगर सच यह है कि पूर्वमे वह प्रकट नहीं किया जाता था और न प्रकट करनेकी आवश्यकता थी. सिवाय इसके पूर्वकी भाषाओंमें वह प्रकटही नहीं हो सकता था. हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि प्राचीन आर्य लोगोंकेलिये किसी पदार्थका कल्पना करना या प्रकट करना कठिन था जबतक कि वह उसे कुछ काम करते हुए अनुमान न कर लेते. उनको यह कहना कठिन था कि अमुक पदार्थ है, या था. वह केवल यही प्रकट कर सकते थे कि अमुक पदार्थ अमुक कार्य करता है जो वह स्वयं करते हैं. प्रत्येक मनुष्य स्वास लेता था इसलिये जिस स्थानपर कि अब हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ है, वह कहते थे कि अमुक पदार्थ स्वास लेता है.

## अस—( स्वास लेना. )

"अस्" धातु बहुत पुराना है जो अब अंग्रेजीमे ( He is ही इज ) हो गया, जिसका अर्थ "वह है" है, इसका पूर्व रूप उस समयसे पहले उपस्थित था जब कि आर्य लोग जुदा हुए हैं. परन्तु हमको ज्ञात है कि "अस" के अर्थ पूर्वमें 'स्वास लेना' थे पश्चात् होनेका हुआ. "अस" से सादे तौरपर शब्द "असु" निकला था कि जिसके अर्थ संस्कृतमे स्वास लेनेके हैं. निश्चय है कि इसीसे "असु+र" शब्द निकला कि जिसका अर्थ "वह लोग जो स्वास लेते हैं" सजीव हैं और अन्तमे वेदमें सजीव देवोंके नाम "असुर*" हैं.

---

* यह संस्कृत "असु" शब्द झेंदमें 'अहु' है. इसका अर्थ अवेस्तामें "आत्मा" और "जगत्" है. ("दारमेस्तेतर" की पुस्तक "ओर्मझ्द" व "एहेरिमन" सफा ४१ ). अगर झेंद भाषामें "अहु" शब्द "मालिक" के अर्थोंमेंभी है, तो उससे यह नहीं हो सक्ता है कि "अहुर—मजद" मेंभी "अहुर" का अर्थ "मालिक" हो, और जो एक प्रत्यय 'र' जोडनेसे बना हो. झेंदमें "अहु" के दो अर्थ 'मालिक' व 'स्वास' के होंगे, जैसे "रतु" शब्दके अर्थ 'आज्ञा' व 'आज्ञा देनेवाला' के हैं मगर यह ठीक नहीं मालूम होता कि हम संस्कृत 'असुर' के अर्थ 'मालिक' कहें क्यों कि झेंदने 'अहु' के वही अर्थ हैं.

## भू–वढना, उत्पन्न होना.

जब धातु "असू" का वर्ताव अयोग्य ज्ञात हुआ क्यों कि वृक्ष और ऐसे अन्य पदार्थ स्वास नही लेते थे तब दूसरा धातु "भू" लिया गया जिसके मूल अर्थ उगनेके हैं. इसीसे ग्रीकमें "फुओ" व अंग्रेजीमें ( टु वी ) निकला. यह शब्द केवल जानवरोंकेहीलिये नहीं वरन किन्तु वनस्पतिकेलिये और प्रत्येक पदार्थकेलिये जो वढता था वर्ताव वहुधा यहांतक हुआ कि पृथ्वीकाभी नाम ( भूः ) हुआ अर्थात् ( वढनेवाली. )

## वस=रहना.

जब कल्पना और अधिक वढ़ी तब धातु "वस्" लिया गया जिसके मूल अर्थ रहनेके हैं. इसको हम संस्कृत शब्द "वस्तु" ( घर ) में, ग्रीक "आसतु"=शहरमें पाते हैं. अंग्रेजीमेंभी ( I was आई वाज ) इसीसे है. यह शब्द उन सब पदार्थोंकेलिये वर्ताव हो सकता था जो न स्वास लेते थे, न बढते थे. यह प्रथम सीढ़ी थी जिससे निर्जीव पदार्थोंकेलिये मुख्य शब्द हुए. स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग संज्ञाओंके वनने और इन तीनों सहायक क्रियाओंके वननेमें एक प्रकारका ढंग है.

## भाषाका मूल आरंभ.

हम अपने वर्णनसे यह देखना चाहते हैं कि प्राचीन आर्य लोगोंकेलिये कैसे संभव हुआ कि वह सूर्य, चंद्र, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदियोंके वारेमे कुछ कहते. जब हम कहते हैं कि चंद्र उपस्थित है, सूर्य वहां है, हवा चल रही है, पानी वरस रहा है, तो वह लोग इन वार्ताओंको केवल इसी प्रकार प्रगट कर सकते थे कि सूर्य स्वास लेता है ( सूर्योः अस्ति ), चांद बढ़ता है ( मा भवति ), पृथ्वी रहती है ( भूर्वसति ), वायु या फूंकनेवाला फूंक रहा है ( वायुर्वाति ), पानी वरस रहा है ( इन्द्र उनत्ति ), अथच वृषा वर्षति ( सोमस्सुनोति ). हम इस समय उस कालका चर्चा कर रहे हैं जब कि सृष्टिके

कर्तव्यको पहिले पहिले मनुष्यने सोचा. हम संस्कृत शब्द उस समयके समाचारोंके वर्णन करनेकेलिये वर्तते हैं जब संस्कृत थीभी नहीं. इन वातोंका ध्यान कि कल्पनासे किस तरह वाक्य वने, और विरुद्धी वाक्योंको अधिक वर्तावसे कल्पनाओंपर क्या असर हुआ, और प्राचीन पुराणोक्त इतिहास किस तरह प्रसिद्ध हुई, यह सब वातें अनुमानोंके अन्त परिणामके पहुंचनेपर आवेंगी, और उनका इस स्थानमे चर्चा करना आवश्यक नही. हां एक वात है जिसका अत्यन्त पुष्टतासे प्रकट करना चाहिये. यद्यपि पूर्व आर्योंने सूर्यके कई ऐसे नाम रक्खे जिससे काम प्रकट हो, जैसे प्रकाशक, गर्मी देनेवाला, उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला कहा, या चंद्रमाको नापनेवाला, उषाको जगानेवाला, मेघध्वनीको गर्जनेवाला, मेघको वरसनेवाला, आगको तेज दौडनेवाला कहा-मगर इससे हमें यह न समझना चाहिये कि वे इन पदार्थोंको मनुष्य समझते थे जिनके हाथ, पग हों. जव वे यह कहते थे कि सूर्य स्वास ले रहा है तो उनका मतलव यह नहीं होता था कि सूर्य कोई मनुष्य या जानवर है जिसके फेफडे मुंह स्वास लेनेको हैं. पूर्वकालके लोग न मूर्ख थे न कवि. इसके कहनेमें कि सूर्य या रक्षक स्वास लेता है उनका मतलव यही था कि सूर्य हमारी तरह काम करता, चलता, फिरता है. प्राचीन आर्य लोगोंने उस समयतक चंद्रमाके दो नेत्र, एक आंख, एक मूह नहीं देखा, और न ये निश्चय करते थे कि वायु जो चलता था वह छोटे देवके मोटे भरे गाल हैं जो अपने मूंहसे आकाशके चारों कोनोंसे स्वास छोडते हैं. ये सव वातें धीरे धीरे हो गई परन्तु प्रारंभकालमें न थीं.

## पूर्व समय सादृश्य निषेधका समझना.

जिस कालका हम चर्चा कर रहे हैं उस समय हमारे आर्य पुरुष अर्द्धस्पृश्य व अस्पृश्य पदार्थोंको प्राणधारी नहीं मान लेते थे, और न मनुष्योंकी तरह कल्पना कर लेते थे, वरन अनुमानी सादृश्यतापर ध्यान न करके विरुद्धतापर अचंभा करते थे जो उन पदार्थोंमें और

उनमे थीं. यहां मैं यहभी याद दिलाता हूं कि इसकी सच्चाई वेदसे ठीक हो सक्ती है. जिसे हम अब दो पदार्थोंका सादृश्य कहते हैं उसे वेदके मंत्रोंमें निषेध कहा गया है. वहां हमारी तरह यह न कहते थे कि ( पहाड़की तरह पुष्ट ) वरन वेदके कवियोंने कहा है "पुष्ट न कि पहाड़?[1]" अर्थात् वह निषेधपर बल देते हैं ता कि सादृश्यता साबित हो. "वे देवताकी बड़ाईमें भजन कहते हैं न कि मीठा भोजन!" अर्थात् जो मीठे खानेके सदृश्य थे[2]. नदीकेलिये लिखा है कि वह गर्जती हुई आती थी न कि सांड थी? अर्थात् सांड़की तरह गर्जती आती थी. ( मरुत् ) अर्थात् तूफानके देवतोंकेलिये लिखा है कि यह अपने पुजारियोंको गोद ( अङ्क ) मे रखते थे "बाप न कि बेटा ?." जिससे मतलब यह था कि जैसे बाप बेटेको गोदमें रखता है[3]. इसी प्रकार सूर्य, चन्द्रकेलिये लिखा है कि चलते थे न कि जानवर थे, नदी गर्जती और लड़ती थी पर मनुष्य नहीं ? पर्वत गिराये नहीं जा सकते थे परन्तु योधा नही, आग जंगलको खाती थी मगर शेर नहीं. वेदके ऐसे वाक्योंके उल्था करनेमें सदैव "ना" का उल्था "तद्वत्" होता है. यह कहनाभी आवश्यक है कि स्वयं कवियोंको इस अन्तरका अधिक ध्यान होता था बनिस्वत उन बातोंके जो दोनोंमे एकी तरहकी थीं.

## गुणवाचक नाम.

सृष्टिके उन विरुद्ध पदार्थोंके वर्णन करनेमे जो प्रारम्भ समयसे ध्यानमे बीतते थे कवियोंको बहुतसे वाक्य बारम्बार बर्तना पड़ते थे. यद्यपि वह पदार्थ विरुद्ध थे, परन्तु उनमे कई बातें ऐसी थीं कि जो सबमें पायीं जाती थीं, इसलिये एक मुख्य संज्ञा उनकेलिये होकर एक मुख्य जाति हो सकती थी. और इस तरह एक नया अनुमान उत्पन्न होता था. यह सम्भव था और अब देखें कि मुख्य करके

१. ऋग्वेद १।५२।२ सः पर्वतः न अच्युतः, १।६४।७ गिरयः न स्वतवसः
२. ऋग्वेद १।६१।१.
३. ऋग्वेद १।३८।१.

क्या वीता. हम वेदमें पाते हैं कि सब मंत्र देवताओंकी[१] वड़ाईमें हैं. यह शब्द "देवता" अंग्रेजीमे डीएटी ( Deity "ईश्वर" ) है, परन्तु उन मंत्रोंमे यह शब्द कभी ईश्वरके अर्थमें नहीं वर्ता गया हैं. उस समय वह ईश्वरीय ध्यान जो अव है उत्पन्नभी नहीं हुआ था. आर्योंके प्राचीन टीकाकारभी कहते हैं कि देवताका अर्थ यह था ( वह पदार्थ जिसकी ओर कोई मंत्र कहा जाय ) और वह स्तुति करनेवालेको "ऋषि" कहते थे. जैसे जब कोई मंत्र किसीके पदार्थको जो अर्पण करनेको था, या किसी पवित्र पात्र, या रथ, या परशु, या ढालको पदवी दी है तो इन पदार्थोंको देवताओंके नामसे कहा है. कई वार्तालापोंमें जो वेदकी ऋचाओंमे पाये जाते हैं स्तोताको ऋषि, और स्तोतव्यको देवता कहते हैं, असलमे शब्द देवता मुख्यकर पारिभाषिक शब्द था जिसके अर्थ यही थे कि वह पदार्थ जिसकी ओर कवि पदवी दे.

ऋग्वेदके मंत्रोंमें देवता अर्थात् ( डीएटी deity ) का शब्द भाववाचक है, परन्तु जिन पदार्थोंकी ओर कि हिन्दुस्तानके कवियोंने अपने मंत्र उपनाम किये हैं "देव" कहलाते हैं. यदि यूनानियोंको 'देव' शब्दका यूनानी भाषामें उल्था करना हुआ तो वह 'थिआस' कहते थे जैसे कि विना उस शब्दके आशयपर विचार किये हुये यूनानी 'थिआई' को 'गाड' कहते हैं. परन्तु जव हम अपनेआप यह प्रश्न करैं कि वैदिक कवियोंने 'देव' शब्दसे क्या अभिप्राय रक्खा था ? तो हमको विदित होगा कि उससे और यूनानी 'थिआस' अथवा हमारे 'गाड' के अभिप्रायसे वड़ाही अन्तर है. वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, व सूत्रमे शब्द "देव" के अर्थ वदलते गये हैं. देवका मूल अर्थ मानो इस शब्दके इतिहास हैं जो प्रारंभसे अन्ततक वदलते गये हैं.

देव शब्द "दिव्" से निकला है. ( दिव्=प्रकाशणें ) अथच धातु-

---

१. अनुक्रमणिकाः "यस्य वाक्यम् स ऋषिः," "या तेनोच्यते सा देवता," "तेन वाक्येन प्रतिपाद्यं यद्वस्तु सा देवता."

से तेजस्वी है, परन्तु कोषोंमें इस शब्दका अर्थ "ईश्वर" या "ईश्वरी" है. यदि वेदमें जहां जहां देव शब्द वर्ता गया है वहां हम उसके अर्थ ईश्वरके समझें तो उसके अर्थ वह हो जायंगे जो सहस्र वर्षके अन्तमें उसके अर्थ हुए. जिस कालका हम समाचार लिखते हैं देवताओंका उस अर्थमें जिसमें अव हम वर्तते हैं किंचित् न था, वह धीरे धीरे उपस्थित होते जाते थे, अर्थात् ध्यान और नाम ईश्वरका प्रारंभ सिद्धियोंसे वढ़ता चला आता था.

उत्पन्न किये हुए पदार्थोंसे लोग ईश्वरकी ओर सीढ़ी सीढ़ी वढ़ते आते थे इसी कारण वेदमंत्र लाभकारी और अमूल्य हैं.

एक प्राचीन ग्रीक ग्रंथकार हेझियड्ने देवताओंका इतिहास लिखा है परन्तु वेद स्वयं इतिहास है, जिसमे देवोंकी उत्पन्नता व उन्नति दी हुई है, अर्थात् उन शब्दोंकी उत्पन्नता व उन्नति जिनसे देवताओंका अनुमान हुआ. और हम अन्तके मंत्रोंमें जिनका स्वरूप पहिले मंत्रोंसे उन्नतिपर है यहभी देखते हैं कि अन्तका फल इस उन्नतिका क्या हुआ? "देव" ही केवल एक शब्द वेदमे ऐसा नहीं है जो पहिले विरुद्ध पदार्थोंपर वर्ता जाता था जिनको ऋषि पदवी देते थे और अन्तमें सम्पूर्ण शब्द देवताओंकेवास्ते हुआ.

शब्द "वसु" भी वेदमे एक प्रकारका सामान्यनाम देवताओंकेलिये था और इसकेभी मूल अर्थ "तेजस्वी" के थे. इन पदार्थोंमेसे कई पदार्थ पूर्व कवियोंको ऐसे जान पडे जो न वदलते थे न उनकी घटती होती थी, और अन्य सव पदार्थ एक होकर मिल जाते थे इसी कारणसे उन पदार्थोंको 'अमर्त्य' (न मरनेवाले), 'अजर' (वृद्ध या नष्ट न होनेवाले) नाम रक्खे. जव इन कल्पनाओंका प्रकट करना स्वीकृत हुआ कि सूर्य या आकाश, ऐसे पदार्थ हैं जो और पदार्थों—वरन मनुष्य, और पशुकी तरह न वदलते हैं, न मरते हैं, न घटते हैं. वरन एक प्रकारकी जानभी है, तो शब्द "असुर" का वर्ताव हुआ, जो निस्संदेह शब्द असु (श्वास लेना) से निकला है. "देव" अपने मूलकारणसे ऐसे पदार्थोंकेलिये वर्ता जाता था जो चमकदार या देखनेमे

अच्छे सुस्वरूप थे. परन्तु शब्द " असुर " में कोई ऐसी सीमा न थी. असुरका शब्द प्रारम्भकालसे केवल लाभके पदार्थोंके निमित्त ही नही, वरन सृष्टिके नाशक पदार्थोंकेलियेभी वर्ता जाता था. इस शब्द असुरसे जिसका अर्थ पूर्वमें स्वास, फिर देवताके हुए हमे यह जान पड़ेगा कि यह पहिला श्रम उस ओर है, कि जिसे पिछले मतोंमें आत्माकी उन्नति कहा है. दूसरे विशेषण " इशिर " केभी मूल अर्थ कुछ कुछ वही हैं जो "असुर" के हैं. यह निकला है, ईश्से —इश्—रस, शक्ति, वेग, तेज, प्राण, और इसका वर्ताव वेदके बहुधा देवताओं और मुख्यकर इन्द्र, अग्नि, अश्विनि, मरुत्, आदित्यपर हुआ है, और वायु, रथ, और मनपरभी होता था.

### वैदिक देवोंमें स्पृश्य पदार्थ.

जिन तीन भेदोंपर हमने पदार्थोंको विभक्त किया था उनमेसे प्रथम भेद ऋग्वेदके देवताओंमे नहीं है. प्राचीन मंत्रोंमें कंकड, हड्डी, कौडी, जडीबूटी, और लकडीके कुंदों, आदिका चर्चा नहीं है, पश्चात्के मंत्रोंमें—मुख्यकर अथर्ववेदमें—कहीं कहीं दिखाई पड़ते हैं. जब ऋग्वेदमें मनुष्यके रचे पदार्थोंका चर्चा या बड़ाई की गई है तो वह ऐसे पदार्थ हैं जिनको हमारे यहांके कविभी जैसे Wordsworth वर्डस्वर्थ, टेनीसन् कर सकते, जैसे रथ, कमान, तरकस, परशु, ढोल, पवित्र पात्र आदि और अन्य ऐसे पदार्थ.

इन पदार्थोंको कोई मुख्य जाति नहीं दी गई है, वरन उनका चर्चा केवल लाभदायक और मूल्यवाली और पवित्र पदार्थोंके तरह किया गया है.[१]

---

१. यह वर्णन किया गया है कि पात्र किंवा शस्त्रपूजा पदार्थ नहीं हो सक्के. परन्तु H. Spencer's 'Principles of Sociology' I. 343 में इसके विरुद्ध लिखा है, आर्य्यावर्त्तमें स्त्री उस पात्रकी पूजा करती हैं जो नैत्यिक वस्तुओंके रखने अथवा लानेकेलिये उपयोगी होता है और उसके निमित्त हवन करती है यहांतक कि चक्की और और पदार्थोंकोभी जो उसके गृहस्थीके काममें उपयोगी हों. बढ़ईभी ऐसेही अपनी कुल्हाड़ी इत्यादिको मानता

## वैदिक देवताओंमे अर्द्धस्पृश्य पदार्थ.

परन्तु जब हम दूसरे भेदमें देखते हैं तो विरुद्धता है. अनुमानसे वह पदार्थ—जिन्हे हमने अर्द्धस्पृश्य कहा है—ऋग्वेदके देवोंमे मिलते हैं. ऋग्वेदके १, ९०, ६—८ मे लिखा है कि:—

"सत्यनिष्ठ मनुष्यपर वायु मधुवृष्टि करता है, नदियां मधु उड़ेलती हैं, हमारे वृक्ष मीठे हों." (६).

"रात्रि और उषा मधु हो, व पृथ्वीके ऊपरका आकाश मधुसे परिपूर्ण होवे, हमारा पिता द्यौः ( आकाश ) मधु होवे." ( ७ ).

"हमारे वृक्ष मधुसे परिपूरित होवें, सूर्य मधुमान् हो, हमारी गायें ( माध्वी ) मधु परिपूरित होवें." (८).

यह शाब्दिक उल्था है और शब्द "मधु"को मैंने छोड़ दिया है लेकिन संस्कृतमे इसके अर्थ अधिक विस्तारसे हैं, उसके अर्थ भोजन करने, पीने, मीठा भोजन, मीठा रस हैं. इसी प्रकार मनका आनन्दिक मेह, पानी, दूध और कोई सुस्वादु पदार्थको 'मधु' कहते थे. हम इन प्राचीन शब्दोंका अच्छे प्रकार उल्था कभी नहीं कर सकते. बहुत पढने और ध्यान करनेसे यह जान पड़ता है कि उन शब्दोंसे क्या अनुमान उत्पन्न होता था। फिर ऋग्वेद १०—६४—८ में लिखा है:— "हम अपनी सहायताकेलिये इक्कीस ( त्रिःसप्त ) महान् उदकों, वृक्ष, पर्वत, अग्निको बुलाते हैं." ऋग्वेद ७।३४।२३.

"पर्वत उदक, परोपकारी वनस्पति, आकाश, पृथ्वी (द्यावापृथ्वी), वृक्ष, और दोनों लोक ( रोदस ) व हमारा धन बचाएं" ऋग्वेद ७,३५,८

---

और उसकी पुजा करता है. ब्राह्मण अपनी लेखनीकी, सिपाही अपने अस्त्रोंकी, और मेमार अपनी थापीकी पुजा करते हैं. डचूबायसका यह वर्णन बहुत विश्वासपात्र नहीं हो सक्ता परन्तु ल्वापल साहब अपनी 'Religion of an Indian Province' में यह कहते हैं कि केवल किसानही अपने हलकी स्तुति नहीं करता व धीमर अपने जालकी व कोष्टी अपने मागाकी. किन्तु लेखक अपनी लेखनीकी और महाजन अपनी वहीकीभी पुजा करते हैं. अब प्रश्न यही है कि पुजा करनेसे क्या अभिप्राय है ?

" दूरदर्शी सूर्य शुभलक्षणयुक्त हो, चतुर्दिश शुभलक्षणयुक्त हो, पुष्ट पर्वत, नदियां, पानीभी शुभलक्षणयुक्त हों. "

ऋग्वेद ३–१४–२० " शक्तिमान् पर्वत हमारी सुनैं. "

ऋग्वेद ५,४६,६ " सुप्रकीर्तित पर्वत, प्रकाशमान् नदियां, हमारी रक्षा करें. "

ऋग्वेद ६–५२–४ " श्रेष्ठ उषा मेरी रक्षा करें, बढ़ती हुई नदी रक्षा करें, पुष्ट पर्वत रक्षा करें, पितर मुझे बचाएं. "

ऋग्वेद १०–३५–२ " हम आकाश व पृथ्वीसे अपने संरक्षणकी प्रार्थना करते हैं, हम नदियोंसे, मातासे, व तृणाच्छादित पर्वतोंसे, सूर्य, उषासे, प्रार्थना करते हैं कि हमें पापसे बचाएं, सोमरस आज हमें आरोग्य व संपत्ति दें." अन्तमें नदियोंसे विनय की गई है और मुख्यकर पांचाल ( पंजाब ) देशकी नदियोंसे–जिसके किनारे बहुतसी बातें वैदिक इतिहासकी हुई हैं.

ऋग्वेद १०, ७५ " हे नदियो ! ऐसा करो कि कवि तुह्मारा अत्यन्त गौरव वर्णन करे. सात सात होकर वह तीन धारोंमे है, परन्तु सर्व प्रवाहांमध्ये ( नद्यामध्ये ) सिंधु अधिक बलवान् है. " १.

" हे सिंधु नदी ! जब तू पारितोषिक निमित्त धावती है तब वरुण तेरे चलने निमित्त वाट खोद रखता है, तू ऊंची पृथ्वीसे उत्पन्न होती है, जब कि तू सब चलनेवाली धारोंके आगे आगे अग्रगामीकी तरह चलती है. " २.

" तेरा शब्द पृथ्वीके ऊपर आकाश पर्यन्त चढ़ जाता है, तेरी अनन्त गर्ज तेज स्वरूपतासे उठती है, जैसे मेघ गर्जता है व जैसे तरुण बैल डकारता है. " ३.

" जिस तरह माता अपने बच्चेकेपास जाती है, वैसे गाएं ( नदियां ) तेरेपास दूध लेकर आती हैं, लड़ाईमे राजाकी तरह दो अंगोंकी सेनाकी तू अग्रगामिनी होती है, जब तू इन प्रवाहवाली नदियोंके सन्मुख वहती है. " ४.

" हे गंगे, यमुने, सरस्वति, सुतुद्री ( सतलज ), परुष्णी (रावी),

असिक्नी (अकेस्नीस्) सहित मेरी स्तुति स्वीकार करो, हे मरुद्वृधा व वितस्ता (हाइदास्पिस्) सुन, और वितस्ताकेसाथ ऐ आर्जिको ये सुशोमेकेसाथ सुन." ५.

"ऐ सिंधु! पहिले तृष्टामेके बराबर अपने देशाटनके निमित्त सुसर्तु और रासा, स्वेतीकेसाथ तू जाती है. *कुभेकेसाथ गोमतीको, मेदत्नुकेसाथ क्रुमु (कुरम) को जिससे तू उनकेसाथ एकही मार्ग होकर जाय." ६.

"वह अजय सिंधु प्रकाशमान्, तेजस्वी, महत् शोभा सहवर्तमान मेघोंको मैदानोंसे ले जाती है, वह वेगवान्, सुन्दर, अश्विनीकी तरह सद्दर्शनीय पदार्थ है." ७.

"घोड़ोंमें प्रतिष्ठित रथ, वस्त्र, सोना, उत्पन्नता, वनस्पति, उनमें परिपूर्ण सुंदर तरुण नदी सिंधु सुदेशोंको मधु प्रपूरित करती हुई फैलती है." ८.

"सिंधुने अपने हलके रथमें घोड़े लगा दिये हैं. वह युद्धमे हमारे-लिये ऐश्वर्य हरे क्यों कि उसके अजीत, तेजस्वी रथका बड़प्पन प्रसिद्ध है." ९.

मैंने सहस्रों स्तुतियोंमेंसे इन स्तुतियोंको छांटा है क्यों कि वे उन पदार्थोंकी ओर हैं कि जिनको अवभी अच्छी तरह जानते हैं; अर्थात् जो अर्द्धस्पृश्य या अर्द्धदेवता हैं.

अब हमको जिस प्रश्नका उत्तर देना है वह यह है कि क्या इन पदार्थोंको देवता कहना चाहिये? इन वाक्योंसे ऐसा अर्थ कदापि नहीं निकलता, क्यों कि यद्यपि हम वहुतसे देवताओंको नही मानतें हैं तिसपरभी हम ऐसे वाक्य वर्तते हैं कि वृक्ष, पर्वत, नदी, धरती, उषा, आकाश, सूर्य, हमारेलिये मीठे व अच्छे हों.

लेकिन एक पद आवश्यक हुआ है जब कि पर्वत, नदी आदिकी इसलिये बिनती की गई है कि वह रक्षा करें. यहभी समझमे आ सकता है.

---

* काबूलनदी, कोपेहन प्रसिद्ध नाम.

हमे ज्ञात है कि प्राचीन मिश्रके लोग नील नदीको क्या समझते थे. और अवभी स्वीस लोग पर्वतों और नदियोंकी इसलिये विनती करते हैं कि वे उनको और उनके मकानोंको अन्यदेशके शत्रुओंसे रक्षा करें.

एक पदके अनन्तर दूसरा पद चलता हैं. पर्वतोंसे कहा गया है कि "सुनो." यहभी समझमे आ सकता है क्यों कि यदि वे न सुनें तो हम उनकी विनतीही क्यों करें?

सूर्य्यको दूरदर्शी कहते हैं–क्यों नहीं–क्या हम सूर्यकी किरणोंको नहीं देखते कि अंधेरेमें घुसकर हमारी छतपर प्रतिदिन झांकती हैं. क्या इन किरणोंके कारणसे हमको देखना असम्भव है? तब हम सूर्यको दूर प्रकाशक, दूर चमकनेवाला और दूरदर्शी क्यों न कहें?

नदियां माता कही गई हैं–क्यों नहीं?–क्या वह खेतों व चौपायोंको नहीं पालतीं? जब अच्छी ऋतुमें नदियोंसे हमको जल मिलता है तो क्या हमारी जीविका उनसे होना असंभव है? यदि आकाश "न बाप" या "बापकी तरह" कहा गया है तो क्या वह हमारा बचाव और सब संसारका बचाव नहीं करता? क्या और कोई पदार्थभी ऐसा पुराना, ऐसा ऊंचा किसी समय ऐसा भयानक है?"

हमको आश्चर्य नहीं है, यदि ये पदार्थ–जिनको हमारी भाषामें देव (तेजस्वी), (उपनिषदमें देव शब्द केवल शक्तिके अर्थमें वर्ता गया है वहुधा प्राण व इंद्रियोंकेलियेभी. खण्ड उपनिषद ६–३–२)

---

१. ऐसे लोग वहुत कम मिलते हैं जो एक ईश्वरको माननेवालोंके विरुद्ध लोककी शक्तिकी टीका करते हैं. हम यह ख्याल नहीं कर सकते कि जब एक परमेश्वर माना गया तो और वहुतसे देवता कैसे माने जाते हैं? सेल्सेसने मीकाको अनेकेश्वरी धर्मके पक्षपातमें यहुदी और इसाईयोंको एकेश्वरी धर्मके विरुद्ध लिखा है. वह लिखते हैं–" यहूदी प्रकाशक आकाशवासियोंको मानते हैं, परन्तु आकाशमे जो वड़े वड़े चमत्कारी पदार्थ हैं उनको नहीं मानते हैं. वह अन्धेरे और स्वप्नके अनुमानको मानते हैं, लेकिन वह उनकी परवाह नहीं करते जो दयावान्, उपकारी, व तेजस्वी हैं, जिन्सेकि वर्षा व ग्रीष्म होती है. वह मेघ, विद्युत्, व गरज जिनसे पृथ्वीमें फल व धरतीके रहनेवाले बचते हैं, जिनसे ईश्वरका होना साबित होता है, जो आकाशमें आविर्भूत हैं.

चमकदारको कहते हैं, जैसे कि हमारे पूर्व पुरुषभी कहते थे. यदि ये पदार्थ इसलिये स्तुति किये गये थे कि उनसे मधु (आनन्द) और भोजन मिले, क्यों कि हम जानते हैं कि इन सब पदार्थोंसे लाभ होता है. पहिली विनय—जिससे हमको आश्चर्य होता है वह विनय—यह है जिसमे उन पदार्थोंसे यह कहा गया है कि हमे पापसे बचाओ. ज्ञात होता है कि यह आन्तिक कल्पना है. ये सब बातें वेदहीमें हैं लेकिन हमको यह न समझना चाहिये कि सब वेद एकही समयका है. वेदके मंत्र सन् इसवीसे एक सहस्र वर्ष पूर्व इकट्ठ किये गये थे; लेकिन इकट्ठा होनेके बहुत पूर्व वह उपस्थित थे. उन्नतिकेलिये बहुत समय था. यह बातभी हमको न भूलना चाहिये कि मुख्य मुख्य मनुष्योंकी बुद्धिने उस समयके पूर्व कल्पना की हो जो सैकड़ों वर्षों बाद धीरे धीरे पुष्टतासे सत्यता ढूंढनेवाले दलकेसाथ हुआ.

हम अब बहुत दूर पहुंच गये, यद्यपि हम जिस मार्ग चले निष्कंटक और सीधा था. अब हमको यह ध्यान करना चाहिये कि हम वेदके उन कवियोंके सामने हैं जो नदीको माता और आकाशको पिता कहते थे; और जो उनसे यह स्तुति करते थे कि सुनो, और पापसे बचाओ. भला यदि हम उनसे पूछें कि क्या नदी और पहाड़ तुह्मारे देवता हैं! तो वह क्या हमें उत्तर देंगे! कदाचित् वे हमारा अर्थही न समझेंगे. यह ऐसाही प्रश्न होगा जैसे कि लड़कोंसे हम पूछें कि क्या, तुम मनुष्यों, घोड़ों, मक्खियों, मछलियोंको जानवर व साख् व फलको वनस्पति कल्पना करते हो ? उनका उत्तर होगा कि नहीं, क्यों कि अभी वह उस पदतक नहीं पहुंचे है जिसमें कि वह उन पदार्थोंको—जिनके स्वरूपमे अन्तर है—एकही ध्यानमें समझ लें. जैसे जैसे मनुष्य अर्द्धस्पृश्य या अस्पृश्य पदार्थोंको अधिक जानते थे, वैसेही देवताओंका ध्यान होता था. अस्पृश्य, अज्ञातकी खोज जो इन अर्द्धस्पृश्यमें छिपी थी, उस समय प्रारम्भ हुई थी जब कि हमारी दो एक इंद्रियां उस पदार्थकी खोजमें निराश हो जाती थीं. जो पदार्थ पांचों इंद्रियोंसे नहीं जाना जाता था, वह मान लिया जाता था, या उसकी

और तरह खोज होती थी. उन पदार्थोंसे चले जो एक या दो इन्द्रियोंसे मालूम होती थीं और उस स्थानतक पहुंचे जहां कोई इन्द्रि काम नहीं देती थी, परन्तु वह पदार्थ माना जाता था; और वैसा लाभदायक माना जाता था जैसे कि वृक्ष, नदी, पर्वत हैं. अव हम यह देखेंगे कि हम अर्द्धस्पृश्य पदार्थोंसे स्पृश्य पदार्थोंतक कैसे पहुंचते हैं? अर्थात् लौकिक पदार्थोंसे अलौकिक पदार्थको कैसे पहुंचते हैं? सवसे पूर्व अग्निको लीजिये.

## अग्नि.

अग्नि निस्संदेह दिखाईभी पड़ती है और स्पर्शभी की जाती है. लेकिन हमको इस अग्निको भूल जाना चाहिये जिसे कि अव हम जानते हैं, और उस अग्निका अनुमान करना चाहिये जिसे पृथ्वीके प्राचीनवासी जानते थे. यह संभव है कि कुछ समयतक मनुष्य पृथ्वीपर रहा और भाषाएं व कल्पना वननी प्रारम्भ हुई, लेकिन अग्नि जलानेका गुण उन्हे नहीं मालूम था. इस गुणके जाननेके पूर्व मनुष्य विजलीकी चमक देखते होंगे, सूर्यका प्रकाश और उष्णता जानते होंगे, वरन विद्युत् गिरने और वृक्षोंकी रगड़से अग्नि उत्पन्न होकर जंगलोंके जल जानेसे उन्हे आश्चर्य होता होगा. इन वार्तोंसे उनको एक अचंभित ग्लानि होती होगी कि कुछ देर अग्नि हुई और फिर अन्तर्ध्यान हो गई, कि यह कहांसे आई और कहां चली गई? अग्नि एक भूत थी, जो वादलोंसे निकलकर समुद्रमें अन्तर्ध्यान हो जाती थी. क्या वह सूर्यमे नहीं रहती? क्या वह सितारोंमे देशाटन नहीं करती? हमारे सन्मुख ये लड़कपनके प्रश्न हैं लेकिन जवतक मनुष्यको अग्निपर वल न था तवतक ये अनुमान ठीक थे; वरन जव मनुष्यको लकड़ीयां रगड़कर अग्नि निकालना ज्ञात हुआ तव उनकी वुद्धिमें इसका कारण और फल नहीं आता होगा. वह देखते थे कि यकायगी प्रकाश व गर्मी उत्पन्न हो जाती है वह उसपर प्रीतिमान् हो जाते थे जैसे अवभी लड़के अग्निसे खेलने लगते हैं, इसी तरह

परभी खेलते होंगे. वे उसका चर्चा व अनुमान कैसे करते थे? उन्होने उसका वही नाम रक्खा जो उसके काम थे. इसीसे उसका नाम प्रकाशक अथवा जलानेवाला रक्खा जो बिजली और सूर्यकी तरह प्रकाशित था. मनुष्य उसके शीघ्र चलनेसे और झटपट अन्तर्ध्यान हो जानेसे आश्चर्य करते थे इसलिये उसका नाम अग्निः ( तेज ) रक्खा और लैटिन भाषामें उसे " इग्निस् " कहते थे. इसी तरह उसकी औरभी कई बातें थीं कि वह दो लकड़ियोंकी औलाद है, जो उत्पन्न होतेही अपने माता पिताको खा जाती है. पानीके स्पर्शसे वह कैसे लुप्त हो जाती अथवा बूझ जाती थी, पृथ्वीपर मित्रकी तरह रहती है, जंगलके जंगल साफ कर देती है, इसी प्रकार धरतीसे आकाशको हव्य ले जाती है और इसी प्रकार मनुष्य और देवताओंमें मध्यस्थ व दूत है. इसलिये हमको अचम्भा नहीं करना चाहिये कि उसके बहुतसे नाम और उपनाम हैं और बहुतसे कथाये हैं. न हमको इस प्राचीन इतिहासमें आश्चर्य करना चाहिये कि अग्निहीमें अदृष्टत्व अज्ञातत्व, हैं जिससे हम इनकार नहीं कर सक्ते कदाचित् वही ईश्वर हो.

## सूर्य्य.

अग्निके अनन्तर और कभी कभी अग्निस्वरूपमानित सूर्य्य है. इससे और उन पदार्थोंसे—जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है—यह अन्तर है कि यह नेत्रेन्द्रिय छोड़ और इन्द्रियोंकी शक्तिसे परे है. धरतीके अगले वासियोंके मनोंमें सूर्य्यका पद क्या था हम इस बातको स्पष्टतः न समुझ सकैंगे. टिंडाल साहबभी—जो महान् अंग्रेजी पदार्थशास्त्रज्ञ हैं और जिन्होंने अति नूतन पदार्थज्ञान ललित चित्तवेधक वाक्योंमे वर्णन किया है जिससे हमको यह शिक्षा होती है कि कैसे हम वास करते, चलते, डोलते ऊसी आधारपर प्राण पोषण करते, उसीका दाह करते, उसीको स्वास लेते और उसीको अशन करते हैं. यह बातेंभी हमको अज्ञानतामें छोड़ती हैं कि इस प्रकाश

और जीवनके मूल, इस चुप चलनेवाले इस महा प्रतापशील राजा, इस विदा होनेवाले मित्र अथवा मरणोन्मुख वीरकी अपनी दैनिक व वार्षिक द्विविध गतियोंद्वारा पूर्वकालीन मनुष्यजातिमें क्या कल्पना उत्पन्न होती होगी? लोगोंको आश्चर्य्य होता है कि क्यों प्राचीन पुराणोक्त इतिहास और आर्य्यलोकके नित्य प्रति इतिहास सूर्य्यविषयिक हैं? और क्या वह होते? सूर्य्यके नाम अगणित हैं और उसकी कथाभी अगणित हैं. परन्तु वह कौन था, कहांसे आया, और कहां जाता था, यह बात आरम्भसे अन्त पर्य्यन्त गूढ़ रही. यद्यपि और पदार्थोंकी अपेक्षा सूर्य्य अधिक ज्ञानगम्य पदार्थ था तथापि कोई कोई वस्तु उसमें सर्वदा गुप्त रही. जैसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके अति गम्भीर हृदयकी थाह लेनेकी इच्छा करता हुआ और उसके अन्तःकरण ढूंढने और पहुंचनेकी आशा रखता हुआ उसकी दृष्टिमें दृष्टि मिलाता है परन्तु वह न उसको कभी पाता, न देखता, और न छू सक्ता है. तथापि वह उस अन्तर्गत भेदपर सर्वथा विश्वास करता है. कभी संशय नहीं लाता. किमपि पूज्य मानता और प्रेमपात्र ठान लेता है. ऐसेही मनुष्य सूर्य्यकी ओर देखता, उससे उत्तरकी आकांक्षा करता और यद्यपि वह उत्तर कभी न आता और उसकी इन्द्रिय चक्षु उस प्रकाशके सम्मुख जिसे वह न सह सक्ता था मन्दत्वको पहुंचती धुंधली हो अन्धी हो जाती, तिसपरभी उसको कभी यह न संदेह होता कि अदृश्य वहीं था और जहां उसके इन्द्रियव्यापार निष्फल हुये, जहां वह न कुछ देख सक्ता था, न समुझ सक्ता था वहींपर वह सदैव अपनी आंख मूद विश्वास करता और साष्टांग प्रणाम कर पूजा कर सक्ता था.

आर्य्यावर्तके अति नीच सांथल सूर्य्यपूजक माने जाते हैं. वह लोग सूर्य्यको 'चंदो' कहते हैं जिसका अर्थ देदीप्यमान है और वह चन्द्रमाकाभी एक नाम है जिसको संस्कृतमें 'कान्द्र' कहते हैं. वह उन धर्मोपदेशक लोगोंसे जो उनके बीच आ बसे थे कहा करते थे कि 'चन्दो' ने संसार उत्पन्न किया और जब मिशनरी लोग उन्हे समझाते

यहभी खेलते होंगे. वे उसका चर्चा व अनुमान कैसे करते थे? उन्हो-ने उसका वही नाम रक्खा जो उसके काम थे. इसीसे उसका नाम प्रकाशक अथवा जलानेवाला रक्खा जो बिजली और सूर्यकी तरह प्रकाशित था. मनुष्य उसके शीघ्र चलनेसे और झटपट अन्तर्ध्यान हो जानेसे आश्चर्य करते थे इसलिये उसका नाम अग्निः ( तेज ) रक्खा और लैटिन भाषामें उसे " इग्निस् " कहते थे. इसी तरह उसकी औरभी कई बातें थीं कि वह दो लकड़ियोंकी औलाद है, जो उत्पन्न होतेही अपने माता पिताको खा जाती है. पानीके स्पर्शसे वह कैसे लुप्त हो जाती अथवा बूझ जाती थी, पृथ्वीपर मित्रकी तर-ह रहती है, जंगलके जंगल साफ कर देती है, इसी प्रकार धरतीसे आकाशको हव्य ले जाती है और इसी प्रकार मनुष्य और देवताओंमें मध्यस्थ व दूत है. इसलिये हमको अचम्भा नहीं करना चाहिये कि उसके बहुतसे नाम और उपनाम हैं और बहुतसे कथाये हैं. न हमको इस प्राचीन इतिहासमें आश्चर्य करना चाहिये कि अग्निहीमें अदृष्टत्व अज्ञातत्व, हैं जिस्से हम इनकार नहीं कर सक्ते कदाचित् वही ईश्वर हो.

## सूर्य्य.

अग्निके अनन्तर और कभी कभी अग्निस्वरूपमानित सूर्य्य है. इससे और उन पदार्थोंसे—जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है—यह अन्तर है कि यह नेत्रेन्द्रिय छोड़ और इन्द्रियोंकी शक्तिसे परे है. धरतीके अगले वासियोंके मनोंमें सूर्य्यका पद क्या था हम इस बातको स्पष्टतः न समुझ सकैंगे. टिंडाल साहबभी—जो महान् अंग्रेजी पदार्थ-शास्त्रज्ञ हैं और जिन्होंने अति नूतन पदार्थज्ञान ललित चित्तवेधक वाक्योंमे वर्णन किया है जिससे हमको यह शिक्षा होती है कि कैसे हम वास करते, चलते, डोलते ऊसी आधारपर प्राण पोषण करते, उसीका दाह करतें, उसीको स्वास लेते और उसीको अशन करते हैं. यह बातेंभी हमको अज्ञानतामें छोड़तीं हैं कि इस प्रकाश

और जीवनके मूल, इस चुप चलनेवाले इस महा प्रतापशील राजा, इस विदा होनेवाले मित्र अथवा मरणोन्मुख वीरकी अपनी दैनिक व वार्षिक द्विविध गतियोंद्वारा पूर्वकालीन मनुष्यजातिमें क्या कल्पना उत्पन्न होती होगी? लोगोंको आश्चर्य होता है कि क्यों प्राचीन पुराणोक्त इतिहास और आर्य्यलोकके नित्य प्रति इतिहास सूर्य्य-विषयिक हैं? और क्या वह होते? सूर्य्यके नाम अगणित हैं और उसकी कथाभी अगणित हैं. परन्तु वह कौन था, कहांसे आया, और कहां जाता था, यह बात आरम्भसे अन्त पर्य्यन्त गूढ़ रही. यद्यपि और पदार्थोंकी अपेक्षा सूर्य्य अधिक ज्ञानगम्य पदार्थ था तथापि कोई कोई वस्तु उसमें सर्वदा गुप्त रही. जैसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके अति गम्भीर हृदयकी थाह लेनेकी इच्छा करता हुआ और उसके अन्तःकरण ढूंढने और पहुंचनेकी आशा रखता हुआ उसकी दृष्टिमें दृष्टि मिलाता है परन्तु वह न उसको कभी पाता, न देखता, और न छू सक्ता है. तथापि वह उस अन्तर्गत भेदपर सर्वथा विश्वास करता है. कभी संशय नहीं लाता. किमपि पूज्य मानता और प्रेमपात्र ठान लेता है. ऐसेही मनुष्य सूर्य्यकी ओर देखता, उससे उत्तरकी आकांक्षा करता और यद्यपि वह उत्तर कभी न आता और उसकी इन्द्रिय चक्षु उस प्रकाशके सम्मुख जिसे वह न सह सक्ता था मन्दत्वको पहुंचती धुंधुली हो अन्धी हो जाती, तिसपरभी उसको कभी यह न संदेह होता कि अदृश्य वहीं था और जहां उसके इन्द्रियव्यापार निष्फल हुये, जहां वह न कुछ देख सक्ता था, न समुझ सक्ता था वहींपर वह सदैव अपनी आंख मूंद विश्वास करता और साष्टांग प्रणाम कर पूजा कर सक्ता था.

आर्य्यावर्तके अति नीच सांथल सूर्य्यपूजक माने जाते हैं. वह लोग सूर्य्यको 'चंदो' कहते हैं जिसका अर्थ देदीप्यमान है और वह चन्द्रमाकाभी एक नाम है जिसको संस्कृतमें 'कान्द्र' कहते हैं. वह उन धर्मोपदेशक लोगोंसे जो उनके बीच आ बसे थे कहा करते थे कि 'चन्दो' ने संसार उत्पन्न किया और जब मिशनरी लोग उन्हे समझाते

कि कैसी मूर्खताकी बात है कि सूर्य्य संसारका उत्पत्तिकारक है! तो वह यह प्रत्युत्तर देते कि हम इस दृश्य चन्दोको नहीं कहते किन्तु हमारा चन्दो अदृश्य है!

## उषा.

प्राचीनकालमें उषाका अर्थ प्रभातकाल उदयिक सूर्य्य, अरुणोदयिक प्रकाश, और अस्त होनेहारा सूर्य्य था. परन्तु कुछ कालके अनन्तर यह दोनों प्रकार भिन्न हो चले और उनसे अनेक प्रकारकी कथा और पुराणोंका संग्रह हुआ. प्रभातसमय व सन्ध्यासमयकेसाथ थोड़े कालमें दिन और रात्रि हुये और उसके अनन्तर उनके कईएक युग्म प्रतिनिधि संस्कृतके युगल, अश्विनीकुमार, द्यावापृथ्वी, और उनके अनेक परिवार हो गये. सारांश यह कि हम पौराणिक इतिहास और धर्म्मके मध्यस्थलमें आ पहुंचते हैं.

## वैदिक देवताओंके श्राव्य पदार्थ.

वह समस्त अस्पृश्य पदार्थ जिनपर विचार कर चुके हैं हमारे निकट लाये गये थे और उनकी परीक्षा नेत्रेंद्रिय द्वारा हो सक्ती थी. अब हमको उन पदार्थोंपर विचार करना है जो कि हमारे निकट केवल श्रवणेन्द्रिय द्वारा आ सक्ती हैं परन्तु और सब इन्द्रियोंकेलिये अगम्य हैं. *

---

* ज़ेनोफन (एक ग्रीक इतिहासकारी) लिखते हैं कि कल्पना करो कि सूर्य जिसे सब लोग देख सकते हैं वह अपनेको सुप्रकार दृष्टि नहीं करने देता. यदि कोई उसको अच्छी तरह तक्ता है तो उसकी दृष्टि जाती रहती है. तुमको यहभी ज्ञात होगा कि देवताओंके मंत्री दिखलाई नहीं पड़ते. जैसे बिजली ऊपरसे आती है और मार्गके प्रत्येक पदार्थपर जय पाती है परन्तु यह नहीं ज्ञात होता कि वह कब आती है और कब मारती है और कब जाती है और न हम वायुको देख सक्ते हैं जो हम उसे आते हुये जानते हैं और जो वह करती है उसेभी जान लेते हैं.

## मेघ ( गर्जना ).

हम गरजका शब्द सुनते हैं, परन्तु न उसे छू सकते हैं, न सूंघ सकते हैं, न स्वादु ले सकते हैं. प्राचीन आर्य लोग यह अनुमान नहीं कर सकते थे कि गरज किसी ऐसे पदार्थका चिल्लाना है जिसका कोई स्वरूप नहीं. जब उन्होंने गरज सुनी उनको गर्जनेवालेका अनुमान हुआ जैसे जब उनको जंगलमे हल्ला सुनाई पड़ा तो किसी चिल्लानेवाले या शेरका अनुमान हुआ. उनके निकट कोई ऐसा शब्द नहीं हो सकता था कि जो किसी मुख्य मनुष्यसे न उत्पन्न होता हो. यह पहिला उदाहरण ऐसे पदार्थका है कि गर्जनेवाला वह पदार्थ था जिसको हम देख नहीं सकते थे लेकिन जिसके होनेमे और जिसकी भलाई बुराई करनेके बलमे सन्देह नहीं कर सकते थे. वेदमे ऐसे गर्जनेवालेका नाम " रुद्र " है और हम सरलतासे समझ सकते हैं कि जब एक बार ऐसा नाम हो गया तब यह कहना कैसा सरल था कि रुद्र या गर्जनेवाला कड़कड़ाते हुये पत्थर ले चलता है, वरन तीर व कमानभी साथ रखता है, जिससे वह दुष्टोंको मारता, सज्जनोंको बचाता, जिससे वह अन्धकार पश्चात् प्रकाश लाता है, उष्णता अनंतर शीतलता लाता है, रोग्यता उपरान्त आरोग्यता लाता है. मुख्य करके तो जब वृक्षमे कोंपलें निकल आईं तब कितनी शीघ्र वह वृक्ष सन्नद्ध हो जाय हमको अचम्भा न होगा?

## वायु.

दूसरा अनुमान—जो मुख्यकर छूनेकी इन्द्रीसे संभव होता है और उसकी साक्षी कानोंसे और नेत्रोंसे होती है आंधी है. इससेभी हमारी तरह अगले अनुमानोंमे यह नहीं आ सकता था कि वायु चलानेवाला और आंधीका झिकोर अलग अलग है. वेदमे हम वायु ( हवा चलानेवाला ) और वात ( झोंका ) केलिये मंत्र पाते हैं और इनको पुल्लिंग समझा है न कि नपुंसक.

यद्यपि बहुधा आंधीकी बड़ाई नहीं की गई है परन्तु जब की गई

है तब बहुत प्रतिष्ठाकेसाथ. इसको सारी पृथ्वीका राजा, सबसे पूर्वज पदार्थ, देवोंका स्वास, सृष्टिमूल, कहा है. जिसका शब्द हम सुनते हैं परन्तु देख नहीं सकते. ( ऋग्वेद १०–१६८ ).

## मरुद्देव.

मरुद्देव प्रलयके देवता हैं. हवाको छोड़कर प्रलय हैं जिन्हें वेदमे मरुत् कहते हैं; जिसके अर्थ पीसनेवाले, मारनेवालेके हैं. जो पागल मनुष्यकी तरह बढ़ता है, गर्ज और विजलीसाथमें गर्दके भवॅर उठाता है, वृक्षोंको झुकाता और तोड़ता है, मकानोंको गिरा देता है, मनुष्य और पशुओंकोभी मार डालता है, पर्वतोंको विदीर्ण करता, चट्टानोंके टुकड़े टुकड़े कर डालता है–यहभी आते हैं और चले जाते हैं लेकिन कोई उनको गृहण नहीं कर सकता. न कोई यह वता सकता है कि कहांसे आये और कहांको चले गये? परन्तु इन मरुत् देवोंके होनेमे कौन संदेह करेगा? कौन अच्छे ध्यान, अच्छे पदों और सुकर्मोंसे उनके पूजन न करेगा? और झुककर उनकी दंडवत न करेगा? इस अनुमानसेभी धर्मकल्पनाकी जड़ पड़ी है कि वह हमको पीस सकते हैं और हम उनको पीस नही सकते.

वरन यह ऐसा पाठ है कि जिसे आजकलके समयमेभी वहुत लोग समझ सकेंगे. यह श्लियरमेकरकी सम्मतीसे अच्छा है जिसकी सम्मति यह है कि किसी पदार्थपर हमारा आवश्यक संकल्प है जो हमारी इति कर देता है परन्तु जिसका हम पूर्णत्व नहीं कर सकते. हमको उस प्राचीन निश्चयपर आश्चर्य न करना चाहिये कि जिस तरह अग्निमे उसी तरह वायुमें कोई पदार्थ अदृश्य, अज्ञात, स्वीकृतनीय है. क्या आश्चर्य है कि यही परमेश्वर है.

## वृष्टि व वृष्टिकर्ता.

अन्तमे हम वृष्टिकी चर्चा करते हैं. निस्संदेह यह अस्पृश्य पदार्थोंके भेदमे कठिनतासे आता है. यदि हम इसको केवल पानीही समझें

और वही नाम रक्खें तो वह प्रति प्रकार स्पर्श होगा, लेकिन पूर्वकालकी कल्पनाको पदार्थोंके अन्तरपर समता सम्बन्धसे अधिक अनुमान करते थे. उन लोगोंकेलिये वृष्टि केवल जल नहीं है वरन ऐसा जल है कि जिसका हाल उनको नहीं ज्ञात होता कि कहांसे आया है. वह जल जो यदि कुछ काल नहीं आता है तो बहुतसे वृक्ष, जानवर, मनुष्य मर जाते हैं. जब फिर आ जाता है तो कुल सृष्टीके पदार्थोंपर यौवन आ जाता है. कोई कोई देशोंमें गर्जनेवाला और हवा चलानेवाला केवल एक वृष्टिकर्ता व सींचनेवालाभी हुआ.

संस्कृतमें जलके परमाणुओंको "इन्दु" जो पुलिंग है कहते हैं उनके भेजनेवालेको "इन्द्र" अर्थात् वृष्टिकर्ता या सींचनेवाला कहते हैं. यह नाम वेदमें मुख्य ईश्वरका है जिसे आर्यावर्तके अर्थात् सप्तनदके मध्यवासी पूजते थे.

## वेदकी देवमण्डली.

इस प्रकार मैंने देखा कि आकाश जो मुख्यकर प्रकाशक, व सृष्टि-प्रकाशक था और इसलिये "द्यौः" या "ज्यूपिटर" कहलाता था, अलग कर दिया गया और विरुद्ध देव उसके स्थान आ गये, जो आकाशके मुख्य कार्योंमें हैं. जिस तरह गर्ज, व वर्षा, या मरुत् सिवाय इसके आकाशको छोड़कर एक और ऐसा पदार्थ था जो कुछ कार्य कर्ता न था तौभी उसमें ढांकने और कुल संसारके बचानेका बल था, जिससे यह अनुमान उत्पन्न हुआ कि आकाश वह देवता है जो कुल पदार्थोंको घेरे हुए है. इस दशामे यह देव रातका देवता था जो दिनके देवताके विरुद्ध था.

इस प्रकारसे दो सम्बन्धी देवोंका अनुमान जम सकता था अर्थात् एक रातका, दूसरा दिनका, या प्रातःसायंका, या पृथ्वी आकाशका। यह सब रदबदल हमारी दृष्टिके सामने वेदमें व्यतीत होते हैं, और देवोंके ऐसे जोड़े ज्ञात होते हैं जैसे सर्वव्यापी वरुण, ग्रीकमें यूरेनस्

और मित्र ( दिनका प्रकाशक सूर्य ), अश्विना ( प्रातः सायं ), द्यावा-पृथ्वी ( आकाश, धरती ) आदि.

इस तरह हम देखते हैं कि कुलदेव वेदके कवियोंके—जो आर्यावर्तमें सबसे प्राचीन है—हमारे नेत्रोंके सामने फिरते हैं. हमने जड़ोंका अधिक ध्यान किया है परन्तु हम सरलतासे समझ सकते हैं कि यह कैसे बहुत बढ़े होंगे जब कि कविताईकी किरण इनपर पड़ी होगी, या तत्वविज्ञानज्ञ विद्वानोंने इनपर ध्यान जमाये होंगे.

हमने तीन भेद देवताओंके किये (हम देवताका शब्द इसलिये वर्तते हैं क्यों कि और कोई शब्द—जैसे सत्व ( beings), गुण (Powers), शक्ति ( Forces ), जीव ( spirits ) काम नहीं दे सकते.) क्यों कि ये शब्द अत्यन्त भाववाचक हैं. ( १ ) अर्द्धदेवता—वृक्ष, पर्वत, नदी, पृथ्वी व समुद्र (अर्द्धस्पृश्य पदार्थ.) ( २ ) देवता—आकाश, सूर्य, चन्द्र, अरुणोदय, अग्नि ( अस्पृश्य पदार्थ.) गर्जना, विद्युत्, वायु, व वृष्टि यह चार अनियमित समय आनेसे विलग भेदमे आ सकते हैं; यद्यपि येभी क्रियावान् हैं.

## देव.

इन सब पदार्थोंकेलिये हम संस्कृत शब्द 'देव' का वर्ताव करेंगे. देवके मुख्य अर्थ प्रकाशक हैं, और यह शब्द अग्नि, आकाश, उषा, सूर्य, नदी, वृक्ष और पर्वतोंके निमित्त वर्ता जाता था. इस तरहपर यह एक सामान्यनाम हो गया और वेदमेंभी कोई ऐसा पुराना मंत्र नहीं है जिसमें देवका मुख्य अर्थ प्रकाशकके और आकाशिक पदार्थोंके न हों, जो कि रात, जाड़े अंधेरेके विरुद्ध हैं. जब इसके मुख्य अर्थ भूल गये तब देव प्रकाशक शक्तियोंकेवास्ते वर्ताव होने लगा और यही शब्द लैटिनमे डीयस और अंग्रेजीमें डीइटी ( Deity ) है. वेदके देवमें व अंग्रेजी डीइटीमें ध्यान व शब्द एकही है.

## दृश्य व अदृश्य.

जो वार्ता दर्शानेकी मेरी चाह थी वह वार्ता मैंने आपको दर्शाई

कि दृश्यसे अदृश्यको हम कैसे पहुंचे—चमकीले पदार्थों अर्थात् देवसे —जिनको हम छू सकते हैं जैसे नदी, या जिनको हम सुन सकते हैं जैसे गर्जना, या जिनको हम देख सकते हैं जैसे सूर्य, हम उन देवताओंतक पहुंचे जिनको न हम छू सकते हैं, न सुन सकते हैं, न देख सकते हैं. देवके शब्दसे हमको जान पड़ा कि हमारे प्राचीन पुरुष उन पदार्थोंसे जिनको हमारी इंद्रियां जान सकती हैं, हम उन पदार्थोंतक कैसे पहुंचे जो हमारी इंद्रियोंकी पहुंचसे बाहर हैं—स्वयं सृष्टिने यह मार्ग बना रक्खा था, या यदि स्वयं सृष्टि एक देवके भेषमे है तो उस पदार्थने मार्ग बनाया जो सृष्टिसेभी बढ़कर है.

यही प्राचीन मार्ग आर्य पुरुषोंके निमित्त था और इसी मार्गसे हमभी ज्ञात पदार्थसे अज्ञातपदार्थतक, और सृष्टिसे सृष्टिकर्तातक पहुंचते हैं. परन्तु तुम यह कह सकते हो कि "यह मार्ग ठीक न था. इससे यह हो सकता है कि हम बहुतसे देवताओंतक या एक देवतातक पहुंचें, परन्तु अन्तको सब सत्य विचारनेवाले नास्तिक हो जायंगे. मनुष्य कार्यों और व्याख्यानोंका चर्चा कर सकता है, परन्तु कार्यकर्ताओंकी चर्चा नहीं कर सकता."

मेरा उत्तर यह है कि "तुम सच कहते हो कि इस मार्गसे वैदिक आर्य अनेकेश्वरीय व एकेश्वरीय वा नास्तिक हो गये. लेकिन प्राचीन देवोंसे नाहीं करके वे लोग उस समयतक नहीं ठहरे जबतक कि उन्होंने देवोंसे बढकर कोई पदार्थ न प्राप्त कर लिया, अर्थात् संसारकी और अपनी सत्यात्मा. हम लोगभी प्राचीन आर्योंसे विरुद्ध नहीं करते. हमभी जब कोई काम देखते हैं तो कार्यकर्ताका, और जब कोई प्रसिद्ध व्याख्यान देखते हैं तब व्याख्यानदाताका, अनुमान अवश्य करते हैं. यदि यह बात जाती रहे तो कार्य व व्याख्या कोई पदार्थही न रहें. हमारी कुलभाषा व कल्पना, हमारे कुलपदार्थोंकी जड़ इसी निश्चयपर है. यदि यह बात जाती रहे तो हमारे मित्रोंके नेत्र प्रकाशक न रहें, वरन शीशेके हो जायें, और हम स्वयं कुछ न रहें, और हम स्वयंभी कार्यकर्ता न रहें, वरन एक कार्य हो जाय अर्थात् बिना

आत्माके हम एक ऐसे यंत्र हो जायंगे जिसमे चलनेका वल न रहे. वह मार्ग जिससे आर्य लोग दृष्टसे अदृष्टको, और सान्तसे अनन्तको पहुंचे. लंबा और ऊंचा खाली था परन्तु वही सीधा मार्ग था. यद्यपि हम पृथ्वीपर उस मार्गके अन्ततक पहुंचे तद्यपि उसका हमको निश्चय लाना चाहिये क्यों कि उसके सिवाय और हमको दूसरा मार्ग नहीं. इसी मार्गसे मनुष्य एक स्थानसे दूसरे स्थानतक वढ़ता गया है. जितने ऊंचेपर हम चढ़ते जाते हैं उतनीही सृष्टि छोटी होती जाती हैं. ज़हां जहां हम पहुंचते जाते हैं हमारी दृष्टि दूरतक पहुंचती जाती है, हमारा मन वढ़ता जाता है, और हमारे शब्दोंके अर्थ अधिक होते जाते हैं. मै अपने एक मित्रके वाक्य यहांपर लिखता हूं,—" वह हमारे सीधे साधे पुरुष " चार्ल्स किंक्स्लीकी प्रतिज्ञाके अनुकूल, " पृथ्वीपर देखते थे और यह कहते थे कि यदि सवका पिता है तो कहां है ? वह इस धरतीपर नहीं है क्यौं कि वहभी मिट जायगी. वह सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंमे नहीं है क्यौं कि वहभी मिट जायंगे. वह कहां है ! जो कि सदैव रहेगा. तव उन्होंने ऊपरको देखा और देखके यह अनुमान किया कि सूर्य, चंद्र व सितारों और उन पदार्थोंके उस पार जो वदलते हैं और वदल जायंगे साफ नीला और अनन्त आकाश है, यह आकाश कभी नहीं वदलता, सदैव ऐसाही रहता है. मेघ, मरुत्, व सृष्टिका घोर शब्द आकाशके वहुत नीचे रहता है, परन्तु आकाश सदैव उसी प्रकार प्रकाशक व सावधान रहता है. सवका पिता वहीं रहता होगा क्यौं कि वह न वदलनेवाला पदार्थ न वदलनेवाले आकाशमे रहता होगा. वह पदार्थभी आकाशकी तरह प्रकाशक, स्वच्छ, अनन्त, सावधान, औ दूर होगा. "
इस सवके पिताको सव लोग क्या कहते थे—पांच सहस्र वर्ष वीते या उससे पूर्वभी आर्य लोग उस समय इसे द्यौः (पितर) कहते थे जवकि वह न संस्कृत, न यूनानी, न लैटिन वोलते थे. चार सहस्र वर्ष व्यतीत हुए या उससे पूर्व वे आर्य लोग जो दक्षिणाकी ओर पंजावकी नदियोंके पार गये थे उसको द्यौः (पिता) आकाशवाप कहते थे.

तीन सहस्र वर्ष हुए या उससे पूर्व वह आर्य लोग जो हिलेस्पांटके किनारे रहते थे उसे द्योष्पेतर ( आकाशी बाप ) कहते थे. दो सहस्र वर्ष बीते इटलीके आर्यप्रकाशक आकाशको लेकर उसको ज्यु–पितर ( आकाशी बाप ) कहते थे. एक सहस्र वर्ष व्यतीत होनेके पीछे इसी आकाशी बाप व सबके पिताकी विनय हमारे प्राचीन पुरुष जर्मनीके अंधेरे जंगलोंमें करते थे और वह आन्तिक बारी थी जब उसका प्राचीन नाम तिगु अथवा क्षियो था.

परन्तु कोई कल्पना वा कोई नाम बिलकुल मिट नहीं जाता है. इस स्थानमेभी यदि हम उस अदृष्ट और अनन्तकेलिये जो हमारे चारों ओर है या उस अज्ञात या सृष्टिकी और अपनी सत्यात्माकेलिये जानना चाहें तो हम उन लड़कोंकी तरह जो अंधेरे मकानमें घुटनों बल प्रार्थना करते हैं इससे अच्छा नाम नहीं पा सकते–" हमारा बाप जो आकाशमें है. "

# पांचवा व्याख्यान.

## अनन्तत्व, सृष्टिनियमकी कल्पना.

प्रति दैनिक, सप्ताहिक, मासिक, त्रिमासिक समाचारपत्र जो बहुत पढ़े जाते हैं एकसे एक बढ़कर इस बातके कहनेपर सन्नद्ध हैं कि धर्मका समय व्यतीत हो गया, निश्चय एक भान्ति व बालरोग है कि देवोंका समाचार स्पष्ट हो गया, और वे मिट गये, कि उस विद्याके सिवाय जो हमारी इन्द्रियोंसे जान पडता है और कोई विद्या नहीं है कि हमको समाचारों और ससीम पदार्थोंतक रहना चाहिये और अब कोषोंसे अनन्त और ऐसे पदार्थोंको निकाल देना चाहिये. मेरा यह अर्थ अद्भुत नहीं है कि इन व्याख्यानोंमें किसी मुख्य मतका खंडन, मंडन करना चाहूं. इन दोनों कार्योंके निमित्त बहुतसे मनुष्य हैं. जैसा कि मेरा और इन व्याख्यानोंके बानीका सिद्धान्त सारा विरुद्ध है. वह एक ऐतिहासिक और बुद्धिमानीका काम है. पंडितों व मुल्लाओं व पादरियोंको यह तै करने दो कि कौन धर्म पूर्ण या अपूर्ण अथच सत्य या असत्य है? हम केवल यही जानना चाहते हैं कि धर्म किस रीति संभव है कि हमसे मनुष्योंका कोई धर्म क्योंकर हुआ? मत क्या है? और जैसा वह अब है वैसा कैसे हुआ?

जब हम भाषाशास्त्रके गुणोंमे पैठते हैं तो हमारा प्रथम तात्पर्य यह नहीं होता है कि यह खोज करें कि एक भाषा दूसरी भाषासे पूरी है या उसमे अधिक अनियत संज्ञा या अधिक क्रिया होते हैं. हम इस बातको निश्चय करके नहीं चलते हैं कि एकही भाषा प्रारम्भमे थी या अब है या अन्तमेभी एकही भाषा होगी, जिसको हम भाषा कह सकेंगे. नहीं, हम केवल व्याख्याको इकट्ठा करते हैं,

उनको सरल करते हैं, और इसी तरह सब भाषाओंका मूलत्व, और वह नियम कि जिनसे मानुषी भाषाकी उन्नति, या घटती हुई,और वह सीमा जहां भाषा पहुंचना चाहती है, हम खोज करनेकी आशा करते हैं. यही हाल धर्मका है. अपनी भाषा या अपने धर्मके बारेमें हमारे सबके मुख्य अनुमान हों परन्तु जब हम इतिहास लिखनेवाले होंगे तब हम सबकेसाथ एकही बर्ताव करेंगे. सारी पृथ्वीके मतको इतिहासकी गवाही इकट्ठी करके उसे छानेंगे और सरल करेंगे और यह जानने-का श्रम करेंगे कि सब मतोंका मूलत्व क्या है, और उसकी घटती बढतीके नियम क्या हैं, और वह ईश्वर कौन है कि जिसकी ओर मत झुकते जाते हैं. इस बातका उत्तर देना कि एक मत सबका हो सकता है या नहीं ऐसाही कठोर है—जैसा इसका उत्तर देना कि सबकी भाषा एक हो सकती है या नहीं. यदि हम इतना जान लेवें कि सबसे अधिक अपूर्ण मत अपूर्ण भाषाकी तरह हमारे अनुमानसे अधिक आश्चर्यक है तो हमको एक बहुत आवश्यक पाठ मिल जायगा. एक पुरानी कहावत है कि हम किसी पदार्थको नही जान सकते जबतक उसके प्रारम्भसे जानकारी ( ज्ञाता ) न हो. हम धर्मके संबंधमें बहुत कुछ जान लें, बहुत शुद्ध धर्मशास्त्र पढ़ लें, संसारके बहुतसे मतों और उसके नियमोंको जान जावें, तबभी हम धर्मको नहीं जान सकते जबतक हमको जान न पड़े कि उनकी जड़ क्या है कि जहांसे वह निकले हैं. धर्मकी जड़ोंके जाननेमे हमको कोई पदार्थ सिवाय उनके जो पदार्थ विद्याके जाननेवालोंने मान लिये हैं विना प्रमाणके न मान लेना चाहिये.

प्रथम व्याख्यानमें मैंने वर्णन किया है, कि मैं उनके संकल्पोंको स्वीकार करनेको सन्नद्ध हुं. और अनन्ततक मै इन संकल्पोंका प्रमाण मानूंगा. हमें जान पड़ा था कि किसी विद्याको पक्की विद्या बननेकेवास्ते दो फाटकोंमे होकर निकालना चाहिये.

पहिला फाटक इंद्रियोंका, दूसरा बुद्धि औ ज्ञानका. धर्मसंबंधी विद्याकोभी—सच हो या झूट—इन्ही दो फाटकोंमे होकर

निकालना चाहिये इसलिये हम इन दो फाटकोंपर खड़े होंगे और जो कोई पदार्थ अन्य किसी फाटकसे—चाहे वह फाटक आद्य प्रेरणाका हो या धर्मबुद्धिका हो—उसका हम ध्यान न करेंगे, क्यों कि वह हमारे उपस्थित कल्पनाओंके विरुद्ध है, और उन पदार्थोंकाभी हम ध्यान करेंगे जो बुद्धिके फाटकपर इंद्रियोंके फाटकमे होकर नहीं पहुंचे हैं, क्यों कि उनपर पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता. उन्हे प्रथम फाटकपर लौट जाना चाहिये कि वहां आत्म सत्यता प्रत्यक्ष कर देवें.

इन शर्तोंको मानकर मैंने अपने व्याख्यानोंका यह आशय रख लिया कि धार्मिक कल्पनाओंका उसी समय ग्रहण कर लिया जाय जब वे प्रथमही इंद्रियोंके द्वारपरसे जा रहे हों और यह पूछो कि इन अनुमानोंकी इंद्रियों और सांसारिक पदार्थोंकी सहायसे कैसे जड़ पड़ी? प्रथम मैंने इसके समझानेका परिश्रम किया था कि अनंतकी कल्पना जो मतसंबंधी अनुमानोंकी तहमें है वुद्धिके बलसे नास्तिसे नहीं उत्पन्न हुआ वरन इसका मुख्य स्वरूप इंद्रियोंकी सहायसे बना है. यदि अनंतका अनुमान इंद्रियोंके अनुमानसे नहीं उत्पन्न हुआ है, तो हमको अपने प्रतिज्ञाके अनुसार उसपर वादविवाद न करना चाहिये.

हमिल्टनकी तरह यह कहना ठीक न होगा कि असीम अनंतकी कल्पना न्यायसे आवश्यक है और यह कि हमारा मन ऐसा बना है कि जब हम समय और अंतरकी सीमा स्थित करते हैं तो हमको उस सीमाके बारके अंतर व समयका अनुमान हो जाता है. मैं यह नहीं कह सकता कि यह दलील सच नहीं है मगर उसकेसाथही मै कहता हूं कि यह आवश्यक नहीं कि हमारे विरुद्धी इस तर्कको स्वीकृतही कर लें. इसीलिये मैने यह बतानेका परिश्रम किया था कि ससीमके ऊपर, नीचे, इधर, उधर, असीम प्रति समय हमारी इंद्रियोंके सामने उपस्थित रहता है. चारों ओरसे असीम अपना होना बता रहा है. जिसे हम समय और अंतर स्वरूप शब्दके भयसे ससीम कहते हैं, वह मुख्य तो एक ओट ( पर्दा ) अथवा

जाल हैं, जो हमने स्वयं अनंतपर छोड दिया है. ससीमका अनुमान विना असीमके ध्यानके हो नहीं सकता. इसी तरह असीमका अनुमान विना ससीमके नहीं हो सक्ता. जब बुद्धि ससीम पदार्थोंपर —जिनका जानना इंद्रियोंसे हुआ है—वाद करती है निश्चय या जो चाहें हम उसको कहें अनन्तपर जो ससीममे छिपा है ध्यान करता है. इन्द्री, बुद्धि, और निश्चय एकही आत्माके स्वाभाविक गुण हैं, परंतु विना इंद्रीके बुद्धि व निश्चयका होना हमसे मनुष्योंके निमित्त असम्भव है. आर्यावर्तके प्राचीन इतिहास जहांतक हम ढूंढ़ खोज कर सके हैं वहुतसे विरुद्ध यत्नोंका इतिहास है जो सीमावालेके पर्देमे छिपे हुए असीमके नाम रखनेमे किये गये थे. हम देख चुके हैं कि किस प्रकार हिंदके प्राचीन आर्यों और वेद—कवियोंमे वृक्षों, पर्वतों और नदियोंके देखनेसे, प्रातः सूर्यके देखनेसे, आग, आंधी और गर्जसे, अदृष्ट व अज्ञात व असीमका अनुमान उत्पन्न हुआ. किस तरहसे उन्होंने यह समझा कि प्रति पदार्थोंमें आत्मा और देह व ईश्वरकी सहायता ( या जिस नामसे चाहें उसे कहें ) है और किस तरह उन्हे सदैव यह ध्यान रहता था कि जिन पदार्थोंको हम देखते हैं उनके पीछे कोई ऐसा पदार्थ है जिसे हम देख नहीं सकते और ससीमके पीछे या उसीमें असीम उपस्थित है. इसके नाम जो उन्होंने रक्खे हैं अशुद्ध हों परन्तु जिसकी उन्होंने खोज की एक अशुद्ध पदार्थ न था, अतएव हमको ज्ञात हुआ कि प्राचीन आर्य इस खोजसे क्योंकर उसी सीमातक पहुंचे जहांतक हममेसे बहुत लोग पहुंच गये हैं अर्थात् उस वापकी विद्याको—जो स्वर्गमे है.

अव हमको जान पड़ेगा कि वे इसी सीमातक पहुंचके नहीं रह गये, वरन यह अनुमान कि 'ईश्वर वाप नहीं है,' और फिर पीछेसे यह अनुमान 'मानो वापके है' फिर यह कि 'नहीं, वह सच मुच वाप है.' वेदमें वहुत प्राचीन समयमें अनुमान प्रकट होता है. ऋग्वेदके प्रथमही मंत्रमें जो अग्निकी उपना किया गया है लिखा गया—"हमपर कृपा करो, जैसे पिता स्वपुत्रपर." यही अनुमान वेदके मंत्रोंमे पुनः

पुनः प्रकट किया गया है. ऋग्वेद १–१०४–८ "हे इंद्र ! पिताके तुल्य हमारी वार्तें सुनो." ३–४८–३ मे कवि कहता है कि "इन्द्र भोजन देता है और हमारी स्तुतिको सुनता है और बापकी तरह हमपर कृपालू है." ७–५४–२ मे इन्द्रसे विनती की गई है कि "हमारेऊपर दयालु हो, जैसे पितृ स्वपुत्रोंपर." ऋग्वेद ८–२१–१४ में लिखा है कि "जब तू गरजता है और बादलोंको जमा करता है तब तू पिता कहाता है." ऋग्वेद १०–३३–३ "जैसे चूहे अपनी दुमोंको खा जाते है उसी तरह तेरे पुजारीको दुःख, रंज खा जाते है. हे सर्व-शक्तिमान् देवता ! हे सर्व बलयुक्त इन्द्र ! हमपर दयालु हो, हमसे बापके तरह भलाई करो." ऋग्वेद १०, ६८, १० मे लिखा है कि "तू उसे इसी तरह संभाले जैसे बाप अपने लड़केको गोदमे रखता है."

ऋग्वेद ३–५३–२ मे लिखा है–"जैसे लड़का अपने बापका दामन पकड़े रहता है उसी तरह मै इस मधुर मंत्रसे तुह्मारा दामन पकडे हूं." मुख्यकर ऐसी बहुत कम जाति हैं जो अपने ईश्वर या देवों-को बापके नामसे पुकारती हैं. परन्तु यद्यपि अपने निश्चय के बालक-पनमे प्राचीन आर्योंको इसीमें शान्ति हो जाती थी कि वे ईश्वरको मिस्ल हमारी बाल्यताके बाप कहते थे; परन्तु शीघ्र जान पड़ा कि ये नामभी ईश्वरके निमित्त सांसारिक नाम है, और मिस्ल अन्य सांसा-रिक नामोंके इससे पूरा पूरा अर्थ उस पदार्थका नहीं निकलता है. हम अपने बाप दादोंका उसी तरह डाह कर सकते हैं जिस तरह हम किसीके लड़केका डाह करें जो इसी निश्चयमें मर जाता है कि मैं एक घरसे दूसरे घरको जाता हूं या एक पितासे दूसरे पिताकेपास. परन्तु जिस तरह लड़केको बड़े होनेपर ज्ञात हो जाता है कि उसका पिताभी किसी दूसरे पिताका बेटा है, और जिस तरह लड़का मर्द होनेपर उन ध्यानोंको–जिससे उसने बापका शब्द समझा था–एक एक करके दूर कर देता है इसी तरहसे प्राचीन लोगोंको मालूम हुआ और हम सबको जानना चाहिये कि

बापके शब्दसे हम उन सब बातोंको निकाल लें जिन्हें हम समझ सकते हैं. यदि हम उसे ईश्वरपर वर्ताव करना चाहें तो यह शब्द जितना मनुष्योंपर वर्ता जाता है उतनाही ईश्वरके निमित्त नहीं वर्ता जा सकता. इंजील मैथ्यू २३–८ में लिखा है "इस संसारमें किसीको अपना बाप न कहो, क्यों कि तुह्मारा बाप एक है और वह आकाशमें हैं."

असीमकेलिये–जिसे मनुष्य चारों ओर पाता है–बापका शब्द अग्नि, मरुत्, आकाश, स्वामी या और किसी नामसे–जो मनुष्य अनन्तको दे सकें–अच्छा है. परन्तु पिताभी मनुष्योंका निर्बल नाम है. वेद–कवि इससे अच्छा नाम नहीं पा सकते थे लेकिन जिस अनुमानकेलिये वह इस नामका वर्ताव करते थे उससे और इस नामसे इतना अन्तर है जैसा पूर्व और पश्चिम दिशामें.

हमने उस खोजका चर्चा किया है जो कि प्राचीन आर्य लोग अनन्तकेलिये सृष्टिके प्रति भागमें करते थे. हमने उन नामोंके समझनेकी कोशिश की अर्थात् वृक्ष, नदी, पर्वतसे आरम्भ किया और आकाशी बाप पर्यंत पूर्ण किया. अब हम उन अनुमानोंकी जड़ ध्यान करेंगे जो कि पूर्वसे पूर्व हमारी इंद्रियोंकी पहुंचसे बिलकुल बाहर जान पड़ेंगे परन्तु जिनकी जड़ और प्रारम्भ इसी ससीम सृष्टिमे होगी. हम नहीं कह सकते कि इस सृष्टिको क्यों लोग तुच्छ समझे हैं जब कि प्रतिस्थान व अबभी यही उत्तम मार्ग है जो हमको सान्तसे अनन्ततक, लौकिकसे अलौकिक पर्यन्त, और सृष्टिसे जगदीश्वर पर्यन्त पहुंचाती है.

## वैदिक देवोत्पत्तिवर्णन.

हमने इस अचंभित सृष्टिमे अचानक अपनेको पहुंचा हुआ समझके यह जाननेका परिश्रम किया कि वह कौनसे पदार्थ हैं कि जिन्होंने हमारे प्रारम्भीय पुरुषोंको आश्चर्यमें डाला और मोहित किया. वह पदार्थ कौन हैं जिन्होंने इस आश्चर्यसे जगाया. और जो सूरतें उनके

नेत्रोंके सन्मुख फिरती थीं उनपर अनुमान करने और शोचनेका प्रारम्भ कराया. इसके अनन्तर हमने अपने ध्यानोंको उन वैदिक कवियोंकी कल्पनासे मिलाया जिनके मंत्र मतसंबंधी अनुमानोंमें सवसे प्राचीन उपस्थित हैं, जहांतक मनुष्योंकी उस शाखासे मतलव है जिसमें कि हम हैं. इसमें संदेह नहीं कि हम उस समयमें—जव कि मनुष्यकी कल्पना प्रारंभ हुई—और उस कालमें जवकि वहुत अच्छे छन्दों व वहुत अच्छी भाषामें स्तुतिके मंत्र वने थे. पीढ़ियों वरन शत सहस्र वर्षोंका अन्तर था, लेकिन मनुष्यकी कल्पना जव भाषामें आ जाती है तो ऐसे मिले रहते हैं कि वेदके मंत्रोंको अच्छे प्रकार देखनेसे वह वातें हमारी आशासे अधिक ठीक जान पड़ी जिनका कि हमने प्रथम अनुमान किया था. जिन पदार्थोंको हमने छांट लिया था उनसे अन्तःकरणपर एक ध्यान जम जाता है कि कोई पदार्थ ऐसाभी है जिसको हम न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न जान सकते हैं. वेदानुकूल यह पदार्थ वह खिड़कियां थीं जिनमें होकर प्राचीन आर्योंने देखा.

## अनन्तविषयक अत्यन्त प्राचीन भावना.

जव कि हम अनन्त कहते हैं तो हमको यह न समझना चाहिये कि कोई पदार्थ वहुत थोडा या वहुतही अधिक है. वहुतसे लोग अनन्तसे यही अर्थ समझते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है. प्राचीन आर्योंके संमुख प्रति सान्त पदार्थोंके साथही अनन्तभी था. पदार्थमें जितना अधिक दिखलाई पड़ता था या सुना जाता था, या स्पर्श किया जा सकता था, सान्त उतनाही कम अश्रवणयोग्य या अदृश्यके लायक या स्पृश्य या असीम था. इन्द्रियोंकी पहुंचमें जो अंतर होता था उसी तरह जो पदार्थ उनसे वाहर थे उनमेंभी अन्तर होता था.

नदी या पर्वतकी कल्पनामें वह अदृश्य पदार्थ—जो उसके पीछे छिपा है—वहुत कम होता है परन्तु उषा या मरुतके ध्यानमें होता है. उषा प्रत्यरुणोदयको होती है परन्तु यह कोई नहीं वता सकता

कि यह क्या है और कहांसे आई ? " वायु जहां चाहता है वहां चलता है; तुम उसका शब्द सुनते हो परन्तु यह नहीं कह सकते कि यह कहांसे आई और कहां जाती है?" उन हानियोंका समझना जो नदीके बाढ़ ( सैलाव ) से या पहाड़के गिरनेसे होती हैं सरल है परन्तु यह समझना वहुत कठिन था कि तूफानके आनेपर वृक्षोंको कौन झुका देता है और अत्यन्त गर्जने और विद्युत् चमकनेके समयमें कौन पर्वतोंको चिटका देता है और घोडसालों व झोंपड़ों-को लौटा देता है ? जो अर्द्धदेव इंद्रियोंकी पहुंचमें रहे थे उन्होंने नाटकीय स्वरूपको कम स्वीकार किया और इन देवोंमेंभी ऐसे जो विलकुल अदृष्ट थे और जिनका चित्र सृष्टिमें नहीं वन सकता था जैसे इन्द्र ( वृष्टिकर्ता ), रुद्र ( गर्जनेवाला ), मरुत् ( तूफानका देव ), वरुण ( सर्वाधिष्ठातृ ), इन्होंने एक अन्य मानुषी धर्मका लेना स्वीकार किया कि चमकते हुए आकाश, उषा या सूर्यकेलिये नहीं हो सकता था. सिवाय इसके अनन्त या अद्भुत होनेका विशेषणभी केवल मनुष्यके स्वरूपमें पहिनाया जा सकता था वे अनन्त नहीं कहलाएंगे वरन अजय, अविनाशी, अक्षय, अमर, अजात, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वक्षम कहलाएंगे और अनन्तका नाम कहीं अन्तमें जाकर रखा जायगा. मैंने कहा है कि मैं नामकी आशा कर सकता हूं मगर मुझे वता देना चाहिये कि इस आशामेंभी वहुत डर है. कल्पनाको नई नई तरहोंसे खोज करनेमें मनुष्यको चाहिये कि आशा किसी पदार्थकी न करे वरन जहांतक वातें मालूम हो सकें उनको इकट्ठा करे और फिर सरल करे.

### अदिति=( अनन्त. )

तुम्हें आश्चर्य होगा जैसे प्रथमही मुझको आश्चर्य हुआ था. जव मुझको ज्ञात हुआ कि वेदमें मुख्यकर ऐसे ईश्वरका चर्चा है, जो अनन्त या असीम है संस्कृतमें " अदिति " कहा है. " अदिति " वना है 'दिति' और 'अ' ( नहीं ) से; और " दिति " निकला है

धातु ' द ' ( बांधना ) से; जिससे ' दित ' ( बंधा हुआ ) और ' दिति ' ( बांधनेका पदार्थ ) बना. इसीलिये अदितिके मुख्य अर्थ अबन्ध्य, असीम होंगे. यही धातुसे यूनानी 'दिय' ( मैं बांधूं ) आया है और " दिआ-दनुअ "( मुकट जो सिरमे बांधा जाता है.) यह कहना सहज है कि ऐसा ईश्वर—जिसका नाम अदिति, असीम रख लिया गया—प्राचीन कालका है. बुद्धिमानीकी बात यह है कि उस बातके जाननेका श्रम करे जो है और न कि उस बातका जो होना चाहिये था. चूंकि असीमका अनुमान नवीन ज्ञात होता था, इसलिये बहुतसे वैदिक वि॰ द्यार्थी अदितिको आन्तिक अनुमान समझते हैं कि जिससे उसकी सन्तान आदित्य अथवा सूर्यके देवता हुए हैं. इस बातसे कि मुख्य इसीके निमित्त कोई मंत्र नहीं है. उन लोगोंने यह निकाला है कि वैदिक कवितामे अदिति बहुत आन्तिक समयकी देवी है. यही " द्यौस् " के बारेमेभी कहा जाता है जिससे यूनानी भाषामे झ्यूस् ( द्यौस् ) कहते हैं. वेदमे यह अदितिसेभी कम उन देवोंमें है कि जिनके निमित्त बहुत बड़े बड़े मंत्र लिखे गये हैं. लेकिन हम जानते हैं कि यह नया देवता नही है और यह उस समय उपस्थित था जब कि हिन्दमें संस्कृतका और यूनानमें यूनानीका एक शब्दभी न बोला जाता था, अर्थात् यह सबसे प्राचीन आर्य लोगोंका देवता है जो पीछेसे इन्द्र, रुद्र, अग्नि, और अन्य आर्यावर्तीय देवताओंकी भीड़के कारण अलग कर दिया गया.

### अदिति अर्वाचीन किम्वा आधुनिक देव नहीं.

मेरे समीप अदितिकाभी यही हाल है. यह नामभी द्यौस् ( आकाश ) पृथ्वी, सिंधु ( नदीविशेष ) और अन्य प्राचीन देवोंकी स्तुतिकेसाथ आया है, और यह केवल आदित्योंकी कल्पित माता नहीं थी वरन सब देवोंकी माता इसे कहा है. यह बात समझनेके निमित्त हम यह खोज करनेका यत्न करेंगे कि इसकी जन्मभूमि कहां है कि अदितिं या असीमका नाम कहांसे पड़ा, और यह कि

सृष्टिमें कौन ऐसा दृश्य पदार्थ है जिसकेलिये मुख्यकर यह नाम वर्ता गया हो.

## अदितिकी स्वाभाविक उत्पत्ति.

मेरे समीप इसमें वहुत कम संदेह है कि "अदिति" यह 'उषा' का सबसे वहुत प्राचीन नाम था, या अधिक ठीक आकाशके उस भागका नाम था जहांसे प्रति प्रातःकालको प्रकाश व जीविका निकलती थी.

प्रातःको देखो और थोडी देरकेलिये अपनी विद्या ज्योतिष भूल जाओ, तो मैं तुमसे पूछता हूं कि जव रातका अंधेरा धीरे धीरे ऊठ जाता है, और वायु पारदर्शक और नवीन हो जाता है, प्रकाश निकलता है, जिसको तुम नहीं जानते कि कहांसे आया, तो क्या तुमको यह न जान पडेगा कि तुह्मारी आंख जहांतक पहुंचती है वहांतक अनन्तको देखती है. प्राचीन लोगोंके समीप प्रातःकालसे एक दूसरी दुनियांके सुनहले कपाट खुल जाते थे जिनमें होकर सूर्य आता है. इन लोगोंकी आंखें और अन्तःकरण लडकोंकी तरह परिश्रम करते थे कि इस दुनियांके उस पारभी कुछ देखें.

प्रातः आता था और जाता था लेकिन वह प्रकाश व अग्निका समुद्र जहांसे वह आता था हमेशां उसीके पीछे रहता था. क्या यह देखनेके योग्य असीम न था? और इसका उससे अच्छा और क्या नाम होता जो कि वेदकवियोंने रक्खा है, अर्थात् अनन्त और सव पदार्थोंके उस पार इस तरहपर हम समझ सकते हैं कि वह देवता हिन्दुओंके ध्यानमे पहिले पहिले कैसे आया जो हमे ऐसा जान पड़ता था कि सृष्टिसे उसकी जन्मभूमिही नहीं है और ऐसे समयका जान पडता था कि वेदमें उसका चर्चा होना हमे निश्चयही नहीं मालूम होता था. (ऋग्वेद संहिता १, २३०–२९१ मे अदितिका हाल अच्छी तरह लिखा है. अल्फ्रेड हिलेब्रेन्ड साहव इसकी धातु 'द' वताते हैं (वांधना) और समझाया है कि अदितिके अर्थ अक्षयके हैं और

सर्वव्यापक नहीं है. ) अन्तमे अदितिसे आकाश और पृथ्वी अर्थ हो गया है.

जिस तरहसे कि इस मंत्रमें जो कि मित्र व वरुण ( दिन, रात ) की स्तुतिमे है. ऋग्वेद ५—६२—८ "ऐ मित्रावरुण ! तुम अपने रथपर चढ़ते हो जो प्रातःकालको सुनहले रंगका होता है, और सूर्यके अस्त होते समय उसके दंढ लोहेके हो जाते हैं उसपरसे तुम अदिति दितिको देखते हो." इसमे आदित्ति और दितिसे मतलव दूर और पास, अनन्त और अन्त, या मृत व अमृत है. एक और कविने लिखा है कि उषा अदितिका मुख है, जिससे यह अर्थ हुआ कि अदिति उषा नही है वरन उसके उस ओर कोई पदार्थ है. सूर्य और सव सूर्यके देवता पूर्वसे उदय होते हैं, इसलिये हम समझ सकते हैं कि अदितिको प्रकाशक देवोंकी माता क्यों कहा, अर्थात् मुख्यकर मित्र व वरुणकी माता—( ऋग्वेद १० , ३६—३ ) और अर्यमा व भगकी माता और सात व आठ आदित्यों ( जो कि पूर्वसे निकलते हैं ) की माता. सूर्यको केवल अदिति नहीं कहा है वरन आदित्यभी कहा है. ( ऋग्वेद ८, १०१,११) "वत महान् असि सूर्य, वत आदित्य महान् असि" अर्थात् सत्यही सूर्य तू वड़ा है, सत्य आदित्य तू वड़ा है. ( ऋग्वेद १०, ८८, ११ ).

अदितिके पुत्रोंकी चर्चाके कारणसे यह हुआ कि प्रारम्भकालसे स्त्रीलिंग कहने लगे. इस माताके वहुत वलवान, भयानक राज्य पुत्र हैं. परन्तु ऐसे वाक्यभी हैं जहां अदिति पुलिंग या नपुंसकलिंग है.

यद्यपि अदितिको उषासे वहुत संवंध है, तथापि इसकी विनय केवल प्रातःकालहीको नहीं होती, वरन दोपहर व संध्याकोभी. अथर्ववेद १०—८—१६ मे लिखा है कि "वह जहां कि सूर्य उदय व अस्त होता है वही मेरे समीप प्राचीन है और कोई उसके पार नहीं जा सकता."

यहां हम सबसे "पुराने" को अदिति समझ सकते हैं. बहुत

शीघ्र अदितिकी प्रतिष्ठा और पूजा होने लगी, और उसकी विनती केवल अन्धेरा और अंधेरेके शत्रुओंके हटानेकेलियेही नहीं होती थी वरन इसलियेभी कि मनुष्योंको उन पापोंसे बचाएं जो उसने किये हों.

## अन्धकार और पाप.

यह अंधेरे और पापके दो अनुमान जो हमे इतने एक दूसरेसे अधिक जान पड़ते हैं पुराने आर्योंके दिलोंमें बिलकुल मिले हुए थे. मैं तुझे कुछ प्रत्यक्ष दिखानेको सुनाऊंगा कि शत्रुओंके डरसे पापका डर जिसे सबसे बड़ा शत्रु जानना चाहिये उत्पन्न हुआ.

(ऋग्वेद ८, ६७, १४) " हे आदित्य! हमे भेड़ियोंके मुखसे—मानो एक बंधुए चोरके बचाओ, हे अदिति ! "

(ऋग्वेद ८,१८,६–७) "आदिति! हमारी गायोंको दिनमें बचाओ, रात्रिको रक्षण करो, जो कभी धोखा नहीं देतीं वह हमारी निरन्तर अभिवृद्धि करतीं हैं और पापसे बचातीं हैं. "

" और बुद्धिमान् अदिति ! दिनको हमारी सहाय कर और कृपा करके हमारेलिये प्रसन्नता और हमारे शत्रुओंको भगा दे." ऋग्वेद २,२७,१४.

" हे अदिति! मित्र! वरुण! हमने जो पाप तुह्मारे विरुद्ध किये हों उनको क्षमा करो. हे इन्द्र ! कहीं मुझे वह बहुत दूर फैला हुआ प्रकाशक मिल जाय जहां डर नहीं रहता, बड़े अंधेरेको हमतक न आने दे." ऋग्वेद १, १६२, २२ " अदिति ! हमें निष्पाप कर ले. "

जान पड़ता है कि एक दूसरी कल्पना अदितिकी कल्पनासे स्वयं उत्पन्न हो गयी. जहां कहीं हमजाते हैं तो हम यह पाते हैं कि जन्मान्तर विषयकी कल्पनाही अति प्राचीन कल्पना है, जो सूर्य और अन्य आकाशी पदार्थोंके निकलने और अस्त हो जानेसे उत्पन्न हुई. हम यहभी कहते हैं कि "उस मनुष्यका सूर्य अस्त हो गया " वे लोग कहते थे और निश्चय करते थे कि मरने बाद लोग पश्चिमको चले जाते हैं जहां सूर्य डूबता है. वे समझते थे कि सूर्य प्रातःकाल उत्पन्न

होता और संध्याको मर जाता है. या अगर उमर उसकी वड़ी हुई तो एक सालतक रह सकता है; जिसके पूर्ण होनेपर फिर सूर्य मर जाता है. जैसे हम लोग कहते हैं कि पुराना साल मर रहा है, अर्थात् वीत रहा है.

### अमृतत्व कल्पना.

इस कल्पनाकेसाथ द्वितीय कल्पना उत्पन्न हो जाती है. क्यों कि प्रकाश और जीविका पूर्वसे आती थी इसलिये प्राचीन कालकी जातियोंने यह समझा कि प्रकाशक देव यहीं रहते हैं और अमर लोग यहीं वास करते हैं; और जव यह ध्यान हुआ कि अच्छे लोग मरनेके वाद देवताओंमे रहते हैं तो यह ध्यान हुआ कि वेभी पूर्वको चले जाते हैं. इसी अर्थसे हमे जान पडता है कि अदिति-के अर्थ अमर लोगोंकी जन्मभूमि रक्खे गये हैं, और इसी अर्थमे वेदका एक कवि कहता है[१]:—" कौन हमे फिर बडे अदितिको लौटा देगा कि मैं अपने माता पिताको देखूं. " क्या यह ध्यान अमृतका वहुत भला व सादा अनुमान नहीं है और यदि तुम उन सिड्ढियोंको देखो जिनपर चढ़के वे यहांतक पहुंचे और जिनकी विद्या दैनिक वार्ताओंसे उत्पन्न हुई, जिसका अर्थ मनुष्यकी सरल वुद्धिने वताया. यह एक वड़ा पाठ है जो वेद हमे पढाता है. हमारे सव अनुमानोंका आरम्भ उन्ही पदार्थोंमे है जिनको हम प्रति दिन देखते हैं. मनुष्य चाहे इन सृष्टिके शब्दोंपर ध्यान न दे परन्तु वे वारवार प्रातिदिन आते हैं और अन्तको मनुष्य उनपर ध्यान कियेविना अलग रह नहीं सकता और जव एक वार इनपर ध्यान हुआ तो ये शब्द अपना मतलव साफ साफ बताने लगते हैं और जो पहिले पहिले केवल सूर्यका उदय होना समझा जाता था अन्तको असीमके प्रकट करनेका एक प्रकट कारण हो गया था और सूर्यके अस्त होनेसे अमृतत्वका पहिले पहिले अनुमान हुआ.

---

१ ऋग्वेद—१, २४, १.

## वैदिक धर्मविषय अन्य कल्पना.

अब हम उन कल्पनाओंमेसे एक और अनुमानपर वाद करेंगे जो मनुष्यके विचारकी प्रथम तहोंमें किसी तरह नहीं हो सक्ते हैं, परन्तु वेदसे यदि अनुमान किया जाय तो जान पड़ेगा कि वह मनुष्यके अन्तःकरणकी पहिली पहिली उमंगमें उत्पन्न हुआ. इससे मेरा अर्थ यह नहीं है कि वेदको जितना पुराना है उससे अधिक कहूं. मै उससे पहिलेके समाचार अच्छी तरह जानता हूं. इस प्राचीन वृक्षमे गांठिके भीतर गांठी इस प्रकार अधिकतासे पड़ी हुई हैं कि हम मनुष्यके ध्यानकी धीरे धीरे और बड़ी उन्नतिको अच्छी तरह नहीं समझ सकते. परन्तु ऐसी बातोंकेसाथ जो नई ज्ञात होती हैं बहुतसी ऐसी हैं जो पुरानी अथवा प्राचीन जान पड़ती हैं. और यहां मैं समझता हूं कि हमे पदार्थविज्ञानसे ( Archaeology ) पाठ लेना चाहिये और इस बातकी ढूंढ़ न करना चाहिये कि प्रारम्भसे ध्यानकी उन्नतिमे अलग अलग काल स्थित करें. प्राचीन पदार्थविज्ञानवेत्ता यह कहते थे कि पहिले पहिले पत्थरोंका समय था जिसमे कोई हथियार या पीतल या लोहेके हथियार ( शस्त्रास्त्र ) नहीं हो सकते थे. इस समयके बाद पीतलके पदार्थोंका समय आया. जब पीतल और पत्थरके हथियार अधिकायतसे पाये जाते थे परन्तु लोहेका पता न था. इसके पश्चात् तीसरा समय आया जब लोहेके हथियार, पत्थर और पीतलके पदार्थोंसे अधिक वर्तावसे प्रसिद्ध हो गये. तीनों कालोंके अनुमानोंमे और उनके छोटे छोटे हिस्सोंमे, इसमे सन्देह नहीं कि कुछ मुख्यता अवश्य थी लेकिन चूंकि प्राचीन पदार्थोंके एक नियमकी तरह मान लिया जाता था इस कारण बहुत अर्सेतक इस विद्याकी उन्नति न होने पाई. परन्तु अन्तमें यह ज्ञात हुआ कि धातुओंका चलना प्रत्येक देशमें उस मुल्ककी दशानुसार था जहां लोहा सरलतासे मिल सकता था. लोहेके हथियार पत्थरोंके हथियारोंकेसाथ, और पीतलके बने हुए पदार्थोंसे पूर्व पाये जाते थे. इससे हमे उन कल्पना-

ओंमें पाठ लेना चाहिये जब हम वृद्धिके कालसे संबंध रखते हैं. वेदमें बहुतसी कल्पनायें, बे तराशे हुए पत्थरके हथियारोंके तरह उपस्थित हैं, परन्तु उसकेसाथही हमको ऐसे विचारभी मिलते हैं जिनमें लोहेकीसी तीव्रता व पीतलकीसी चमक पाई जाती है. क्या हम यह कहेंगे कि प्रकाशक और चमकते हुए अनुमान वर्तमानके हैं, और बे तराशे हुए कच्चे पत्थर जो उनके साथ साथ मौजूद हैं उसके पहिलेके हैं. यह हो परन्तु हमें देखना चाहिये कि इनका रचनेवाला कौन था, और यह कि वृद्धि और ज्ञान प्रति समयमें रहा है और वर्षोंसे उसमें घट बढ़ नहीं हो सकती. उस मनुष्यको जिसे अपने आपमें और अपने चारों ओरकी सृष्टिमें निश्चय है उसकी एक दृष्टि और अन्य लोगोंकी सहस्रों दृष्टियोंके बराबर है परन्तु एक सच्चे पदार्थविज्ञानवेत्ताको सृष्टिके अचंभित कार्य और उनके सैकड़ों नाम और वह देव जो उन पदार्थोंको प्रकट करते हैं सब एकही अनुमानमें प्रातःकालके कोहरेकी तरह अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, और वह वेदकी कविताईमें कहता हैः—"वह केवल एक है; यद्यपि कवि उसे बहुत नामोंसे कहते हैं," "एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति." अलबत्ता हम कह सकते हैं कि यह कवियोंके दिये हुये बहुतसे नाम उस समयसे पहिले थे जब तत्ववेत्ता लोग उनको बुरा समझने लगे. यह सच है; परन्तु यहभी तो संभव है कि कब मुद्दतोंतक इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्निकी स्तुति करते रहे और हिन्दके तत्ववेत्ता बराबर देवोंके बहुतसे नाम और बहुतसे मंदिरों और उनके इतिहासोंको अप्राप्त समझते रहे, परन्तु उनकी विरुद्धताका कोई असर नहीं हुआ.

## सृष्टिनियमकी कल्पना.

यह बहुधा कहा गया है कि सृष्टिनियमकी कल्पनाही केवल एक ऐसी कल्पना है जिसे हम जंगलियोंमें नहीं पाते हैं. यूनानी व लातानी भाषामेंभी "कानूनकी आज्ञाकारी" के अर्थ जिसे ड्यूक आफ आर्गाइलने अपनी एक पुस्तकका नाम रक्खा था,

पाना कठिन है, परन्तु तौभी यह ध्यान अपनी पूर्वकी मध्यम दशामें अधिक प्राचीन अनुमान है. वर्तमानमें ऐसे ध्यानोंके दशा संबंधमें वहुत कुछ लिखा गया जो स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं और जिनका ध्यान ध्यानीकोभी नहीं होता. ऐसे ध्यानोंकी दशा वहुत वढावे ( अधिकता ) केसाथ दिये गये हैं, परन्तु इस प्रकार तो अन्तःकरण वहुत कुछ काम करता है जिसे हम नहीं जानते हैं अर्थात् जिनकी प्रसिद्धि अभीतक भाषामें नहीं हुई है. इंद्रियोंपर सहस्रों पदार्थोंका असर होता है लेकिन इनमेंसे वहुत ऐसे होते हैं जिनका हम ध्यान नहीं करते सदैवकेलिये अन्तःकरणसे उतर जाते हैं. परन्तु तत्वज्ञ लोगोंके सिद्धान्तसे कोई पदार्थ इंद्रियोंमे बिलकुल मिट नहीं सकता. प्रत्येक कल्पना अपना चिन्ह छोड जाती और वारवार एकही ध्यान आनेसे यह परमाणु चिन्होंके यहांतक बढ जाते हैं कि वे रेखा हो जाती हैं और अन्तमे हमारे अन्तःकरणके तलपरसे वडी रोशनी व छाया इन्हींसे वन जाती है. इस तरह हम समझ सक्ते हैं कि जव सृष्टिके वडे और अचंभित वार्ताओंसे भय और आश्चर्य प्रसन्नता मनुष्यके चित्तमें पैदा हुई तो उन्हीं वातोंके प्रतिदिन होनेसे, दिन रातके वरावर आने जानेसे, चन्द्रमाके सप्ताहिक घटाव वढावसे, ऋतुओंके वदलनेसे, सितारोंके चक्रसे, विश्रान्त अनन्त धैर्य, सहायका उत्पन्न हुवा. इस ध्यानका प्रगट करना अत्यन्त कठोर था. इसे हम उन ध्यानोंमे गिन सकते हैं जो स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु जो ज्ञात हो सकते हैं यदि वहुतसे चिन्ह इंद्रियोंके अलग अलग समझमें आ जाएं और भाषासे प्रगट हो सके. यूनान व रोमानियोंके पहिले पहिले तत्वज्ञानियोंने इस कल्पनाको अनेक प्रकार प्रकट किया है. हिराक्लिटसका क्या मतलब था जव उसने कहा कि " सूर्य ( या हेलियोस ) अपनी हद्दसे कभी आगे न वढेगा " और उसका क्या मतलव था जव उसने कहा कि " एरिनिस सत्यके सहायकारी उसे पा सकते हैं यदि वे चाहैं. " इससे वढकर इसका और क्या प्रमाण हो सकता था कि उसे ज्ञात हो गया था कि सृष्टिभरमें एकही नियमका अधिकार है

यहांतक कि सूर्य या सूर्यदेवताभी उससे रहित नहीं है. यूनानकी पदार्थ-विद्यामे इस अनुमानने वहुत उन्नति की और मतमेभी मैं निश्चय करता हूं कि यूनानी भाग्यके अनुमानका मूल यही है. यद्यपि रोमानियोंके तत्वज्ञानवेत्ताओंके अनुमान तो वहुत प्राचीन थे, न स्वयं उत्पन्न किये हुए; मगर मैं यहां सिसरोकी एक कहावतको लिखूंगा जो हिरोक्लिटसके कल्पनासे पूरी पूरी मिलती है. सिसरोने कहा है कि मनुष्योंको आकाशी पदार्थोंके अन्वयपरही न ध्यान देना चाहिये वरन अपनी जीविकाका अनुकूल और सत्यताको उसीके अनुकूल स्थापन करना चाहिये. और यही वेदकवियोंने अपनी सरल सरल भाषामे कहना चाहा था. अव हमको उसी तरह यह देखना चाहिये जिस तरह कि हमने असीमके ध्यानकी पहिली जड़पर ध्यान दिया था कि सृष्टिमें एकही व्यवस्था या कानून क्योंकर हुआ और उसका पहिला नाम क्या रक्खा गया? मुझको निश्चय है कि यह नाम " ऋत " था. यह एक ऐसा शब्द है जिसका शब्द हिन्दके मत-संबंधी कविताके तारोंमे निकलता है. यद्यपि पुराने ब्राह्मणमतके टी-का ग्रंथोंने इसका चर्चा वहुत कम किया है.

## ऋत.

क़रीव क़रीव सब देवोंके नाम इसी ऋतसे निकले हैं, और सव नामोंमे दो मतलब रक्खे गये हैं. प्रथम तो यह कि देवोंने सृष्टिका नियम स्थापन किया और सृष्टि उनकी आज्ञाको स्वीकृत करती है; दूसरे यह कि एक व्यवहारिक नियम है जिसे प्रति मनुष्यको मानना चाहि-ये और जिसके न माननेपर देव उसे सज़ा देंगे. इन नामोंसे केवल हमे देवोंका हाल और उनका लगाव और सृष्टिके आश्चर्योंसेही नहीं मालूम होता है वरन प्राचीनकालके हिंदुस्थानके धर्मका समाचार ज्ञात होता है. परन्तु उनके ठीक ठीक समझनेमें वहुतसी मुश्किलें आगे आती हैं.

एकही मंत्रमे ऋतके पहिले, दूसरे, तीसरे अर्थ आते हैं. कवि

लोग स्वयं उन सबमें कदाचित् साफ साफ अन्तर न जान सके हों और टीकाकारभी उनका अन्तर निकालनेकी हिम्मत नहीं कर सके. हम लोगभी जब नियमका शब्द वर्तते हैं, तो वहुधा हमे नहीं ज्ञात होता है कि इसके मूल अर्थ क्या हैं और क्या हम आशा कर सकते हैं कि प्राचीन कवि वर्तमानके न्यायियोंसे अच्छे शोचनेवाले या वोलनेवाले होंगे. वहुधा उन स्थानोंपर जहां ऋतका शब्द आया है यदि हम नियम, व्यवस्था, शुचि, व्यवहार, यज्ञके शब्द वर्ताव करें तो कुछ तर्क नहीं हो सकता, परन्तु यदि हम वेदमंत्रोंके उल्थाको देखें और यह जानना चाहें कि इन शब्दोंके ठीक ठीक अर्थ क्या हैं तो निराशा होकर किताबके वंद कर देनेको जी चाहेगा. यदि अग्नि या और किसी सूर्यदेवताका उल्था " दैवी । सत्यताकी पहिली उत्पत्ति " किया जाय तो इससे क्या अर्थ उत्पन्न हो सकता है ? परन्तु भाग्यसे वहुतसे लेख ऐसे हैं कि जिनमे ऋत आया है और जिनकी मददसे हम इस शब्दकी और इसके अर्थोंकी पद पद उन्नतिको जान सकते हैं. पुराने महलके नये सिरेसे वनानेमें अनुमानकी मदद आवश्यक है और मैं अपनी कल्पना शब्द ऋतके वारेमे उसकी आन्तिक उन्नतिमें प्रकट करूंगा परन्तु इन कल्पनाओंकी जड़भी अनुमानपर समझना चाहिये.

### ऋत शब्दका मूल अर्थ.

मुझे निश्चय है कि ऋत, सूर्य और अन्य आकाशी पदार्थोंकी निश्चित गतिकेलिये पहिले पहिले वर्ताव किया जाता था. यह धातु ' ऋ ' से निकली है: जिसके अर्थ मिश्रित और स्थितके हो सकते हैं, या गये हुए, जाते हुए रास्तेकेभी. मै दूसरे धातुको ठीक समझता हूं. यही धातु शब्द निर्ऋतमे आया है: जिसके शाब्दिक अर्थ चले जानेके हैं; और फिर क्षण, नाश, मृत्यु, नास्तिस्थान, खांड के अर्थ हो गये, और अन्तमे नर्कके. सूर्यकी दैनिक गति और उसकी राह उदयसे अस्ततक, और दिन, रात और प्रातः और ऐसे ऐसे पदार्थ जिसे रात

और अंधियारे केवल किसी तरह रोक नहीं सकते. इनकी गतिको ठीक गति, सुकार्य, सरल मार्ग सोचने लगे[1]. वेदके कवियोंको ऋतके चर्चा करते समय सूर्यकी दैनिक गति और मार्गका अधिक अनुमान न रहता था जैसा इसका कि एक मुख्य स्थानसे वह उठता है और एक मुख्य स्थानपर अस्त होता है. ऋतके मार्गका वर्णन किया गया है जिसका उल्था सिवाय सत्यमार्गके और कुछ नहीं हो सकता. वह समझते थे कि यह मार्ग किसी अज्ञात बलका निकाला हुआ है और इस शक्तिको वे ऋत कहते थे. यादि आपको यह याद हो कि पूर्वको जहांसे प्रति प्रातःकालको सूर्य अपने दिनकी सैरको निकलता था आदिति कहते थे तो तुमको आश्चर्य न होगा कि 'ऋत' का शब्द वेदमें कोई स्थानोंपर अदितिके स्थानमे वर्ता गया है. उषाको अदितिका मुख कहते हैं उसी तरहसे सूर्यको ऋतका प्रकाशक मुख समझते थे ( ऋग्वेद ६, ५१, १ ). स्तुतियोंमे आदिति, स्वर्ग, पृथ्वी के वाद ऋत आया है ( ऋग्वेद १०, ६६, ४ ). ऋतका स्थान प्रकटीय पूर्वमें है ( ऋग्वेद १०, ६६, ४ ). वहुत प्राचीन कहावत है कि प्रकाश लानेवाला देवता प्रति प्रातःको अंधेरे गड्ढेमें—जहां लुटेरा छिपता हैं—जाकर गौवोंको निकाल लाता है. अर्थात् प्रति दिनको एक गौ माना है जो अंधे मकानसे पृथ्वी और आकाशके घासवाली पृथ्वीपर धीरे धीरे चलती है. यदि इस उपमाको वदल देवें और यह समझें कि सूर्य अपने घोडोंको प्रातःकाल जोतता है और दिनभरमे दुनियांका चक्कर लगा आता है तो ऋत वह स्थान हो जायगा जहां पहुंचकर वह अपने घोडोंको खोलता है ( ऋग्वेद ५–६२–१ ). वहुधा यह कहा जाता है कि उषा ऋतकी घाटीमे रहती है, और वहुतसे इतिहास यह कहते हैं कि उषा कैसे निकाली गई या उषाकी सहायसे इन्द्र और और देवताओंने कैसे रातके अंधेरे मकानसे चुराई हुई गौवोंको पाया ?

---

१. ऋग्वेद ७, ४०, ४.

## शरमाकी कथा.

इन सब कथाओंमे इन्द्रकी कथा सबसे अच्छी है. इन्द्रने शरमा ( अरुणोदयकी ललाई ) को भेजा कि देखो गौवें कहां छिपी हैं. जब शर्म्माने गौवोंका शब्द सुना वह इन्द्रकेपास कहनेको लौट आई, तब इन्द्र लुटेरोंसे लड़े और प्रकाशमान गौवोंको बाहर लाए. यहीं शरमा पीछेसे इन्द्रका कुत्ता कहीं गई और शारमेय उसके लड़कोंका नाम हुआ. प्रोफेसर कुहन ने इस शब्दको हरमेयाससे मिलाया है. देवविद्याके विद्यार्थियोंने पुराने आर्य देवोंके अंधेरे स्थानमे सीधे मार्गसे पहुंचनेके निमित्त यह प्रथम मार्ग पाया. कहते हैं कि इस शर्म्मा व प्राचीन अरुणोदयसूचकने रितके मार्ग अर्थात् ठीक मार्ग-पर चलकर अथवा रित व सत्यस्थानपर जाकर गौवोंको पाया. एक कवि कहता है " जब शर्म्मा पर्वतकी चोटीपर पहुंची, प्राचीन महत्मार्गपर चली जो एकही स्थानपर पहुंचती थी. वह तीव्रगति आगे आगे चली और अमर गौवों ( दिन ) का शब्द पहिचानकर उन्हींकेपास पहुंची. " ऋग्वेद ३–३१–६.

इस ऊपरके मंत्रमे वह रास्ता–जिसपर देवता और उनके साथी और प्राचीन कवि गौवों ( दिनकी प्रकाश ) केलिये चले थे–ऋतका मार्ग कहलाता है. परन्तु दूसरी जगह यह लिखा है कि इन्द्र और उसके मित्रोंने रित अर्थात् ठीक स्थानको पाकर बल नामी चोर और उसकी गुफाके खण्ड कर डाले. इसी सत्य स्थापन जगहका उस समयभी चर्चा हुआ है जब ऐसे पदार्थोंका चर्चा आया है जि-ससे देवताओंने आकाश, पृथ्वी, स्वर्गका स्थापन किया. ऋग्वेद ४–४२–४ में वरुण कहते हैं " मैंने आकाशको ऋतके स्थानपर ठहराया " और इसके आगे बढकर यह अनुमित हुआ कि ऋतभी सत्यकी तरह सदैवके निर्मित सारे पदार्थोंकी जड है. ऋतके मार्गका चर्चा बारम्बार आया है कि इस मार्ग पश्चात् प्रात; सूर्य, दिन, रात्रि, होते हैं और हम इसका उल्था सत्यमार्ग या असत्यमार्ग कर सकते

हैं. अरूणोदयके चर्चामें आया है: "ऋतका रास्ता या सत्य रास्तेके पश्चात् आता है. यह अपनी हद्दके बाहर कभी पैर नहीं रखता. मानो वह पहिलेहीसे जानती थी." (ऋग्वेद १, १२४, ३).

ऋग्वेद ७–७५–१– "प्रात: जो आकाशमे उत्पन्न हुआ है सन्मार्गपर निकला व समीप आया और अपना बड़ा तेज प्रगट किया. उसने प्रेतों ( कठोर अंधकार ) को भगा दिया."

ऋग्वेद ८, ८६, ५ । १०, ८२, ४ । ७, ४४, ५ मे सूर्यके निमित्त यह कहा है: "सवितृ देवता सत्यमार्गपर परिश्रम करता है. ऋतके सींग इधर उधर फैले हुए हैं. ऋत उन लोगोंका साम-नाभी करता है जो अच्छे प्रकार लड़ते हैं."

जब सूर्य उदय होता है ऋतके मार्गपर किरणें छिटक जाती हैं. और हिरांक्लिटसका अनुमान है कि हिलियास अपने अहातेके बाहर नहीं निकल सकता. ऋग्वेदके एक मंत्रमें वही बात उपस्थित है. ऋग्वेद ३–३०–१२ "सूर्य नियत स्थानको उलंघित नहीं कर-ता." यह ऋतका मार्ग किसी किसी स्थानपर चौड़ा मार्ग कहा गया और ऋतकी तरह प्रात:के प्राचीन देवतोंमें ज्ञातुकाभी कहीं कहीं गिनती कर लिया गया, है. यह वही मार्ग है जिसपर रात दिन देशाटन किया करते हैं[2] और चूंकि इस ऋतमें अहर्निश अन्तर होता है इसलिये और कई मार्गोंका चर्चाभी है जिसपर अश्विनी, दिन, रात और ऐसे ऐसे अन्य देव देशाटन किया करते हैं[3]. दूसरी बात ध्यानके योग्य औरभी है कि इसी ऋतके मार्गको वैदिक सबसे प्राचीन देवता वरूणने सूर्यके चलनेकेलिये बनाया था, इसी कारण-से वरूणका कई स्थानोंमें ऋतका नियम कहा गया है ( ऋग्वेद– १,१२३,८–९ ) "सारे आकाशके देवता वरूणने ऋतको एक स्वयं बलवान बना दिया." जब यह ज्ञात हुआ कि देवता अंधेरेकी ताकतोंको सीधे रास्तेपर चलनेसे जीत लेते हैं तो उनके पुजारियोंको केवल स्तुति करना रह गया कि उन्हेभी उस सत्यमार्गपर चलनेकी आज्ञा

---

१ ऋग्वेद, १, १३६, २. । २ ऋग्वेद, १, ११३, ३. । ३ ऋग्वेद, ५, २२, ७.

मिल जाय. लिखा है. "हे इन्द्र! ऋतके मार्गपर हमे ले चलो, जिसपर वुराइयोंका नाश होता है[1]."

"हे मित्रावरुण! हमारी वुराइयोंको दूर कर सरल मार्ग वताइये, जैसे नौकापर जलके पार उतरते हैं[2]"

"हे मित्रावरुण! स्वयं इस वड़े ऋतकी वड़ाई करते हो[3]."

दूसरा एक कवि कहता है कि—

"मैं ऋतका मार्ग सुप्रकारयोग्य अनुसरता हूं[4]."

दुष्टाचरणी लोगोंकेलिये कहा गया है कि "ऋतके मार्गके कभी पारगामी नहीं हो सके[5]."

## ऋत=( यज्ञ. )

यदि हम यह याद रक्खें कि हिन्दोस्तानमें वहुतसी प्राचीन यज्ञ सूर्यकी गतिपर सम्भव थे. जैसे प्रतिदिन सूर्योदयमे, मध्यान्हको, व सर्यास्तमे यज्ञ होते थे ( मनु ४–२५–२६ ). पूर्ण चन्द्र व नूतन चन्द्रके निमित्तभी यज्ञ होते थे. सिवाय इसके और यज्ञभी ऋतुओंके पश्चात् और सूर्यके आधे साल या पूर्ण वर्षकी गतिपर होते थे. इन सव वातोंसे हम समझ सकते हैं कि किस तरह एक कालमे यज्ञको ऋत कहने लगे. (ऋग्वेद १, १२८, २। १०, ३१, २। ७०, २। ११०, २ आदि.) अन्तको ऋतका अर्थ नियमके मुख्य तौरपर हो गये. जिन नदियोंको वहुधा स्थानमे लिखा है कि ऋतका मार्ग चलती हैं उनको और मंत्रोंमे लिखा है कि ऋत अर्थात् वरुणके नियमपर चलती हैं. ऋतके अन्यभी वहुतसे अर्थ हुए हैं परन्तु उनका वर्णन करना हमारेलिये अव आवश्यक नहीं है. मुझे केवल इतना और कहना है कि जैसे ऋतसे उन सर्व वातोंका अर्थ निकलता था जो कि सही, अच्छी, सत्य थीं उसी तरह अनृतसे अशुद्ध, वुरा, झूटेका तात्पर्य निकला था.

---

१. ऋग्वेद १०, १३३, ६.
२. ,, ७, ६५, ३.
३. ,, ८, २५, ४.
४. ऋग्वेद १०, ६६, १३.
५. ,, ९, ७३, ६.

## ऋतकी उन्नति.

मैं नहीं जानता हूं कि वेदमे ऋतसे जो अर्थ है उसको मैंने तुमको साफ साफ समझाया कि नहीं, कि मुख्यकर उसका अर्थ सृष्टि, सूर्य, प्रातः, सायं, दिन, रैनिकी दैनिक गति थी, कि इसकी गतिका कारण पूर्वदिशिमे था. फिर आकाशी पदार्थों या दिन व रैनिके मार्गमें उसे देखा, और फिर वह ठीक मार्ग जिसपरसे देवता अंधेरेसे प्रकाश लाते थे उसपरसे मनुष्य यज्ञमें और अपने चालचलनमे चलने लगे. (इसी तरह इबरानी भाषाके शब्द इशरसेभी मतलव है ). तुमको यह आशा न करना चाहिये कि इन प्राचीन विचारोंकी उन्नतिसे सव वातें ठीक ठीक मिलैंगी. यह न उनमे थी, न हो सकती थी, और यदि हम उन कवित्व अनुमानोंको ठीक शुद्ध अनुमान पाना चाहें तो हम उनके भुजा तोड़ डालेंगे. हमको केवल शुष्क हाड़ मिलैंगे जिनमें न मांस होगा, न रक्त, न जीव होगा.

## भाषान्तरकी कठोरता.

इस प्रकारकी वह सर्मे कठिनता यह पड़ती है कि हमे विचारको प्राचीन रूपसे नए रूपमें लाना पडता है. इस काममे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य हो जाता है. वेदमें जैसा शब्द ऋत था जिससे वहुतसा अर्थ निकलता था और जिसमें वहुतसे खयालात थे वैसा शब्द अव कोई नहीं है. हम केवल इतना कर सकते हैं कि मुख्य अनुमानके मूलको खोजकर यह वात पूछें कि यहांसे किस किस दिशामें उसकी किरणें गई हैं ? मैने इसीका परिश्रम किया है और यदि ऐसा करनेसे यह ज्ञात हो कि मैने प्राचीन कपड़ेपर नया कपड़ा पहनाया है तो मैं यह कह सक्ता हूं कि सिवाय इसके और कोई मार्ग नहीं हो सकता है, जबतक कि हम सव संस्कृतही नहीं वरन वेदकी संस्कृत न वोलें.

एक इंग्रेजी कवि और तत्वज्ञानवेत्तापर वहुतसा अपराध लगाया

गया है कि उसने इबरानी भाषाके जिह्वाका यह उल्था किया है कि " सदैव स्थित शक्ति, जो सदैव भलाई करती है और हम नहीं." यह कहा गया है कि इबरानी भाषामें कोई ऐसा शब्द नहीं कि जिससे ऐसा अनुमान हो सके. यह ठीक हो सकता है, लेकिन यदि वेदके प्राचीन कवि आज सजीव हो जाएं और इस समयानुकूल अनुमान करें और इस समयानुसार भाषा बोलें तो वे ऋतका भाषान्तर कदाचित् करें.

## क्या ऋत सब आर्योंका अनुमान था ?

एक बात और फैसल करनी है. यह बात हम देख चुके कि वेदमे ऋत एक बहुत प्राचीन कालका अनुमान है. अब यह देखना है कि क्या ऋत वेदहीमे था? या द्योस, ज्ञीयूस, ज्युपितरकी तरह सब आर्योंका मुख्य अनुमान था ?

इसका ठीक उत्तर देना कठिण है. लैटिन व जर्मनी शब्दोंमें " आर " के धातुसे जो शब्द निकले हैं उनमे यह अनुमान है लेकिन इस बातका कोई पूर्ण प्रमाण नहीं है कि जिस प्रकार ऋत वेदमे था, उसी तरह इन शब्दोंमे पहिले आकाशी पदार्थोंकी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, वार्षिक, गतिका खयाल था. संस्कृतमें सिवाय ऋतके ऋतुओंके निमित्त ऋतुका शब्दभी है जिसका मुख्य अर्थ वार्षिक गतिके है. जिन्द भाषामेंभी यही शब्द रतु है लेकिन उसके अर्थ आज्ञा व आज्ञाकर्ताकेभी हैं. लैटिन भाषामेभी इसके समीप शब्द हैं परन्तु उनसे ठीक ठीक अर्थ नहीं निकलता.

## जिन्द भाषामें ऋतको अश कहते हैं।

और आर्य भाषाओंसे ऋतके तरह और कोई शब्द हमको नहीं मिलता है, और इसलिये हम यह नहीं कह सकते कि यह शब्द द्योसकी तरह उस पुराने समयसे पूर्वका है जब कि आर्य लोग अलग हुए थे या जब कि आर्य जातियां पृथक हुई थीं. परन्तु यह हम दिखला सकते हैं कि यह शब्द अनुमान उस कालसे पूर्वका है जब कि

इरानी लोग ( जिनके मतका हाल जिन्द अवेस्तासे जाना जाता है ) उन हिन्दुस्तानियोंसे पृथक हुए जिनके पवित्र मंत्र वेदमें मिलते हैं. यह बात अर्सेसे मालूम है कि जब अन्य आर्य लोग पूर्व, पश्चिम दिशाको पधार गये तब आर्य भाषाकी वह दो डालें—जो दक्षिण पूर्वको गई थीं—बहुत दिनों एकसाथ रहीं. इन दोनों शाखोंमें बहुतसे शब्द और खयाल एक है जो और कहीं नहीं मिलते.

मुख्यकर धर्म व अन्य रीतियोंके बारेमे बहुतसे शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत व ज़िन्द दोनों भाषाओंमे मिलते हैं. संस्कृत ऋतके निमित्त ज़िन्द भाषामे अश शब्द है. शब्दोच्चारणासे दोनो पदोंमे बहुत अन्तर ज्ञात होगा परन्तु ऋत मुख्यकर अर्त्त और संस्कृत ऋसे ज़िन्द श् हो जाना संभव* है. अबतक जिन्दके अशका उल्था पवित्र होता था और आजकलके पारसी लोग इसको मान लेते हैं, परन्तु यह अर्थ पीछेसे उत्तम हुए और यदि हम अशके वह अर्थ लगाएं जो वेदमे ऋतके हैं तो अवेस्तासे बहुतसे वाक्योंके अर्थ शुद्ध हो जायंगे. इससे इनकार नहीं हो सकता है कि वेदकी तरह अवेस्तामेंभी बहुतसी जगह उसका उल्था पवित्रतासे हो सकता है और बहुतसी जगह ठीक तौरपर समर्पण करनेकेलिये वर्ताव हुआ है. यहां अशके अर्थ अच्छे अनुमान, सुशब्द, सुकर्मके हैं अर्थात् नियमसे शुद्धोच्चारण औ विना अशुद्धताके. परन्तु बहुतसे वाक्योंसे ज्ञात होता है कि झेरोआस्टर ( पारसियोंका गुरू ) भी आकाशी पदार्थों या ऋतका होना मानता था. उन्होंनेभी वर्णन किया है कि प्रातः, मध्यान्ह, रात कैसे जाती है, कि वे उन नियमोंपर कैसे चलते हैं जो उनके निमित्त बना दिया गया है. वहभी बड़ाई करते थे कि सूर्य चंद्रमामे कैसा मिलाप है, सजीव सृष्टिमे कैसी संमति है, उत्पत्तिका अकृत्रिम चरित्र और यह कि कैसे ठीक समयपर माताकेपास बच्चेके निमित्त भोजन होता है. जिस तरह वेदमे

---

* इस प्रकार और शब्दभी हैं जिस तरह संस्कृतमे मर्त्य, ज़िन्दमे मश्य; संस्कृतमे पृतन, न्ज़िदमे पिशन; संस्कृत भर्तृ, ज़िन्द बशर; संस्कृतमें मृत, ज़िन्दमे मिश.

उसी तरह अवेस्तामेंभी संसार अश पर चलता है और पृथ्वीको अशने उत्पन्न किया है. जो लोग सृष्टिमे अशके निमित्त आशिष मांगते हैं उनको मरने उपरान्त ऊंचे आकाश अर्थात् अशके निवासमे आर्मज्द (पारसी देवोंका इष्ट) मिलेगा. अच्छा पुजारी अशकी रक्षा करता है, अशसे सृष्टि वढती है, और उन्नति करती है. सृष्टिका सवसे वड़ा नियम अश है और पुजारीकी सबसे बड़ी अश यह है कि वह अशवान् हो जाय अर्थात् उसको अश (सत्य) मिल जाय.

इससे यह जान पड़ेगा कि हिन्दुस्थानियों और ईरानियोंके जुदा होनेके पूर्व आकाशी पदार्थोंका निश्चय उपस्थित था कि यह उनका पुराना मत था और यह कि अवेस्ता और वेदके प्राचीन मंत्रोंके पहिलेसे था. यह पीछेकी कल्पनाका परिणाम न था व न सृष्टिके अन्य देवोंके पूर्व यह था, वरन यह स्वाभाविक वार्ता थी जो कि दक्षिणी आर्योंके प्राचीन मतोंमे फैली हुई थी और उनके धर्मको ठीक जाननेकेलिये इसका जानना प्रातःकाल, अग्नि, इन्द्र, वरुण व रुद्रके इतिहासोंमें आवश्यक है.

अनुमान करो कि सृष्टिमें ऋतका मानना कैसा था, चाहे पूर्व केवल यही माना जाता हो कि सूर्य अपनी सीमासे आगे न वढेगा. यह एक अन्तर था जो अंधे दैवात् और ठीक पदार्थोंमे था. अवभी वहुतसे लोग ऐसे हैं कि जव कोई पदार्थ उनको नही मिलता, जव उनके लड़कपनके खयालात जाते रहते हैं, जब उनको मनुष्योंमें निश्चय नहीं रहता है, और जब कि वह यह देखकर कि स्वयं अभीष्टी व वुरे लोग अपना अर्थ निकाल लेते हैं, वह सत्यता, नेकी, निर्दोषका मार्ग इस संसारमे छोड देते हैं, तव उनको ऋतके अनुमानसे भरोसा होता है, अर्थात् सृष्टिके नियमसे,—चाहे वह नक्षत्रोंके भामनेसे ज्ञात हो वा अन्य पदार्थोंसे—जो उनसे नही भूलतीं. कितने मनुष्य अनुमान करते हैं कि वह इस सृष्टिमे रहते हैं जिसमे ऐसे सुनियम हैं और जब और पदार्थ जाते रहते हैं तव वह इन पदार्थोंमें

निश्चित होते हैं. हमारे समीप ऋतका अनुमान कुछभी न हो परन्तु पृथ्वीके प्राचीन वासियोंके निमित्त जब कोई और सहाय न था तब यही सब कुछ था. यह उनके प्रकाशक पदार्थों, देवों, अग्नि, और इन्द्रसे अच्छा था. क्यों कि जब वह इसे एक मर्तबा जान लेते थे तब यह बात जा नहीं सकती थी.

वेदसे हमको यह ज्ञात हुआ कि हिन्दवासी प्राचीन पुरुष केवल उन्हीं दैवी शक्तियोंको नहीं मानते थे जो उनकी इन्द्रियोंसे थोडी़बहुत ज्ञात होती थी. जैसे नदी, पर्वत, आकाश, सूर्य, गरज, वर्षा. परन्तु उनके अनुमानमें मतकी औरभी दो आवश्यक बातेंभी थीं अर्थात् अनन्त और क़ायदेका ख़याल. एक पदार्थ प्रातःकालके पीछे सुनहरे समुद्रमें था और दूसरा सूर्यकी दैनिक गतिमें था. ये दो खयाल जो हरएक पुरुषके दिलमें अब आयेंगे पहिले केवल स्वभावसे उत्पन्न हुए थे लेकिन यह खयाल तबतक ठहरा जबतक हमारे बुजुर्गोंके दिलमें इस बातका पक्का निश्चय करा दिया कि सब ठीक है और यह आशा दिला दी कि सब ठीक होगा.

# व्याख्यान छठवां.

## इष्टेश्वरमत, अनेकेश्वरमत, एकेश्वरमत, निरीश्वरमत.

[क्या धर्मका आद्य स्वरूप एकेश्वरमत था?]

यदि तुम यह खयाल करो कि वेदके मुख्य देवोंका मूलत्व व उन्नति ये दोनों स्वाभाविक व सहज ध्यानान्त आवश्यक थीं, कदाचित् तुम मेरे अनुकूल होगे कि मनुष्यजाति पूर्वकालमें एकेश्वरी मतके अथवा अनेकेश्वरी मतके थे; जहांतक आर्यावर्ती अथवा युरोपियनका संबंध है. इसके वादकी वहुत आवश्यकता नहीं है. यह विवाद न होता, यदि बीचके कालका एक नियम हमतक न पहुंचता कि ईश्वरने मनुष्योंको धर्मका बोध आद्य प्रेरणासे किया जिससे सत्य व पूर्ण उत्तम धर्म एक बताया गया जिसमे एकही देवकी मान थी. यह खयाल किया जाता था कि केवल यहुदियोंमें एक देवताकी मान शेष रही जब कि और जातियोंने उसे छोड़ दिया व बहुतसे देवोंको या मूर्तियोंको पूजने लगे और फिर पीछेसे वह पवित्र प्रकाशमें गये जिसमे कि एकही देवताको मानते थे. आश्चर्यकी बात है कि ऐसे नियम अभीतक बाकी रहे. बड़े बड़े धर्मज्ञ विद्यावानोंने इसको अशुद्ध सिद्ध किया और स्वीकार किया कि इस नियमका मूल पुष्ट नहीं है. परन्तु फिरभी यह नियम ऐसे ऐसे स्थानोंपर मिलता है जहां इसके होनेकी वहुत कम आशा हो अर्थात् हवालेकी और मदर्सेकी कितावोंमे. और इस तरह यह खरपतवार यहांतक वो दिया जाता है कि यह प्रतिस्थान आता है और गेहूंको ढकलेता है.

## भाषा व धर्मविज्ञान.

इन बातोंमे भाषा और धर्मविज्ञान वहुत मिलता है. यद्यपि ईंजील से व और किसी मार्गसे कोई प्रमाण नहीं मिला, न बुद्धिसे सिद्ध हुआ तोभी वहुधा प्राचीन औ वर्तमानके लिखनेवाले यह कहते हैं कि

भाषाभी आद्य प्रेरणासे उत्पन्न हुई. इसके उपरान्त यह फल निकाला कि इबरानी भाषाही सबसे पूर्वकी भाषा थी और सब भाषाएं इसी इबरानी भाषासे निकली हैं. हम आश्चर्यसे देखते हैं कि विद्या, वुद्धि, वड़ी बड़ी पुस्तकोंमें खर्च करके यह सिद्ध किया जाता था कि ईरानी, लैटिन फ्रान्सीसी और अंग्रेजी भाषाएं इबरानी भाषासे निकली हैं. हम कितनेही शब्दोंको रदवदल करें परन्तु यह वात नहीं सावित होती कि इबरानी भाषाही इन सब भाषाओंकी माता थी. इनको शिशोंकी अपूर्णतासे यह आवश्यक है कि फिरसे परिश्रम किया जाय और जितनी साक्षी भाषाके जड़की व उन्नतिकेलिये मिले इकट्ठी की जाय. भाषाको ऐतिहासिक मार्गपर जाननेसे संसारकी मुख्य मुख्य भाषाओंकी वंशावली वनाई गई है जिसमें इबरानी भाषाभी एक शाखा निकली है और भाषाके मूलका एक नया वृक्ष उत्पन्न हुआ. भाषाको देखकर धर्मविद्याके ज्ञानवानोंकोभी वैसाही परिणाम उत्पन्न हुआ. उन्होंने और धर्मोंको इस खयालसे नहीं देखा कि वह यहुदी धर्मसे विगड़कर वनी है या उसीसे उत्पन्न हुई है. उन्होंने उन धर्म- के इतिहासोंको पढा जो संसारकी शुद्ध पुस्तकोंसे मिलते हैं और विरुद्ध जातियोंके देवों और रस्तों और भाषाओंको देखा और इन सब साक्षियोंको इकट्ठा करना अपना धर्म समझा. इसके वाद उन्होंने जो कुछ संग्रह किया था उससे वंशावली वनाई और इसी प्रकार मतकी जड़को नूतन प्रकारपर जानना चाहा कि सब धर्मोंका मूल और मुख्य अनुमान और अनन्तका अनुमान कैसे उत्पन्न हुआ, और उन्होंने के- वल इन्द्रियोंको और उस सृष्टिको—जो उनके आसपास हैं—माना.

इन दो विज्ञानोंमे औरभी वातें एक तरहकी है. भाषाकी उन्नतिमेंभी जो वातें कि वुरी हो गई थीं व विगड गई थीं निकाल डाली गई, इसी तरह यहभी ज्ञात हुआ कि धर्मोन्नतिमेंभी प्राचीन जीर्ण पदार्थ निकाले डाले गये ताकि उसका पुष्ट भाग स्थित रहे और नई वातें उसमे आ सकें. जो धर्म वदल नहीं सकता है वह उस भाषाकी तरह है जो कुछ काल अच्छे प्रकार स्थित रहती है पर वह यक वारगी जा

आती रहती है जब कि लोगोंकी मुख्य भाषाएं हो जाती हैं और उनके मुख्य शब्द होते हैं जिसे बहुधा ईश्वरका शब्द कहते हैं.

जिस तरह यह कोई नहीं कहता है कि भाषा स्वभावसे है, इसी तरह वह समयभी आवेगा जब यह कहा जायगा कि कोई धर्म स्वाभाविक नहीं है. हम जानते हैं कि मनुष्यको हर पदार्थ परिश्रमसे प्राप्त होता है. हम यहभी जानते हैं कि जहां उसने शुभचिंतकतासे परिश्रम किया है, वहां पृथ्वीसे कांटे नहीं उत्पन्न हुए वरन उसकी रक्षा निमित्त उपयोगी सामग्री उत्पन्न हुई है, यद्यपि वह अपनी सारी आयु दुःख विथाहीमे रोटी खावे.

यह बात समझमे आ सकती है कि यदि आकाशसे पूरा व्याकरण व कोष एक बारगी उतरता तो उन लोगोंका लाभ न होता जिन्होंने पदार्थोंको देखकर कोई अनुमान नहीं उत्पन्न किये थे और जिनको एक अनुमानसे द्वितीयानुमानका संबंध नही मालूम होता था. वह अन्य भाषा होती और जबतक किसीको अपनी भाषा न मालूम हो तबतक वह दूसरी भाषा नहीं जान सकता. हम नवीन भाषाएं पढ़ सकते हैं परन्तु अपनी भाषा आपहीसे होनी चाहिये. यही हाल धर्मका है. किसी पादरीसे पूछे कि वह ईसाई धर्मकी बारीकियां उन लोगोंको बता सकता है जो यही नहीं जानते हैं कि धर्म क्या पदार्थ है? वह यही कह सकता है कि जंगलियोंके मतकी जड़ोंको ढूंढ़े जो बहुतसी अराड बराड बातोंमे छिपी हुई हैं और खरपत वार हटाकर उनको बढ़ाएं और उस समय पर्यन्त प्रतीक्षा ( इन्तिजार ) करें जबतक कि पृथ्वी इसके लायक हो जावे कि उसमे अच्छे धर्मका बीज पैदा हो सके.

## ईश्वरविषयीक कल्पना.

यदि हम धर्मको इस प्रकार देखें तो यह प्रश्न कभी नहीं उत्पन्न हो सक्ता है कि पहिले पहिले मनुष्य एक देवता व बहुतसे देवता मानते थे. जब एक बार मनुष्य उस दशाको पहुंच गया, जब वह एक पदार्थ या

वहुतसे पदार्थोंको देखकर ईश्वर कह सकता था, तव वह आधा काम कर चुका. जव एक वार उसे देवका शब्द मिल चुका तव उसे केवल वे पदार्थ ढूंढ़ना हैं जिनकेलिये इस शब्दको वर्ताव कर सकते हैं. अव हमको यही जानना है कि मनुष्यको पहिले पहिले ईश्वरका अनुमान कैसे हुआ और किन पदार्थोंसे यह अनुमान वना? इसके वाद यह प्रश्न होता है कि वह इसको, उसको, एकको या वहुत पदार्थोंको देवता कैसे कहने लगा? धर्मपर लिखनेवाले लोग कहते हैं कि प्रारम्भकालके लोग सृष्टिके वड़े वड़े पदार्थोंको देवता कहने लगे इसी तरह वहभी कह सकते हैं कि प्राचीन मनुष्य मृतकोंको मोममें वंद रखते थे यद्यपि वह मोमको जानते न [१]थे.

## वेदसे क्या नये पदार्थ ज्ञात होते हैं?

मैं उन लोगोंमें नहीं हूं जो कहते हैं कि धर्मकी विद्याके सव प्रश्नोंकी कुंजी वेदमें है. इस अनुमानसे वढ़कर कोई गलती ऐसी नहीं हो सकती है कि जिस प्रकार हिन्दोस्तानमें धर्म वढ़ा इसी तरह सव देशोंमे वढ़ा. वरन वहुतसे धर्मोंको मिलाकर पढ़नेमे यह वात जान पड़ती है कि विरुद्ध मार्गोंसे लोग एक स्थानपर कैसे पहुंचे? मैं केवल यही कहता हूं कि वेदमे मत सम्वन्धी उन्नतिकी एक अत्यंत सरल धारा मिलती है, और अगर कोई हमारे पूर्वके अनुमान नहीं तो यह प्रश्न सारा अशुद्ध हो जाता है कि हिन्दोस्तानके आर्य लोग पूर्वमे एक देवताको मानते थे या नही.

---

१ प्राचीनकालके आर्य्य लोगोंकी धर्म्मविषयिक वुद्धि चाहे जितनी तीव्र रही हो, ईश्व स्पष्ट पदार्थज्ञान कैसाही अद्भुत उनको क्यों न रहा हो और महान् सृष्टिविषयिक पदार्थोंको जिनसे कि वह चारों ओर घिरे हुये थे ईश्वरमें आरोपण करनेकी उनको कितनीही उत्कंठा क्यों न रही हो तथापि यह प्रत्यक्ष है कि उन पदार्थोंकेद्वारा जो इन्द्रियविकार उत्पन्न होता था वह उसी भावसे वृद्धिको प्राप्त होता जैसे कि वह पदार्थ अधिक अधिक दृष्टि पड़ता और इसी कारण आकाश, पृथ्वी, सूर्य इत्यादि यद्यपि वह देव प्रमाण मानित थे उन नामोंकी अपेक्षा जो उनके देव गुणविशिष्ट थे सहजही अपने वाह्य गुणोंद्वारा अधिकतर वर्णित होते.—जे, म्युअर.

## इष्टेश्वरमत.

यदि हम वेदके विरुद्ध मतोंके निमित्त एक नाम रखना चाहें तो हम यह नहीं कह सकते कि वह एकेश्वरी या अनेकेश्वरी धर्मको मानते थे वरन वह इष्टेश्वरी धर्मको मानते थे अर्थात् वह एक एक पदार्थोंको पूजते थे जो अर्द्धस्पृश्य अथवा स्पृश्यमान् हों और जिनमें वह समझते थे कि अदृश्य, अनन्त उपस्थित है, और इस प्रत्येक पदार्थको उन्होंने अन्त और खयालसे अधिक बढ़ा दिया; और इसी प्रकार अन्तको असुर अर्थात् सजीव; दैव अर्थात् प्रकाशक पदार्थ; और अमृत अर्थात् न मरनेवाला पदार्थ; और सदैव रहनेवाला पदार्थ हुआ अर्थात् परमेश्वरमें उन्होंने वे सव वड़ी वड़ी वड़ाइयां रख दीं जो कि विरुद्ध दर्जोंमें मनुष्य खयाल कर सकते थे. मतके विरुद्ध स्थान वेदसे अधिक और कहीं नहीं ज्ञात हो सकते वरन यदि वेद न होता तो यह हमको मालूमभी न होते.

## सूर्य व उसका स्वाभाविक रूप.

अब हम सृष्टिके पदार्थोंके पहिले जो ईश्वरी व मानुषी शक्ति हो जाती हैं सूर्यकी उपमासे दिखलाएंगे. सूर्यके कई नाम हैं—जैसे सूर्य, सवितृ, मित्र, पोषण, आदित्य आदि. यह देखना चाहिये कि इन नामोंसे स्वयं एक प्रकारकी कार्य करती हुई सूरत किस तरह उत्पन्न हो गई और वेदमतके समझनेमे यह बहुत आवश्यक है कि जहांतक हो सके इन नामोंको एक दूसरेसे अलग रक्खें. परन्तु हमें केवल इस वातपर अधिक ध्यान देना चाहिये कि यह शाखें एकही जड़से किस तरह फूट निकलीं और मुख्यकर एकही पदार्थके कई विरुद्ध रूपोंकेलिये वर्ताव होते थे. सूर्यके मध्येमे सम्पूर्ण वर्णन सूर्य, सवितृ, मित्र, पोषण, आदित्य किसी नामसे कहें ऐसे हैं कि प्रत्येक मनुष्य जो सृष्टिको कवियोंकी तरह देखते हैं, इन्हे अच्छी तरह सोच सकते हैं कि सूर्य आकाशका पुत्र[1] कहा गया है. प्रातःकाल कहीं उसकी स्त्री[2]

---

१ ऋग्वेद–१०, ३७, १. दिवः पुत्राय सूर्याय शंसत:
२ ऋग्वेद–७, ७५, ५. सूर्यस्य योषा.

और कहीं उसकी बेटी कही गई है और चूंकि प्रातःकालभी आकाशकी पुत्री है, इसलिये ये दो बहिने कहीं जाती हैं. इन्द्र, सूर्य व उषाका उत्पन्नकर्ता कहा गया है.[3] किसी स्थानमे लिखा है कि सूर्यकी उत्पत्ति प्रातःकालसे हुई.[4] यही पुराण इतिहासकी उन्नतिके मार्ग इससे बहुत उत्पन्न हो सकते हैं. वेदमे मिस्र यूनानी कविताके सूर्यकेपास एक रथ रहता है जिसमे एक या सात घोड़े जिन्हे हरीत् कहते हैं जुते हैं. इसे देवतोंका चिहरा कहते हैं[6] और मित्र, वरुण, अग्नि और अन्य मानुषी साकार देवताओंका नेत्र कहते हैं.[7] जब वह अपने घोड़ोंको खोलता है रात अपना दामन् फैलाती है.[8] यह वर्णन सूर्यका हम समीप समीप प्रतिस्थान देखते हैं. यद्यपि सूर्य स्वयं प्रसवितृ ( उत्पन्नकर्ता ) कहा है परन्तु सवितृके नामसे वह स्वयं साधिकारी हो जाता है और उसमे नाटककीसी व्याख्या आ जाती है. सवितृकी तरह वह एक सुनहले रथपर आरूढ़ रहता है,[10] वाल पीले होते हैं,[11] और सुनहले हाथ[13] आंखें[14] उपस्थित, सुनहरी

---

१ ऋग्वेद—४, ४३, २. सूर्यस्य दुहिता.

२ ऋग्वेद—९, ७९, ८. दुहिता दिवः.

३ ऋग्वेद—२, १२, ७. यः सूर्यं यः उषसम् जजान.

४ ऋग्वेद—७, ७८, ३. अजीजनन् सूर्यं यज्ञं अग्निं.

५ ऋग्वेद—७, ६३, २. वत् एतसः वहति। ऋग्वेद—१, ११५, ३. अश्वाः हरितः सूर्यस्य.

६ ऋग्वेद—१, ११५, १. चित्रं देवानां उदगादनीकम्.

७ ऋग्वेद—१, ११५, १. चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः.

८ ,, १, ११५, ४. यदा इत् अयुक्त हरितः सधस्थात् आत् रात्रीवासः तनुते सिमस्मै.

९ ऋग्वेद—७, ६३, २. प्रसविता जनानाम्.

१० ऋग्वेद—१, ३५, २. हिरण्ययेन सविता रथेन.

११ ,, १०, १३९, १. हरिकेशः.

१२ ऋग्वेद—१, ३५, १०. हिरण्यहस्तः.

१३ ऋग्वेद—१, २२, ५. हिरण्यपाणिः.

१४ ऋग्वेद—१, ३५, ८. हिरण्याक्षः.

वाणी और लोहेके ठोडी बाजू होती हैं,[२] वह कवच पहिने हुए है, धूलिरहित मार्गोंपर चलता है. मित्रभी मुख्य तो सूर्य था परन्तु एक नये स्वरूपमें, जिसके कारणसे उसका नामही दूसरा हो गया. वह मुख्यकर प्रातःकालका या दिनका प्रकाशक हंसमुख सूर्य था. (सूर्य, दिवस वर्तमान भाषामें एकही अर्थमें वर्ते जाते हैं.) कभी कवि कहता है कि "सवितृ," "मित्र" एकही है या यह कि सवितृ वही काम करता है जो मित्र काम करता है, वरुणकेसाथ.

मित्रकीभी बहुधा स्तुति वरुणकेसाथ की गई है. दोनो एकही रथपर बैठे हैं. जो प्रातःकालके होनेपर सोनेसे रंगा हुआ ज्ञात होता है और अस्त होनेके समय उसके डंडे लोहेके होते हैं. विष्णुभी सूर्यका दूसरा नाम है. उसके सूर्य देवता होनेकी दलील सबसे बड़ी यह है कि उसके प्रगट तीन डग, प्रातः, मध्यान्ह, सायं समयसे, सूर्यकी जगहसे मतलब है. परन्तु पीछेसे उसके दैवी कार्योंकी शान शौकतमें उसका मुख्य स्वरूप अन्तर्ध्यान हो जाता है. इसके विरुद्ध पूषण सदैव दीनदशामें रहता है. वह मुख्यकर गड़रियोंका सूर्य था. उसके घोड़े—यदि हम वैदिक कवियोंका अनुकरण करें बकरे थे वह—अपनें हाथमे एक चाबुक और एक सुनहली किर्चें लिये है. उसकी बहिन (भगिनी) या उसका मित्र सूर्य है. सूर्य या प्रातःको स्त्रीलिंग देवोंमे गिनते हैं और मिस्ल अन्य स्त्रीलिंग देवोंके समझे जाते हैं, और इन देवोंकी तरह वहभी स्व

---

१ ऋग्वेद–६, ७१, ३. हिरण्यजिव्हः.

२ ऋग्वेद–६, ७१, ४. अयो हनुः.

३ मित्र (दोस्त) मित् + त्र से है और इसकी धातु 'मिद्' होगी जिसका अर्थ मोटा होना, मोटा करना, चमकदार बनाना, खुश करना और प्यार करना है. इसी तरह फेरफार धातु 'स्निह' के अर्थोंमे है. 'मिद्' से मेद (चर्बी) और मेदिन् (आनन्ददायक मित्र व जोडीदार.) देखो, अथर्ववेद–१०, १, ३३. सूर्येण मेदिनी.

४ ऋग्वेद–६, ५२, ९.

५ ऋग्वेद–१, ४२, ६.

६ ऋग्वेद–६, ५५, ४.

कुछ देखते हैं.[१] आदित्य जो पीछेसे सूर्यके अर्थमें वर्ताव होने लगा मुख्यकर वेदमें सम्पूर्ण सूर्यही देवताओंकेलिये एक नाम है. मैं इन्हे सूर्यही कहता हूं. यद्यपि प्रोफेसर राथने इसे केवल एक परस्परी वर्तावका अनुमान ठहराया है. सूर्यभी आदित्य है, सवितृभी आदित्य है, मित्रभी आदित्य है, और जहां कहीं आदित्य केवल आया है —जैसे ऋग्वेदके आन्तिक भागोंमे—तो इसका उल्था सूर्य करना चाहिये. इन सब बातोंको हम अन्य मतोंसे जानते हैं और समझमे आ सकती हैं.

## सूर्यकी अलौकिक शक्ति.

वेदके कवियोंके लिखनेका ढंग प्रति प्रसंगपर बदलता गया है. सूर्य केवल वही प्रकाशक देव नहीं है जो आकाशमे अपना दैनिक कार्य करता है, वरन वह अन्य दीर्घ कार्योंका कर्ता अनुमान किया जाता है. वह मुख्य न्यायाधीश, प्रबंधकर्ता, अनुमान किया जाता है. वेदमे हम दर्जा बदर्जा यह देख सकते हैं कि सूर्य किस तरह एक चमकदार पदार्थसे बढते बढते सृष्टि उत्पन्नकर्ता, रक्षक, आज्ञा करनेवाला, पारितोषिकदाता, वरन देवता हुआ. पहिला दर्जा वह है जब हम सूर्यकी केवल रोशनी ( प्रकाश ) से उस प्रकाशको पहुंचते हैं जो प्रातःकाल मनुष्योंको नींदसे जागता है और इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य व सारी सृष्टिमें चेतना आ गई. पस जो हमको प्रातःकाल जगाता है और सारी सृष्टिको नवीन चेतना देता है उसे हम "प्रतिदिनी प्राणदाता" कहने लगे.

दूसरे यह कि इसी प्रकार लोकमे कल्पना बढती गई जो प्रतिदिन प्रकाशदाता, व चेतनदाता, व प्राणदाता है तो वह सबका प्रकाशक, प्राणदाता, हुआ. जो प्रकाश व जीवन आज लाया वही प्रकाश और जीवनको सबसे पहिले दिन लाया होगा. जिस तरह प्रकाशसे दिन प्रारम्भ होता है इसी तरह उससे सृष्टि आरंभ हुई.

---

१ ऋग्वेद–१, ६२, ९.

और सूर्य इस तरह उत्पन्नकर्ता हुआ और जब उत्पन्नकर्ता हुआ तब सृष्टिका नियन्ताभी हुआ.

तीसरे—चूंकि सूर्य रात्रिके अंधकारको दूर करता है और पृथ्वीको फलवती करता है इसलिये यह सब जीवधारियोंका रक्षक और पालक हुआ.

चौथे—सूर्य भले बूरे सब पदार्थोंको देखता है इसलिये बूरे काम करनेवालेसे यह कहा जा सकता है कि उसे कोई नहीं देखता किन्तु सूर्य देखता है. और एक निष्पापी मनुष्यको जब कोई सहाय नहीं देता तो वह सूर्यसे विनय करता है कि उसके निर्दोषी होनेका शाखी हो! "मेरा आत्मा ईश्वरकेनिमित्त उन लोगोंसे अधिक प्रतीक्षा करता है जो प्रातःकालकी प्रतीक्षा करता है." (बायबिल १३०, ६.)

अब इन दर्जोंके कई उदाहरण देनेनिमित्त कई वाक्य लिखेंगे.—सूर्यका नाम सवितृ है जिसका अर्थ जिलानेवाला; और सूर्यको प्रसविता जनानाम् (समूहोंका उत्पन्नकर्ता.)

ऋग्वेद, ७—६३—१ मे लिखा है कि "सूर्य उदय होता है, सुखदाता, सर्वचक्षु, सब मनुष्योंकेलिये सदैव एक रस, मित्र व वरुणका नेत्र, देवता जो अंधकारको चर्मकी तरह लपेट लेता है."

ऋग्वेद ७, ६३, ४ मे लिखा है "तेजस्वी (सूर्य) आकाशमे उदय होता है, बहुत दूरतक चमकता है, और प्रकाशयुक्त अपनेसे दूरका काम करने जाता है. अब मनुष्योंकोभी सूर्यसे जान पाकर अपनी जगह और अपने कार्यको जाने दो."

ऋग्वेद ७, ६०, २ मे सूर्यकी इस तरह आराधना की गई है—"प्रत्येक पदार्थका जो हिलता है या ठहरा है और उपस्थित है बचानेवाला." बहुत स्थानोंमे वर्णन किया गया है कि सूर्य सब पदार्थोंको देखता है. सर्वदर्शी सूर्यके सन्मुख नक्षत्र चोरोंकी तरह भाग जाते हैं. वह मनुष्योंकी नेकी बदीको देखता है. वह जो सब सृष्टिको देखता है सारे मनुष्योंके अनुमानोंकोभी जानता है. यद्यपि सूर्य सब पदार्थोंको देखता व जानता है इसलिये उससे विनती की जाती है

कि जो कुछ उसने देखा या जाना है उसे भूल जाय और क्षमा कर दे. जैसे ऋग्वेदके ४–५४–३ में–" जो कुच्छ हमने आकाशी पदार्थोंके सन्मुख कमखयाली, कमजोरी, या घमंड या मानुषी स्वभावसे किया है अब ऐ सवितृ ! हमे देवों व मनुष्योंके सामने उससे निरपराध कर !"

सूर्यसे यहभी विनय किया और कहा कि वह रोग और दुःस्वमको दूर करे. सूर्योदयकाल अन्य देवोंसेभी विनती की जाती है कि मनुष्यको पाप और अविद्या (मूर्खता) से बचाइये.

जब सूर्य बहुत बार प्राणदाता कहा गया तब उसको स्वासा व प्राणभी उन पदार्थोंका कहा है जो गति स्थितिमें रहता है. औ अन्तको वह सब पदार्थोंका कर्ता " विश्वकर्म्मन् " हो गया जिसने सब सृष्टिको इकठा किया, और प्रजापति हुआ; जिसका मतलब है कि मनुष्य और सब जानदार पदार्थोंका पति हुआ. एक कवि कहता है कि सवितृने पृथ्वीको रस्सियोंसे बांधा है और आकाशको बेसहारे उसने स्थापन किया है. वह आकाशको खड़ा करनेवाला और संसारका प्रजापति कहा गया है. इसवक्तमेभी उसका कवच और लबादा पीले रंगका वर्णन किया जो सुनहले बालवाले सूर्यकेलिये ठीक था.

दूसरा कवि कहता है–आकाशको सूर्य उठाये है और सत्य पृथ्वीको साधे है. अन्तमे सूर्यको सर्वोपरि कर दिया है अर्थात् उसे देवोंका देवता और अग्रगामी ( पेशवा ) कहा.

शब्द सवितृमें व्यक्तिवाचक व ईश्वरी अंश हैं, जैसे ऊपरके कोई कोई वाक्योंसे ज्ञात हुआ होगा. यह बात औरभी साफ ज्ञात होगी. केवल सवितृ सब सृष्टिपर राज्य करता है. जो नियम उसने रचे हैं सब पुष्ट हैं और अन्य देवता केवल उसकी बड़ाईही नहीं करते किन्तु पीछे पीछे चलते हैं. एक वाक्यमें यह लिखा गया है कि उसने अन्य देवोंको अमर कर दिया, और मनुष्योंको प्राणदान उसीने किया. इससे यही मतलब हो सकता है कि देव व मनुष्योंकी जान सवितृके अधिकारमे है, जो जीवनदाता सूर्य है. अन्तमे भूल-

ना न चाहिये कि वेदमें सबसे पवित्र मंत्र गायत्री है जिसमे सवितृकी स्तुति है. " हमे सवितृकी पूज्य प्रतिष्ठापर अनुमान करने दो. हमारी बुद्धिको बढाओ. " पूषणभी किसानोंके सूर्यदेवतासे किसी समय बढ जाता है. एक स्थान उसे मर्त्यसे बडा और ईश्वरके बराबर और दूसरी जगह सब पदार्थोंका जो ठहरे हैं या हिलते हैं पति कहा है और सूर्यसंबंधी देवताओंकी तरह वह सब पदार्थ देखता है और सवितृकी तरह वह मृतक पुरुषोंके आत्माको स्वर्गलोकको ले जानेवाला अनुमान किया गया है. मित्र व विष्णुका हाल मालूम है. उनकी बहुत महिमा हुई है. मित्र भूमि व आकाशसे बड़ा है. वह सब देवताओंको संभाले है.

विष्णु सब संसारको सुधारे हुए हैं. वह युद्धमे इन्द्रका साथ देता है और कोई उसकी महिमाको नहीं पा सकता.

## सूर्यकी लौकिक शक्ति.

यदि हम वेदकी धार्मिक कविताकी निस्बत और कुछ नहीं जानते तो हम सूर्यकी महिमा जो उसमें कही गई है इतना अवश्य जानते कि पूर्वकालके ब्राह्मण सूर्यको बहुतसे नामोंमे अपने अत्यन्त बड़े देवताकी तरह पूजते थे, और इसे यह कहा जा सकता कि वे एकही परमेश्वरको मानते थे. परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है. बहुतसे श्लोकोंमे–जिन्हे हमने लिखा है–सूर्यको ऐसा बड़ा नहीं माना है कि वैसी बड़ाई और देवोंकी न की जा सके. इस स्वरूपमे वह जीयस या ज्युपिटरसे बहुत विरुद्ध है, और वैदिक कविभी कभी तो सूर्यको सारे पदार्थोंका रचनेवाला और स्थित रखनेवाला लिखता है, और कहीं उसी देवताको समुद्रोंका लड़का जिसे प्रातःकालने उत्पन्न किया है और जो देवोंमेसे एक देवता है न किसीसे बुरा न किसीमे भला लिखा है.

प्राचीन वैदिक मतका मुख्य विशेषण है कि वे देवताओंको अलग अलग स्वाधीन जानते थे और इस कारणसे उस प्रकारके

धर्ममें बिलकुल विरुद्ध था जिसमें ऐसे देवताओंका पूजन किया जाता है जो एकही ईश्वर सच्चिदानन्दके आधीन होते हैं और जिसके कारणसे एक देवताकी प्रसन्नता दूसरे देवताकेविनाभी अच्छी तरह प्राप्त हो सकती है. वेदमे सब देवताओंकी एक एक करके स्तुति हुई है और प्रत्येक देवताके वर्णनमे सब ईश्वरता उसीको दे दी गई है. कवि किसी देवताकी स्तुति करते समय अन्य देवोंको भूल जाता है परन्तु मंत्रोंके एकही गिरोहमे और कभी कभी उसी मंत्रमें अन्य देवोंका वर्णन होता है, और ये देवताभी बिलकुल स्वाधीन हैं और सबसे बड़ेभी हैं. पुजारीका अनुमान एक बारगी बदल जाता है और वही कवि जो सूर्यको अभी ऐसा समझता था कि पृथ्वी व आकाशका वही राज्यकर्ता है, सूर्य और अन्य अन्य देवोंको आकाश व पृथ्वीका पुत्र समझने लगते हैं. धर्मसंबंधी अनुमानकी इस दशाका जानना हमारेवास्ते कठिन हो परन्तु यह अच्छे प्रकारसे समझमें आ सकता है और इसका जानना आवश्यकभी है. अगर हम यह याद रक्खें कि परमेश्वरका ख्याल जैसा अब हम लोग रखते हैं उस समयतक पुष्ट न हुआ था वरन धीरे धीरे पुष्टताको पहुंचता जाता था. कवि लोग सबसे बड़ी शक्तिको सूर्यमें जानते थे परन्तु उसके साथही वह यही बड़ी शक्ति संसारके और पदार्थोंमेभी मानते थे. वे पर्वतों, वृक्षों, पृथ्वी, आकाश, मरुत् व आगकी बड़ाई जहांतक उनसे हो सकती थी करते थे. इन बड़े विशेषणोंसे प्रत्येक देवताको स्वाधीन समझने लगे, परन्तु यह कहना कि इन लोगोंने इन सबको "देवता" या "देव" समझा बुद्धिविरुद्ध है, क्यों कि जब उन्होंने इन सबकी बड़ाइयां की उस समयतक न तो वह शब्द न वह अनुमान प्राप्त था. वे इन सारे पदार्थोंमें उस बातको देखते थे जिस बातको उन्होंने ईश्वर कहा.

परन्तु पूर्वमें तो वे इसीको बहुत जानते थे कि जिस पदार्थकी बड़ाई करना हो उसके विशेषणको हद्दतक पहुंचा देवें. बड़ाई कर चुकनेपर या बड़ाई करतेसमय बहुतसी ऐसी बातें—जो बहुतसे

पदार्थोंकी बड़ाईमें वर्ताव की जा सकती थीं–एक नई स्वाधीन भलमन्सी प्राप्त कर लेते हैं और इस तरहसे पहिले पहिले ईश्वरके अनुमान और उसके नाम जान पड़ते हैं. यदि पर्वतों, नदियों, आकाश और सूर्य सबको सजीव व कार्यकर्ता हुआ. (असुर), अजर, अमर, या देव कहें तो कुछ समयके पश्चात् यही गुणवाचक शब्द केवल ऐसेही पदार्थोंके नाम न हो जायंगे जिनसे शक्ति प्रगट हो या यह प्रगट हो कि वे प्रकाश और अनाश हैं. वरन उन सब पदार्थोंके नामभी इससे मालूम हो जाते हैं जिनका इन शब्दोंसे अनुमान होता है. इस तरहपर यह कहनेमें कि अग्नि देवोंमेसे देव या प्रकाशक पदार्थोंमेसे एक है और यह कहनेमे कि अग्नि प्रकाशवान् है वहुत अन्तर होगा. यदि यह कहें कि दिवस व आकाश व सूर्य असुर व अमर हैं तो इससे अर्थ अधिक उत्पन्न होंगे, वनिस्वत इसके कि यह कहें कि सूर्य अविनाशी है या वह चलता फिरता रहता है. असुर, शक्तिमान्, अजर, अनाश, देव यह सब विशेषण वहुतसे पदार्थोंमेंसे एकही पदार्थके विशेषणमें कहे जा सकते हैं, और यदि इन लोगोंका अर्थ–जो कहते हैं कि ईश्वर प्रारंभकालसे एकही माना गया है– केवल यही हो कि ईश्वर और ईश्वरके इरादे सांसारिक तौरपर एक हैं तव तो निस्संदेह इस सलाहकी सहायमें कुछ कहा जा सकता है. परन्तु इस समय मेरा प्रयोजन यह है कि खोज करें कि यह आकांक्षा कैसे जान पड़ी? किन किन सिढ़ियों अथवा किन किन नामोंसे असीम ज्ञात हुआ और अज्ञात नाम पड़ा और अन्तको ईश्वरतक इस तरह पहुंचे? वेदमे जो देवता कहे गये हैं वे वहुत स्थानोंमें यूनानी शब्द थियाससे नहीं मिलते हैं क्यों कि होमरहीके समयमे यूनानियोंको यह संदेह उत्पन्न हो गया था कि देवताओंका मूल व परिमाण कुछ हो परन्तु एक सर्वेश्वर देवता व मनुष्योंका पितृदेव अवश्य होगा. चाहे वह देव हो या भाग्य.

वेदके कोई कोई खंडोंमेंभी यही अनुमान प्रकाशक दर्शाता है और इस प्रकार हमको अनुमान होता है कि यूनान, जर्मनी व रोमनि-

यांकी तरह हिन्दोस्तानमेंभी एक ईश्वरकी उपासना थी. यद्यपि वहुतसे देवताओंकी स्तुतिसे अपने अन्तःकरणको संतुष्ट कर लेते थे परन्तु हिन्दोस्तानमें लोगोंकी वुद्धिने सव कहीं उन्नति की और हमें ज्ञात होगा कि अन्तमें वे देवों व देवताओंको किसीको नहीं मानते थे और उसके जाननेकी कोशिष करते थे जो सव देवोंसे वड़ा हो व दिवस, इन्द्र, वरुण, प्रजापति सवसे वढ़कर है. परन्तु यहां मेरा प्रयोजन वेदके देवताओंका हाल लिखनेसे केवल यह है कि यद्यपि इन सवका प्रारंभ विरुद्ध स्थानोंसे हुआ है परन्तु इनकी उन्नति साथ साथ हुई है. एक दूसरेसे पृथक–एकका कोट दूसरेके कोटसे वाहर–और पुजारीकी दृष्टि स्तुति करतेसमय किसी मुख्य देवके हातेके वाहर नहीं जाती. यही मौका है कि जिसमें वेदके मंत्र जितने छान व रुचिसे पढ़े जावें मुनासिव है, परन्तु कठोरता इतनी है कि इन अनुमानोंका हमारी भाषामें पूरा पूरा प्रयोजन नहीं आ सकता. वैदिक कवि जव पर्वतोंसे रक्षाकी स्तुति करते हैं, जव नदियोंसे जलकी प्रार्थना करते हैं, तो वे नदियों व पर्वतोंको देवता कह सकते हैं. यहां देवतासे प्रकाशका अर्थ हो सकता है, परन्तु जो प्रयोजन ईश्वरसे है वह नहीं हो सकता. फिर हम प्राचीन भाषाका–जिसमें एक प्रकारके पदार्थकेवास्ते एक मुख्य शब्द रख दिया है उसका–उल्था अपनी भाषामें–जिसमें प्रति अनुमानकेलिये अलग अलग शब्द हैं–किस तरह करें?

नदी व पर्वत जैसे वेदके कवियोंको जान पड़ते थे वैसे हमेभी मालूम होते हैं, अन्तर केवल इतना है कि वे प्रत्येक पदार्थको क्रियावान् समझते थे क्यों कि हर पदार्थ–जिसका उनकी भाषामें कोई नाम था उसी तरह काम करता हुआ समझा जाता था जैसे कि मनुष्य अपनेमें देखता था.

और जवतक कि वे उसे कुछ कार्यकर्ता न अनुमान कर लेते थे तवतक उसे रुचिसे नहीं ध्यान करते थे और उनके हृदयमें उसका ध्यान नहीं जमता था. परन्तु अवभी सृष्टिके कई भागोंको काम करते

हुए ध्यान करनेमे और उसको देवता जाननेमे बड़ा अन्तर है. जब कि कवि सूर्यके वर्णनमे यह कहते थे कि वह एक रथपर सवार है, सुनहरा कवच धारण किये है, अपना हाथ फैलाए है, तो यह केवल अपनेही कामोंकी कविताई प्रगट करना या जिनकी याद संसारमें अचंभित पदार्थोंके देखनेसे होती थी जिसे हम कविताई कहते हैं उनके हिसाब गद्य था जिसे अब हम खाली अनुमानकी करतूति कहते हैं. वह उस समयमे इस कारणसे था कि वे संसारको अच्छी तरह जान नहीं सकते थे और उसका नाम ठीक नहीं रख सकते थे और इस कारणसे कि वे अपने सुननेवालोंको प्रसन्न करना चाहते हैं. यदि हम आज वशिष्ठ, विश्वामित्र या आर्य कवियोंमेसे किसीसे पूछ सकें कि क्या वे दर अस्ल सूर्यकी सुनहली गेंदको एक मनुष्य समझते थे कि जिसके हाथ, पांव, दिल, फेफड़ा, सब उपस्थित हैं. तो वे निस्संदेह हमपर हसेंगे और कहेंगे कि तुमने हमारी भाषा तो समझ ली परन्तु हमारा अनुमान न समझ सके. सवितृके पूर्व अर्थ वही थे जो उसका नाम था. यह धातु सु=उत्पन्नकर्ता, जीवदान देनासे निकाला गया था और सूर्यके अर्थ यही हैं कि वह प्राणदाता है, उत्पत्तिकर्ता है, पश्चात् इसके सवितृ उस देवताके नामसे वर्ता गया कि जिसकी निस्बत बहुतसे इतिहास कहे जाते थे और होते होते सूर्यके अर्थमे वर्ते जाने लगे. यह जो हमने सूर्यकी निस्बत वर्णन किया है यही और बहुतसे देवोंकेलियेभी काफी है परन्तु सब देवताओंके निमित्त नहीं.

अर्द्धदेव—जैसे नदी, पर्वत, मेघ, समुद्र, प्रातः, सायं, आंधी, तूफान ( मरुत् ) कदापि ईश्वर नहीं माने जाते, परन्तु जो नाम और जो वर्णन अग्नि, वरुण, इन्द्र, विष्णु, रुद्र, सोम, प्रजनके दिये गये ह वह हमारे खयालमे तो केवल ईश्वरकी स्तुतिमे वर्ताव होना चाहिये था.

## द्यौस् या प्रकाशक आकाश.

अब हम वेदहीके नहीं वरन सारी आर्यजातिके प्राचीन देवता-

ओंमेसे एक देवताकी जड़ और हाल वर्णन करेंगे अर्थात् " द्योस. " कोई लोग यही सन्देह करेंगे कि वेदमें कोई ऐसा देवता हैभी, और वेशक आर्यावर्तके वर्तमान भाषामे द्योस नामका न तो कोई देवता है, न पुल्लिंग नाम. वहां द्योस स्त्रीलिंगमें आया है और उसका अर्थ केवल आकाश है.

वेदके विद्यार्थियोंने यह वात अच्छी तरह खोज की कि वह देवता —जो यूनानमें " जीयस " और अतालियामे " ज्युपिटर, " यट्टामें " टिर " जर्मनमे " जीयों "के नामसे प्रसिद्ध है वह वैदिक प्राचीन मंत्रोंमें अभी उपस्थित हैं. वेदमे द्योस केवल एक पुल्लिंगकी तरह नहीं आया है वरन पिताकेसाथ मिला हुआ. जैसे " द्योस पिता " जैसा लातानीमे ज्युपिटर.

इस द्योस पिताका खोज कर लेना वैसाही है जैसे हम किसी सितारेके स्थान आकाशमें दुर्बीन ( दूरदर्शी यंत्र ) लगाकर देखलें जिसे हम बुद्धिसे समझते थे कि यहीं है. परन्तु वेदमेभी द्योस एक झिल मिलाता हुआ नक्षत्र है. इस शब्दके अर्थ बहुधा आकाशके माने गये है, परन्तु उसके ठीक ठीक अर्थ प्रकाशक पदार्थके होंगे क्यों कि यह निकला है "दिव" या "द्यो" धातुसे जिसका अर्थ चमकना है. और इसलिये द्योस्से केवल चमकनेका काम प्रगट होता है. यह प्रकाशक कौन था ? इसका समाचार शब्दसे नहीं ज्ञात हो सकता, केवल इतना जान पड़ता है कि वह असुर अर्थात् जानदार था. इसके पश्चात्ही इस द्योसके वारेमे बहुतसे इतिहास वन गये और दैनिक भाषामें सवितृकी तरह आकाशके निमित एक मुख्य शब्द हो गया.

प्रारम्भहीसे यह द्योस् या प्रकाश या आकाशकी प्रकाशक इस लायक था कि अन्य देवताओंमें सबसे ऊंचे दर्जेपर बैठे, और हम जान सकते हैं कि इस दर्जेका अनुमान यूनानी " जियस " व लातानी " ज्युपिटर "में किस तरह रक्खा गया. वेदमेंभी द्योसके दर्जेका यही खयाल रक्खा गया है, मगर वेदमें इसके साथही उनका अन्तःकरण मलीनभी प्रगट हो गया है जिससे वे हर देवताको

स्वाधीन जानते थे. द्यौसकी स्तुति बहुधा पृथ्वी व अग्निकेसाथ हुई है जैसे—ऋग्वेद ६।५१।५. "द्यौस् ( आकाश ) पिता, और पृथ्वी, दयालु मातृ, अग्नि बंधु, और हे वसु! हे तेजस्वी देवतो! हमारे ऊपर कृपा करो." द्यौसका दर्जा हम देखते हैं कि अव्वल है. यही दर्जा इसका सब स्तुतियोंमें रक्खा गया है. उसे सदैव पिता कहा है.

ऋग्वेद १, १८१, ६. "द्यौस पिता है, पृथ्वी तुह्मारी माता, सोम तुह्मारा भाई, अदिति तुह्मारी बहिन."

फिर ऋग्वेद ४–१–१० मे लिखा है:—" द्यौस पिता, सृष्टा; द्यौस पिता, जनिता." द्यौसकी अधिक स्तुति पृथ्वीकेसाथ हुई है और इन दोनों देवतोंको मिलाकर वेदमे "द्यावापृथ्वी" ( आकाश पृथ्वी ) कहा है. वेदमें बहुतसे ऐसे भाग हैं जिसमे पृथ्वी व आकाश ईश्वर माने गये हैं. सब देवता उन्हींके लड़के कहे गये हैं और खासकर दो बड़े प्रगट देव इन्द्र व अग्नि उन्हींकी उत्पत्तिसे माने गये हैं. सृष्टिके माबाप यही हैं. यही उसकी रक्षा करते हैं. यही अपनी शक्तिसे प्रति पदार्थको संभाले हुए हैं. तोभी अगणित संज्ञाओंके पश्चात् जो आकाश व पृथ्वीके अमर होने और सर्वशक्ति, सदैव उपस्थितके प्रगट करनेको रक्खे गये हैं, हम उन देवताओंमे सबसे चैतन्य कारीगरका चर्चा सुनते हैं जिसने आकाश व पृथ्वी बनाई, जिसे "द्यावापृथ्वी" कहो या रोदसी. बहुतसे स्थानोंमें कहा गया है कि इन्द्रने आकाश व पृथ्वीकी उत्पत्ति की और वही उसे थामे हुए हैं; और यही इन्द्र दूसरी जगह द्यौस किंवा आकाश व पृथ्वीका पुत्र कहा गया है.

### द्यौस व इन्द्रमे बड़प्पनका झगडा.

यहां हमे पहिले पहिले जान पड़ता है कि वेदके दो बड़े प्रसिद्ध देवोंमें किस प्रकारका संवाद है अर्थात् आकाश, पृथ्वी, व देवेन्द्रमे, जो मुख्य वृष्टिकर्ता था और जिसका अंधेरी रात जाड़ोसे दैनिक व वार्षिक युद्ध था और मुख्यकर उन युद्धोंके कारणसे जो उसने पानीके मेघोंको उड़ा ले जानेवाले देवताओंसे किये और अन्तमे इन्द्र इन्हे गरज व बिजलीसे जीत लेता है. यह इन्द्र यद्यपि पहिले पहिले

आकाश व पृथ्वीका बेटा था परन्तु यह कहा जा सकता था कि उसकी उत्पत्तिकेसमय आकाश व पृथ्वी कांप उठे. फिर ऋग्वेद १।१३१।१ मे लिखा है कि "इन्द्रकी दंडवत् द्योस ( आकाश ) ने की व इन्द्रकी दंडवत् बड़ी पृथ्वीनेभी की. हे इन्द्र ! तूने आकाशकी चोटीतक हिला दी." यह वर्णन जो पानी और गरजके देवताकी निस्वत निहायत सत्य प्रकारपर वर्ते गये हैं. "उसके सन्मुख पृथ्वी हिलने लगती है, आकाश कांपने लगता है, सूर्य चन्द्रमे अंधकार आ जाता है, सितारोंका प्रकाश जाता रहता है." यही वर्णन इन्द्रकी बढ़ाई और पदवीका अनुमान दे सकते हैं. एक कवि कहता है.—"इन्द्रकी पदवी आकाश अर्थात् द्योस और पृथ्वीसे अधिक है." दूसरा कवि कहता है कि "इन्द्र आकाश व पृथ्वीसे बड़ा है. यह दोनों उसके अधिक समान हैं." इसके पश्चात् इन देवताओंकी पदवीका अनुमान उत्पन्न होगा और अन्तमे यह मानना पड़ेगा कि पुत्र अर्थात् इन्द्र वीर अपनी गर्जकी गोलियों और बिजलीके तीरोंसे अपने बाप अर्थात् सीधे आकाशसे, अपनी माता अर्थात् अचल पृथ्वीसे और अन्य देवताओंसे बड़ा है. एक कवि कहता है:—"और देवता झिर्रीदार बुढे मनुष्यकी तरह निकाल दिये गये और हे इन्द्र ! तू राजा हो गया."

अब हमे ज्ञात हुआ कि इन्द्रको सब देवताओंमे बड़ा क्यों जानने लगे ? एक कवि कहता है—"तेरे उस पार कोई नहीं, तुझसे अच्छा कोई नहीं, तेरी तरह कोई नहीं." वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें इसी देवताकी अधिकतर स्तुति हुई है परन्तु इतनी नहीं जैसी जीयस ( यूनानी देव ) की हुई थी. और यहभी नहीं मालूम होता कि और सब देवता उसके आधीन थे. यद्यपि बहुधा स्थानोंमें जब कोई देवोंका हाल एक जगह आया है परन्तु इन्द्र सबसे बड़ा रक्खा गया है. परन्तु इन देवताओंकाभी जब दिन आता है और जब उनसे रक्षाकी आकांक्षा की जाती है तो उनकी बड़ाईमें कोई बात नहीं उठा रक्खी जाती.

### वे मंत्र जिनमे इन्द्रको सबसे बड़ा देव माना है.

मै इस मौकेपर उन मंत्रोंका भाषान्तर देता हूं जो इन्द्र व वरु-

णकी स्तुतिमे कहे गये हैं और जिनसे यह ज्ञात हो जायगा कि इष्टेश्वर धर्म किसे कहते हैं जिसमे प्राति देवताकी स्तुतिके समय वही बड़ाई की जाती हैं जो ईश्वरकी होना चाहिये.

इसमे कविताईकी गंध नहीं है. इन प्राचीन कवियोंको अपने वाक्यको सुशोभित करने या शब्दोंको सुस्वरूप बनानेके निमित्त समय न था. वे सदैव अपने अनुमानोंके प्रगट करनेके निमित्त ठीक ठीक वाक्य ढूंढा करते थे. जहां उनको एक नवीन अच्छा वाक्य मिल जाता था, वह प्रसन्न होते थे और प्रत्येक मंत्रको—यद्यपि वह हमारी दृष्टिमे कुछभी न हो—वे एक बड़ा कर्तव्य जानते थे. उनके प्रत्येक शब्दसे अनुमान प्रगट होते हैं परन्तु जब हम उनको अपनी भाषामे उल्था करते हैं तो हमे इतनी कठोरता पड़ती है कि बहुधा उससे आशा-रहित हो जाना पड़ता है.

ऋग्वेद ४।१७ " हे इन्द्र! तू बड़ा हैं. तेरी पृथ्वी व आकाशने मर्जीसे ताबेदारी की. जब तूने वृत्रको अपनी शक्तिसे मारा. तूने वह धारे खोल दिये जिन्हे वह राक्षस खा गया था. " १.

" तेरे उत्पन्न होनेके पश्चात् आकाश कांपने लगा. पृथ्वी अपनेही पुत्रके रिसके डरसे थरथराने लगी. पुष्ट पुष्ट पर्वत नाचने लगे. जंगलोंमें जलाशय आ गया. नद बहने लगे. " २.

"उसने पर्वतोंको फाड़ा, अपनी शक्तिसे गर्जकी गोलियां फेकता गया और अपनी बहादुरी दिखाता गया. प्रसन्न प्रसन्न उसने वृत्रको अपनी गोलीसे मारा. दर्यायक बारगी फूट निकले, जब उनका बलवान् रक्षक मारा गया. " ३.

" तेरा बाप द्योस तेरीही वजहसे बलवान अनुमान किया जाता था. सब कारीगरोंमे वह सबसे होशियार है जिसने इन्द्रको बनाया. क्यों कि उसने उसको पैदा किया है जो चमकता हुआ है और जिसकी गर्जकी गोली बहुत अच्छी है और जो पृथ्वीकी तरह अपनी जगहसे नहीं हटता. " ४.

" इन्द्र ! जिसकी स्तुति बहुतोंने की और जो पृथ्वीको, लोगोंके राजाको हिला सकता है, सारा संसार उसीके कारणसे प्रसन्न है, वही केवल सत्य है; संसारके लोग ईशकी दयाकी बड़ाई करते है. " ५.

" सब सोम उसीके हैं जो बड़ा है, सबसे उत्तम आनन्द उसीके हिस्सेमे हैं. तू सदैवसे कोषोंका कोषाध्यक्ष है. हे इन्द्र ! तूही सबको भाग देता है. " ६.

" हे इन्द्र! जब तू उत्पन्न हुआ था तब तूने सब लोगोंको भयभीत कर दिया. तूने उस सर्पको अपनी गोलीसे टुकड़े टुकड़े कर डाला जो वेग प्रवाही नदके आर पार पड़ा था. " ७.

" इन्द्रकी स्तुति करो. जो सदा हन्ता, बहादुर, विकराल, महान्, अपार और अति बलवीर मेघध्वनिकी अच्छी गोली लिये हुए है. वह वृत्रको मारता है. लूटका माल ले लेता है. धन देता है. जो संपत्तिमान् व उदार है. " ८.

" वह स्थित सेनाको तितिर वितिर कर देता है और मैदानमें उसीकी बहादुरीकी प्रसिद्धता होती है. वह जीतकर लूटके मालको घर ले जाता है. उसकी मित्रताईमें हम उसके प्यारे हों. " ९.

" वह जीतनेवाला व मारनेवाला प्रसिद्ध है. वह युद्धमे पशुओंको ले जाता है. जब इन्द्र बहुत क्रोधमे होता है तो सब पुष्ट पदार्थ उससे कांपते और डरते हैं. " १०.

" इन्द्रने पशुओंको जीत लिया. उसने सुवर्ण और घोड़ोंको विजय किया. वह बलवान् है जो सारे किलोंको तोड़ता है. उसके पास बहुतसे बलवान् मनुष्य हैं. वह खजानेका बांटनेवाला और जमा करनेवाला है. " ११.

" इन्द्र कैसे मानता है अपनी माताको व बापको जिन्होंने उसे उत्पन्न किया; वह इन्द्र जो अपनी शक्तिको क्षणमें प्रगट करता है, जैसे गर्जते हुए बादलोंमे हवाका भवंर जाता है. " १२.

" जिसके मकान है उसको वह बेमकान कर देता है. वह सर्वशक्तिमान् है. गर्द उड़ाकर बादल कर देता है. वह प्रत्येक पदा-

र्थको तोड़ डालता है. द्योसकी तरह जो कड़क चलाता है. क्या वह गानेवालेको दौलतमे रख देगा.?" १३.

" उसने सूर्यके चक्रको आगे चलाया तब उसने 'एतश' के प्रस्थानको रोक दिया. लौटकर उसने उसे रातके अंधेरे गढ़ेमें और आकाश जन्मभूमिमे फेंक दिया. " १४.

" जिस तरह कुएसे डोल खींच लेते हैं उसी तरह हम कवि लोग जो गौवोंको चाहते हैं, घोड़ोंको चाहते हैं, स्त्रियोंको चाहते हैं, अपनेपास इन्द्रको अपना मित्र होनेकेलिये ले आते हैं. वह ऐसा पुष्ट है जो हमे स्त्रियां देता है और जिसकी सहायता कभी खाली नहीं जाती. " १६.

" तू हमारा रक्षक हो. हमारा मित्र प्रगट हो. तू हमको देख जो प्रसाद चढ़ानेवालोंका धैर्य दिलानेवाला है, मित्र है, पितृ है, सबसे अच्छा पिता है, जो आजादी ( छुटकारा ) देता है और उसको जीवन देता है जो मांगता है. " १७.

" तू उन सबका मित्र व रक्षक हो, जो तेरी मित्रता चाहते हों. जब तेरी बड़ाई की जाय तब हे इन्द्र ! उसको जीवन दे जो तेरी बड़ाई करता है. हम सब मिल तेरी पूजा करते हैं, तुझे बढ़ाते हैं—इन कामोंसे ऐ इन्द्र ! " १८.

" इन्द्रकी प्रशंसा की जाती है क्यों कि वह अकेला होकर बहुतसे शत्रुओंको मार डालता है. न मनुष्य, न देवता उसका सामना कर सकते है, जिसकी रक्षामे यह उसका मित्र कवि है. इन्द्र जो सर्वशक्तिमान्, बलवान्, मनुष्मान्, पालक, वज्रदेही है यह सब हमारे निमित्त ठीक कर दे. तू जो सब वंशोंका राजा है हमे वह पदार्थ दे जो कविके निमित्त बड़ी नामवरी है. " २०.

## मरुद्देव वरुणके स्तोत्र.

दूसरा मंत्र वरुणकी स्तुतिमें है. ऋग्वेद २, २८:—

" यह सृष्टि बुद्धिमान् राजा आदित्यकी है. वह अपनी शक्तिसे

पदार्थोंपर विजयी है. मैं उस देवताकी वड़ाई करता हूं जो भेट चढा-नेसे वहुत प्रसन्न होता है अर्थात् दाता वरुणकी. " १.

" ऐ वरुण ! तेरी आज्ञाकारीमें हमे वढती हो, जो सदैव तेरा ध्यान करते हैं और तेरी वडाई करते हैं. प्रतिदिन जव प्रातःकाल होता है तो जैसे हवनस्थानमें अग्नि वैसे हम तुझे नमस्कार करते हैं. " २.

" ऐ वरुण ! हमारे मार्गदर्शक हमको अपनी रक्षामे रख. तू जिसके वहुतसे वीर हैं और जिसकी वडी भारी प्रशंसा है. तुम आदितिके लडको जो सर्वजित् हो हमको अपना मित्र मानो, ऐ देवताओ!" ३.

" आदित्य राज्यकर्ताने नदियां भेजी हैं. वे वरुणके नियमपर चलती हैं. वह न थकती हैं; न थंवती हैं. पक्षियोंकी तरह वहुत शीघ्र शीघ्र उड़ती हैं. " ४.

" मुझसे मेरे पापवेडियोंकी तरह ले ले, और ऐ वरुण ! हम तेरे नियमका प्रभाव वढायंगे. जव मै अपनी स्तुति वीनता हूं तोडोरा न काट ! ठीक समयके पूर्व कार्यकर्ताका स्वरूप न विगाड़. " ५.

" यह भय मुझसे निकाल ले. ऐ वरुण ! ऐ सत्य राजा ! हमपर दया कर. जैसे वछड़ेसे रस्सी उस तरह मुझसे मेरे पाप हटा दे, क्यों कि तुझसे दूर मै नेत्र मूंदनेके विलंवतकभी मालिक नहीं हूं. " ६.

" ऐ वरुण ! हमे उन शस्त्रास्त्रोंसे न मार जो तेरी इच्छासे दुष्टोंको हानि पहुंचाते हैं. हमको वहां न जाने दे जहां प्रकाश जाता रहा. हमारे शत्रुओंको फैला दे ताकि हम सजीव रहें. " ७.

" ऐ वरुण ! हम तेरी स्तुति वर्तमान भविष्यमें करें क्यों कि तुझ-पर ऐ अजीत वहादर ! सव नियम हैं जैसे किसी पहाड़ीपर जमे हों." ८.

" मेरे पाप सव मुझसे दूर कर और ऐ राजा ! अन्य पापोंका दंड मुझे न प्राप्त कर. अभी वहुतसे प्रातःकाल उदय नहीं हुए. ऐ वरुण ! हमें उनमें सजीव रहने दे. " ९.

" चाहे वह मेरा साथी व मित्र हो जो मेरे सोते या कांपतेसमय मुझपर दुःप्रयोग करे. चाहे वह चोर या भेड़िया हो जो मुझको सतावे, ऐ वरुण ! हमे इनसे वचाइयो. " १०.

यूनानी कवि इससे अधिक जीयसकी वडाई नहीं कर सकता था. मैं सरलतासे अन्य मंत्र चुन सकता हूं जिनमें ऐसीही या इससे अधिक वड़ाई अग्नि, मित्र, सोम, और अन्य देवताओंकी की गई है.

## इष्टेश्वर मत, धर्मका देशभिन्नत्व अथवा स्थलभिन्नत्व स्वरूप.

यह इष्टेश्वर मत एक प्रकारका मतसंबंधी ध्यान है कि जो हमको पहिले पहिले वेदसे मालूम हुआ. इसमे सन्देह नहीं हो सकता है कि अन्य मतभी इसी दर्जे होकर वीत गये. सन् १९५८ ईस्वीमे प्राचीन संस्कृत विद्याका इतिहास जो मैंने छपाया था उसमे मैंने धर्मके इस दर्जेका वर्णन किया था. उसमें मैंने लिखा था कि जब इन देवताओंकी स्तुति की जाती है तो यह नहीं समझा जाता है कि किसी दूसरे देवतासे यह पदवीमे कम है या अधिक. स्तुति करताके सन्मुख सब देव समान हैं. उस समय वह देवताको परमेश्वर मान लेता है और उसे स्वाधीन समझ लेता है और उस आधीनताका कुछ ध्यान नहीं करता जो परमेश्वरसे उसे है. कविकी दृष्टि सन्मुख शेष सारे उस समय अन्तर्ध्यान हो जाते हैं और किसी मुख्य देवताका सजीव स्वरूप उनकी दृष्टिमें फिर जाता है.

" हे देवताओ! तुममे कोई ऐसा नहीं जो छोटा हो, या नवयौवन हो, तुम सब वड़े हो. "[1] यह ध्यान जिसको कवि वैवस्वत मनुने साफ साफ प्रगट कर दिया है, वेदकी कविताके पर्तमे वरावर उपस्थित है. यद्यपि कहीं कहीं देवता छोटे व वडे, जवान व वुढे कहे गये हैं परन्तु यह केवल ईश्वरीय वलोंके निमित्त विस्तृत नाम खोज करनेके अर्थसे कहे गये थे. कहीं कोई देवता अन्य देवोंका दास नहीं माना गया है. यह न समझना चाहिये कि जिसको मैं इष्टेश्वर मत कहता हूं केवल आर्यावर्तहीमें था. नहीं: यही हालत यूनान, इतालिया, और जर्मनीमेंभी थी. यह दशा उस कालके पूर्व थी जब अलग अलग समाजोंसे

---

१ ऋग्वेद–८, ३०, १२.

जातियां बन गई. यह मानो एक अंड वंड आज्ञा थी जो राज्यसंबंधी आज्ञाके पूर्व हुई. यह दशा मतकी मानो एक मुख्य दशा थी जिसके पश्चात् उसे राज्यसंबंधी पद प्राप्त हुआ. जैसे भाषाके स्थित होनेके पूर्व बोल चालसे प्रारंभ होता है उसी तरह मतभी है, जो हरएक घरके यज्ञवेदीके आसपास बैठनेवालोंसे प्रारंभ होता है. जब कई कुटुम्ब मिलकर समाजें अलग हो जाती हैं तो कुल गांवभरके निमित्त एकही यज्ञवेदी निश्चय कर दी जाती है. जब कई समाजोंके मिलनेसे जातें हो गई तो भिन्न भिन्न यज्ञवेदी जमा होनेसे कुल जातिका मंदिर यज्ञशाला हो गया. यह मार्ग लौकिक है और इसी कारणसे सब जगह ऐसाही होता है और इस अनुमानके बचपनकी दशा सिवाय वेदके और कहीं साफ साफ नहीं ज्ञात हो सकती.

## भिन्न भिन्न देवताओंकी श्रेष्ठता.

कई उदाहरणोंसे यह बात औरभी प्रगट हो जायगी. दूसरे मंडलके पहिले मंत्रमें अग्निको सृष्टिका राज्यकर्ता, मानुषाधिप, बुद्धिमान् राजा, मनुष्यका मित्र, पितृ, भ्रातृ, पुत्र, कहा है; वरन अन्य देवोंके नाम और उनकी शक्तियां अग्निको दी गई हैं. इसमे सन्देह नहीं कि ये मंत्रवादकी बनाई हुई पुस्तकोंमे हैं, तौभी हम देख सक्ते हैं कि यद्यपि अग्निका पद यहां बहुत बढ़ा दिया गया है, मगर अन्य देवोंकी ईश्वरताका सदैव ध्यान रक्खा गया है. इन्द्रकी निस्बत जो कुछ कहा गया है वह हम उसके मंत्रमे देख चुके हैं. मंत्रोंमें और पश्चात् ब्राह्मणोंमें उसे अत्यन्त पुष्ट व सबसे शूर, वीर देवता माना है और दशवें कांडकी स्तुतियोंमें एक स्तुतिमें यह आया है—" विश्वस्मात् इन्द्र उत्तरः " (इन्द्र सबसे बड़ा है.) दूसरे देवता " सोम " के बारेमें यह कहा गया है कि वह बड़ा उत्पन्नही हुआ था व यह कि वह सबको जीतता है. उसे सृष्टिका राजा कहा है. उसे मनुष्यकी आयुवृद्धि करनेका अधिकार है, और चंद्र बातोंके ध्यानसे सब देवताओंका जीवन व अमृत उसीके अधिकारमें है. उसे पृथ्वी,

आकाश व मनुष्यों व देवताओंका राजा कहा है. यदि हम उन मंत्रोंको पढ़ें—जो वरुणके बारेमें कहे गये हैं तो हम देख सकते हैं कि कविने इसी देवताको स्वाधीन व सर्वशक्तिमान् मान लिया है. मनुष्यकी भाषा ईश्वरकी शक्तिके ध्यानके प्रगट करनेकी कोशिशमे इससे और क्या अधिक प्राप्ति कर सकती है? जो कवि वरुणके बारेमे कहता है:—"तू आकाश व पृथ्वी सबका अधिष्ठाता है." दूसरे मंत्रमेंभी कहा है:—"तू सबका राजा है; उनकाभी जो देव हैं व उनकाभी जो मनुष्य हैं." २–२७–१०.

वरुण केवल सृष्टिका अध्यक्षही नहीं माना गया है किन्तु वह सृष्टिके प्रबन्धसे जानकार है; और उसे स्तम्भन किये हुए है, क्यों कि उसके नाम धृतव्रतके यही अर्थ हैं. 'धृत' अर्थात् सृष्टिके नियम हिलाए नहीं जा सकते वे वरुणपर रक्खे हुए हैं. मानो चट्टनपर, इसलिये वरुण बारहों महीने जानता है और तेरहवांभी. वह हवाके प्रवाहको जानता है. वायुमे पक्षियों व समुद्रोंमे जहाजोंको जानता है. वह सृष्टिके आश्चर्योंको वखूबी जानता है और वह केवल बीती हुई बातोंकोही नहीं जान लेता वरन भविष्यज्ञाताभी है.

एक मंत्रमे एक कविने प्रथम प्रथम यही कहा है कि मैंने वरुणके कामोंपर ध्यान न दिया और उसके नियमोंके विरुद्ध किया. अपनी क्षमा मांगता है, और मनुष्यके दोषको वहाना ठहराता है. वह मृत्युको पापका वदला समझता है, और प्रार्थना करके देवतोंको प्रसन्न करना चाहता है, जैसे घोड़ा कोमल बातोंसे सीधा हो जाता है. अन्तमे वह कहता है:—

"नेकी करो. यही हम सबको एक शब्द मिलाकर कहना चाहिये." इन शब्दोंसे तुर्त इंजीलके उन शब्दोंका खयाल आता है. वह यह है: "वही केवल जानता है कि हमारा ढांचा काहेका बना है? उसीको याद है कि हम खाक हैं." परन्तु वरुण इस बड़ाईसेभी परमेश्वर न हुआ. वह समीप समीप सदैव मित्रकेसाथ स्तुति किया

जाता है और यह कभी नहीं मालूम होता कि या तो वरुण वड़ा है मित्रसे, या मित्र वड़ा है वरुणसे.

इस प्रकारके मतमे उस मतसे अन्तर है जिसमे ईश्वरको एक मानते हैं और शेष देवोंसे अस्वीकार करते हैं, और उस मत-सेभी विरुद्ध है जिसमे वहुतसे देवताओंको पूजते हैं जिनमे सवका मालिक एक ईश्वर है.

## इष्टेश्वर धर्मकी अधिक अभिवृद्धि.

अव हमें देखना चाहिये कि वेदमतकी यह दशा उन्नति होकर क्या हो गई? प्रथम प्रथम तो यह जान पड़ता है कि इन स्वाधीन देवताओंमें वहुतसे एकही स्थानसे उत्पन्न हुए और कुछ वियोगके पश्चात् उनमें मिल जानेकी चाह उपस्थित हुई. द्यौस आकाश था जहां रोशनी प्रतिस्थान रहती थी. वरुणभी आकाश था जिसके कोटमे सव कुछ आ गया. मित्रभी आकाश था जिसमे प्रातःकालकी रोश-नीसे उजाला होता था. आकाशमे प्रकाशक सूर्य था. सवितृभी सूर्य था जो अपनेसाथ जीवन और प्रकाश लाता था. विष्णुभी सूर्य था जो तीन पगोंमे आकाश पार कर आता था. इन्द्र आकाशपर वर्षा देनेवालेकी सूरतमे प्रगट होता था. गर्जके समय रुद्र व मरुत आकाशपर फिरा करते थे. वात, वायु हवाके झोके थे. अग्नि आग व रोशनी थी जहां कहीं दिखलाई पड़ती थी, जैसे प्रातःकालको अंधेरेसे निकलती हुई या सायंको अंधेरेमें डूवती हुई. यही अन्य छोटे देवताओंका हाल है.

इसलिये सदैव ऐसा होता था कि जो एक देवताका हाल था वही दूसरेका. वहुतोंके एकही नाम हैं. भिन्न देवोंकी एकही कहानियां हैं.

केवल सूर्यहीके देवता नहीं, किन्तु इन्द्र वर्षाका देव, मरुत वायुका देव, द्यौ या आकाशके पुत्र कहाते थे, और चूंकि आकाश पृथ्वीका पति अनुमान किया जाता था तो पृथ्वी सव देवोंकी माता हो सकती थी. जव सूर्य निकलता था तो केवल प्रकाशही नहीं होता था

वरन यह अनुमान किया जाता था कि उससे आकाश, पृथ्वी प्रगट होते हैं. इससे एक पद बढ़के यह खयाल हुआ कि सूर्यहीसे आकाश व पृथ्वी हमें फिर मिलते हैं या हमारेलिये बनाये गये हैं. यही काम इन्द्र, वरुण, अग्निका—जो सूर्यका प्रकाश है—और विष्णुका—जो सृष्टिको अपने तीन पगोंसे नापता है—बताया गया है.

दूसरी तरहपर खयाल किया गया है कि अग्निसे सूर्य फिर आ जाता है और कवि लोग यही काम इन्द्र, वरुण, विष्णुका बतलाते हैं.

यद्यपि अंधेरे व मेघोंके विरुद्ध बड़ी लडाई मुख्यकर इन्द्र लड़ते हैं तोभी द्योस गरज लेकर लड़ता है; अग्नि अंधेरेको भस्म कर देती है; विष्णु, मरुत, पर्जन्य इस दैनिक व वार्षिक युद्धोंके अंगभूत देवता होते हैं.

जो हम देखते हैं वही प्राचीन कविभी देखते थे और बहुधा उन्होंने यहांतक कहा है कि एक देवता वही है जो कि दूसरा है. जैसे अग्नि जो असलमें आगका देवता है उसको इन्द्र, विष्णु, सवितृ, पूषण, रुद्र, अदितिभी कहा है वरन उसको सर्व देवभी कहा है.

अथर्ववेद १३–३–१३ में लिखा है " सायंकाल अग्नि वरुण हो जाती है, प्रातःकाल होते मित्र हो जाता है, सवितृ होकर आकाश होकर जाता है, इन्द्र होकर बीचोंबीच आकाशको गरम कर्ता है. "

सूर्यको इन्द्र व अग्नि कहा, सवितृको मित्र व पूषण कहा है, इन्द्रको वरुण कहा है, द्योस (आकाश) को पर्जन्य अर्थात् वृष्टिका देवता कहा है. इसमे सन्देह नहीं कि इससे ब्राह्मणोंको देवताओंकी संख्या घटानेमें सहायता मिली परन्तु फिरभी एक देवके माननेवाले वह नहीं हुए.

प्राचीन कवियोंकी एक और युक्ति है जो केवल वेदहीमे है कि दोहरे देवता बनाए जाते थे, जैसे (अग्नी–षोमौ, इन्द्र–वायु, इन्द्राग्नी, इन्द्र–पूषणौ, इन्द्र–बृहस्पति, इंद्रा–वरुणौ, इन्द्रा–विष्णू, इन्द्राः–सोमौ,

पर्जन्य—वातौ, मित्रा—वरुणौ, सोमा—पूषणौ, सोम—रुद्रौ ) आदि दो दो वर्ण संयुक्त देवतोंके कर दिये जाते थे जिनके कुछ काम एक होते थे और यौगिक शब्द एक नए देवताका नाम हो जाता था. मंत्र केवल मित्र व वरुणहीके नाम नहीं है वरन मित्रा—वरुणौ एक देवताके नामभी है, वरन वहुधा इनको दो मित्र व दो वरुणभी कहा है. तीसरी युक्ति यह थी कि सब देवोंका एक नाम विश्वेदेवा ( सर्व देव ) रखकर स्तुति, प्रसादी उनके नाम चढ़ाई जाती थी. अन्तको एक और युक्ति थी जो हमें ठीक जान पड़ती है और जिससे एकेश्वरी धर्म अनेकेश्वरी धर्मके विरुद्ध न हो अर्थात् वह युक्ति जो युनानियों वा रूमियोंने की थी जिससे एक देवताको और देवताओंसे वड़ा कर दिया था, इससे एक वड़ी शक्ति होनेकी चाह पूरी हो गई. इससे पुराने इतिहासभी यथातत्व रहे. मायाकी मुख्य मुख्य शक्तियोंकी पूजाभी रही. यदि यह सही है कि जिन जातियोंमें एक राजाकी आज्ञा थी उन्होंने एक देवताको औरोंका राजा वनाया इससे हम यहभी शास्त्रार्थ कर सकते हैं कि चूंकि प्राचीनकाल आर्यावर्तमें कोई देवताओंका राजा नहीं है इसलिये मुल्कमेंभी राज्यसंवन्धी आज्ञा नहीं थी.

## एकेश्वरी धर्मकी प्रवृत्ति.

वैदिक आर्योंने अपने देवताओंमे एक प्रकारका पदान्तर स्थित करनेका श्रम किया था परन्तु उस तरह उपयुक्त न हुए जिस तरह यूनान व अन्य अन्य स्थानोंमे हुआ. हम देख चुके हैं कि चन्द देवता जैसे सवितृ, वरुण आदिकी निस्वत यह खयाल था कि इन्होंने स्वर्ग व सृष्टिको अपने प्रकाशसे प्रगट कर दिया है और उसको नापा है और नाया है, इसी वजहसे इनके नाम **विश्वचक्षुस्** (सब देखनेवाला), **विश्ववेदस** ( सब जाननेवाला ), **विश्वकर्मन्** ( सबका बनानेवाला ), **प्रजापति** ( मनुष्यमात्रका धनी ), ये नाम हुए. कुछ काल पश्चात् ये आन्तिक नाम नये नये देवताओंके नाम हो गये. कई मंत्र जो विश्वकर्मन् और प्रजापतिको आवाहन किये गये हैं ऐसे हैं कि उनमें उस सूर्यसंबंधी

जड़का पता नहीं लगता, जिनसे वह निकले हैं. किसी किसीको पढ़कर हमें इंजीलकी आयतोंकी याद (स्मर्णा) आ जाती है. एक यह अनुमान होता है कि प्रजापति या विश्वकर्मन्‌के पा जानेपर प्राचीन आर्य ऋषियोंमें कविकी एकेश्वर धर्मकी चाह पूर्ण हो जाती और यही प्राचीन आर्योंके धर्मसंबंधी अनुमानका सबसे उच्च पद होता, परन्तु आगे बढ़नेसे जान पड़ेगा कि यह नहीं हुआ.

## विश्वकर्म्मन् ( पदार्थमात्रका करनेवाला. )

मैं तुम्हें ऋग्वेदके कई ऐसे मंत्र सुनाऊंगा जिनमे एक ईश्वरका—जो सृष्टिका आज्ञा करनेवाला व उत्पन्न करता है—अत्यन्त साफ साफ शब्दोंमें प्रकट किया गया है. ये निम्नलिखित मंत्र विश्वकर्म्मन्‌को आवाहन किये गये हैं-( ऋग्वेद १०।८१।२. )

" वह कौन स्थान था वह कौन सहारा था, और वह कहां था जहांसे सर्वदर्शी विश्वकर्मन्‌ने सृष्टि रचतेसमय अपने बलसे स्वर्गलोक दिखा दिया." २.

" वही एक ईश्वर—जिसकी दृष्टि प्रतिस्थानपर है, जिसका मुंह, जिसके पैर, जिसके हाथ, प्रतिस्थानपर हैं, वह जिसने स्वर्ग व पृथ्वीके रचने समय उनको अपने हाथों और भुजाओंसे बनाया." ३.

" वह कौन जंगल था व कौन वृक्ष जिससे उसने स्वर्ग व पृथ्वीको काट लिया. ऐ बुद्धिमानों ! अपने अन्तःकरणमें उस स्थानको ढूंढ निकालो जिसपर खड़े होकर उसने सृष्टिको स्थित किया है." ४.

"आज हमको विश्वकर्म्मन्‌का आवाहन ( जो सब पदार्थोंका कर्ता है, जो हमारे मनको प्रेरणा करता है ) लड़ाईमे रक्षा निमित्त करने दो. हम प्रार्थना करते हैं कि वह जो प्रति मनुष्यकेलिये एक आशिष है, और जो हमारी रक्षानिमित्त उत्तम उत्तम काम करता है, हमारे हविर्भागको स्वीकार करें." ७.

दूसरे मंत्रमे जो इसी विश्वकर्म्मनको आवाहन किया गया है यह

लिखा है.*" वह—जो कि पिता है, जिसने हमें उत्पन्न किया है, आज्ञा करनेवाला, जो नियमोंको जानता है और सब लोकोंको; वह—जिसने देवताओंके नाम रक्खे, सब भौतिक पदार्थ उसीसे प्रार्थना करते हैं, आकाशके उस पार, पृथ्वीके उस पार, व असुरोंके उस पार, वह कौन पूर्व उत्पन्नकर्ता पदार्थ था जो समुद्रोंपर दिखाई देता था और जिसमें सब देवता दिखाई पडते थे! समुद्रोंमें यह पहिला उत्पन्नकर्ता पदार्थ था जिसमें सब देवते इकठा थे. वह एक पदार्थ जिसमें सब उत्पन्न किये हुए पदार्थ उपस्थित थे, अज ( न उत्पन्न होनेवाला ) की गोदमें था."—" तुम कभी उसे नहीं जानोगे जिसने इन सब पदार्थोंको उत्पन्न किया. तुह्मारे और उसके बीचमें कोई ऐसा पदार्थ है जिसे तुम देख नहीं सकते. कोहिरमे घिरे हुए और सस्वर शब्दसे ऋषिलोग जीवनसे प्रसन्न चले जाते हैं."

## प्रजापति ( सारी प्रजाका स्वामी. )

अब हम दूसरे देवता प्रजापतिपर वाद करेंगे, जो बहुतसी बातोंमें विश्वकर्म्मन्की तरह है; परन्तु जिसका वर्णन मुख्यकर ब्राह्मणोंमें बहुतकर अधिकतासे आया है. वेदके बहुधा मंत्रोंमें प्रजापति सवितृ अर्थात् सूर्यका दूसरा नाम समझा गया है. जैसेः—

ऋग्वेद ४–५३–२. " स्वर्गका थांबनेवाला, सृष्टिका प्रजापति, ऋषि अपना प्रकाशवान् कवच पहनता है. सवितृ प्रतिस्थानको अपनी रोशनीसे भरकर सबसे बड़ी प्रसन्नता देता है."

कोई कोई स्थानमें सन्तानके निमित्तभी उसका आवाहन किया गया है और ( ऋग्वेद १०–१२१ ) में एक मंत्र है जिसमें जगतका कर्ता और देवतोंमें सबसे पहिला निश्चय किया गया है.

उसे हिरण्यगर्भ ( सुवर्णका बीज ) कहा है. " प्रारम्भसे हिरण्यगर्भ हुआ. वही इसका मालिक था. उसने आकाश व पृथ्वीको स्थापन किया. वह कौन देवता है जिसे हम बलिदान अर्पण करें?" १.

---

* ऋग्वेद १०।८२.

" वह—जो स्वास देता है, और वह जो बल देता है, जिसकी आज्ञाकी प्रतिष्ठा सब प्रकाशवान् देव करते हैं, जिसका छाया अक्षय है व जिसका छाया मृत्यु है, वह कौन देवता है जिसे बलिदान अर्पण करें ?" २.

" वह—जो अपनी शक्तिसे कुल स्वासाधारियों, स्वमःवस्थान्तर्गत सृष्टिका एक मालिक हुआ, जो सबपर आज्ञा करता है,—मनुष्य हो या पशु—वह कौन देवता है जिसे हम बलि समर्पें ?" ३.

" वह—जिसकी शक्तिसे यह हिमालयसरीखे पर्वत व समुद्र, दूरकी नदियों ( रसा ) केसाथ है. वह—जिसके यह लोक दोनों भुजा हैं वह कौन देवता है जिसे हम बलिदान समर्पण करें ?" ४.

" वह—जिसके कारणसे आकाश प्रकाशित है, पृथ्वी पुष्ट है, वह —जिसके कारणसे आकाश व महदाकाश उत्पन्न हुआ, जिसने आकाशको नापा, वह कौन देव है जिसे हम बलिदान चढ़ावें ?" ५.

" वह—जिसकी ओर स्वर्ग व पृथ्वी जो उसकी इच्छासे पुष्ट स्थित हैं अपने हृदयमें कांपते हुए देखते हैं. वह—जिसपर उदय होता हुआ सूर्य चमकता है वह कौन देवता है जिसे हम बलिदान समर्पण करें ?" ६.

" जब कि बड़े बड़े समुद्र इधर उधर जाने लगे और वीर्यको और अपनेसाथ लेते गये और अग्नि उत्पन्न की, इससे वह उत्पन्न हुआ जो सर्व देवोंका प्राण है. वह कौन देवता है जिसको हम बलिदान चढ़ावें ?" ७.

" वह—जिसने अपनी शक्तिसे उन समुद्रोंपरभी दृष्टि डाली, जिसमें बड़ी शक्ति उपस्थित थी और जिससे आग उत्पन्न हुई थी, वही केवल सर्व देव है. वह कौन देव है जिसे बलिदान चढ़ाएं ?" ८.

" वह—हमें हानि न पहुंचावे, वह—जो सृष्टिका उत्पन्नकर्ता है या वह गुणात्मा जिसने आकाश रचा, जिसने प्रकाशित और बड़े शक्तिवान् समुद्रोंको उत्पन्न किया, वह कौन देव है जिसे हम बलिदान चढ़ावें ?" ९.

"हे प्रजापति! तेरे सिवाय और कौन इन उत्पन्न किये हुए पदार्थोंको घेरे हुए है? हमारी मनोकामना पूर्ण हो जब हम तुझे बलि समर्पण करते हैं. हम कोषाध्यक्ष हो जायें." १०.

जब हम शोचते हैं या ध्यान धरते हैं कि वैदिक ऋषियोंके हृदयमें ऐसे अनुमान थे, तो यह ध्यान उत्पन्न होता है कि उनके प्राचीन मतका ध्यान एकेश्वरी धर्मकी ओर होना चाहिये था, और इस तरहसे हिन्दमें असीम अपने सीमा पदपर पहुंचा दिया जाता जब और सब स्वरूप मतके बदल जाते हैं. मगर यह समाचार नहीं हुआ. जो मंत्र मैंने ऊपर लिखे हैं उनकी संख्या वेदमें बहुत कम है. ब्राह्मणोंमेंभी कोई ठीक ठीक बात नहीं मालूम होती. बनिस्बत मंत्रोंके ब्राह्मणोंमें निस्संदेह प्रजापतिका पद—जो सारे भौतिक पदार्थोंका मालिक व देवासुर दोनोंका पिता है—बड़ा रक्खा गया है. परन्तु तबभी कहीं कहीं पुराण इतिहासकी चमक फूट निकली है, जैसे उसे अग्नि, वायु, आदित्य और चन्द्रमासि और ऊषसका पिता कहा है और उसका अपनी लड़कीपर आशक्त होना अर्थात् ऊषापर आशक्त होना कहा है जिसका सूर्यने पीछा किया है. यह ऐसा प्रश्न है जो आगे चलके प्रजापतिके पुजारियोंके हकमे एक रोकका पत्थर हो गया. ब्राह्मणोंके काण्डोंके पढनेमे बहुधा स्थानोंमें यह अनुमान होता है कि एक मानुषी ईश्वरकी चाह प्रजापतिके मिल जानेसे पूर्ण हो गई और सब देवता इस नवीन प्रकाशके सन्मुख अंतर्ध्यान हो गये. यह लिखा है:—
"प्रजापति प्रारंभमें यह सब था. प्रजापति भरत (आश्रय देनेवाला) है. प्रजापतिने सब सजीव प्राणियोंको उत्पन्न किया. अपनी प्राणदाता वायुसे उसने देवताओंको उत्पन्न किया, और अपने बुरे वायुसे मनुष्योंको तत्पश्चात् किया. उसने मृत्युको उत्पन्न किया कि वह सब सजीव पदार्थोंको खा जाय. प्रजापतिका अर्द्धांग मर्त्य था व अर्द्ध अमर्त्य. मर्त्यांगसे वह सदा मृत्युसे डरा करता था."

---

१ शतपथ ब्राह्मण, २-२-४-१ ॥ ६-८-१-१४.

## निरीश्वर धर्मकी प्रवृत्ति.

यहां हम देखते हैं कि ब्राह्मणोंके कर्ताको यह मालूम था कि प्रजापतिभी बिलकुल मृत्युरहित नहीं है, और दूसरी जगहपर उन्होंने साफ साफ कह दिया है कि अन्तको वह टुकड़े टुकड़े हो गया और सिवाय मनु देवताके सब उसे छोड़ छोड़कर चले गये. और मुख्यकर यह ठीक था. यद्यपि उसके पुजारियोंने उसे और अर्थमे समझा. आर्योंके ध्यान पुष्ट हो गये थे और नित्य प्राति पुष्टिको प्राप्त होते थे. असीमकी तलाश (शोध) मे कुछ अर्सेतक तो उन्होंने पर्वतों, व नदियोंकी प्रार्थना की, उनसे रक्षा मांगी, उन्हीके वैभवकी प्रशंसा की, मगर वह यह कभी नहीं भूले कि यह सब चिन्ह उस पदार्थके हैं जिसे वह ढूंढते थे. पश्चात् इसके प्राचीन आर्योंने आकाश, सूर्य और उषापर ध्यान दिया कि इन्हींमें एक ऐसी सचेतन शक्ति उपस्थित है जो कुछ तो इंद्रियोंसे जानी जाती है और कुछ गुप्त है. जिसकी निस्वत वह कुछ कल्पना कर लिया करते थे वह आगेभी बढ़े. प्रकाशित आकाशको उन्होंने चमकानेवाला जाना, आकाशमंडलको सब पदार्थोंका घेरनेवाला, वादलकी गरज और तूफान (मरुत) की तीव्रतासे उन्हे एक घोर शब्दकर्ता और भयंकर मारनेवालेका खयाल हुवा, और वर्षासे उन्होंने एक इन्द्र अर्थात् वृष्टिदाता उत्पन्न कर लिया. मगर इन अनुमानोंकेसाथ हृदयने पलटा खाया और पहिले वार संदेह हुआ. जब पुराने आर्य पुजारियोंके ध्यान प्रगट वा स्पर्श पदार्थोंपर रहे तवतक मतसंबंधी जोरसे उन वातोंसे दूरभी पहुंचे जिन्हे वह देख सकते थे. लेकिन अवतक यह प्रश्न करनेकी शंका न हुई थी कि देव कहां रहते है? पर्वत व नदियां तो अपने होनेका स्वयं प्रमाण है और उनकी प्रशंसाएं यदि वा जिवसे अधिक वीत गई हैं वह कम की जा सक्ती हैं, परन्तु उनके होनेमें कोई सन्देह नहीं कर सकता. यही आकाश, सूर्य, व उषाकी निस्वत कहा जा सकता है कि इनकीभी जगह थी और यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यह केवल नेत्रोंके उत्पन्न किये हुए पदार्थ हैं. परन्तु मनुष्यका हृदय ऐसा वना है कि वह किसी पदार्थका—जो

मालूम होता है—निश्चय नहीं करता व जबतक उसके साथही यह अनुमान उत्पन्न हो कि यह पदार्थ दर अस्ल कोई पदार्थ है. लेकिन जब हम तीसरे भेदके देवोंका ध्यान करते हैं, जो केवल स्पर्शही नहीं वरन अदृश्य हैं, तो वह बात नहीं रहती. इन्द्र वृष्टिकर्ता, रुद्र गर्जनेवाला, यह बिलकुल मनुष्यके ध्यानसे उत्पन्न हो गये थे. पानी, वर्षा व गरजको तो हम देख सुन सकते थे परन्तु सृष्टिमे कोई ऐसा पदार्थ नही था जिसे हम देवताकी सूरत देखते. गरज व वर्षाको दैवी नहीं मानते थे वरन केवल ऐसे देवतोंका काम समझते थे, जो कभी स्वरूप नहीं दिखा सकते थे-मनुष्य सिवाय उनके कामके और कुछ नहीं देख सकता था. कोई आकाश या सूर्य या ऊषा या किसी दृश्य पदार्थमें इन्द्र और रुद्र उनके मुख्यार्थमे नहीं बता सकता था. यह अन्तर वैसाही है जैसे इतिहासके विरुद्ध कालमे मनुष्यका होना और उसके कामके प्रमाणके निमित्त मनुष्यकी खोपड़ी या चकमाकका पत्थर वर्तावमें लावें. हम ऊपर देख चुके हैं कि इन्द्र यद्यपि सृष्टिमें कोई ऐसी प्रगट चीज न थी जिससे उसके पुजारी उसे देख सकते, लेकिन तबभी और पुराण इतिहासके देवतोंमे सबसे अधिक प्रगट देवता माना जाता है.

जितने इतिहास व जितनी लड़ाइयां इन्द्रकी वर्णन की गई हैं उतनी किसी वैदिक देवताकी नहीं और इससे हम समझ सकते हैं कि प्राचीन ऋषियोंने यह क्यों समझा कि इन्द्र द्योसको सिंहासनसे उतारकर स्वयं उसके स्थानपर बैठ गया है.

लेकिन थोड़ेही विलम्बमे ध्यानोंका मार्ग विरुद्ध वहने लगा. वही देवता जिसकी कुछ दिवस ऐसी प्रकटता हो गई थी कि और सब देवतोंकी प्रतिष्ठा जाती रही थी, और वही देवता जिसका वेदमे सबसे अधिक चर्चा था अब उसके अस्तित्वमें सन्देह करने लगे.

### इन्द्रमे श्रद्धा व इन्द्रादिमें संशय.

यह अचम्भा जान पड़ता है कि वैदिक मंत्रोंमे और देवोंसे अधिक इन्द्रकी श्रद्धा क्यों कराई गई है?

" जब कि प्रज्वलित क्रोध इन्द्र अपनी विद्युत्को फेंकता है तब लोग उसमे श्रद्धा करते हैं. पुनः उसकी महान् और प्रबल रचनाको देखो और इन्द्रकी शक्तिमे विश्वास लाओ."

( ऋग्वेद १–१०३–५ ) " हे इन्द्र ! हमारे आप्त पुरुषोंको न हानि पहुंचा क्यों कि हम तेरी बड़ी शक्तिके माननेवाले हैं.[2] "

" सूर्य, चन्द्र बराबर एक दूसरेके पश्चात् उदय होते हैं कि हम हे इन्द्र ! तुझमे श्रद्धा लायें.[3] "

यह धर्मविषय प्रतिपादननिमित्त वाद करना है और इस प्रारम्भकालमे उनका होना कठिन जान पड़ता है. परन्तु मानुषी ध्यानके इतिहाससे एक और पाठ हमे मिल सकता है वह यह है कि प्रत्येक नवीन पदार्थ प्राचीन हो जाते व प्रत्येक प्राचीन नवीन हो जाते हैं. अब ध्यान करो कि दुनिया व मनुष्यके खयालात किस तरह एकहीसे जान पडते हैं. यही श्रद्धा शब्द–जो पहिले पहिले श्रद्धाके अर्थसे वर्ता गया है–यही शब्द श्रद्धा लातानी क्रेडो Credo ( मैं निश्चय करता हूं ) है जो अबतक अंग्रेजी शब्द क्रीड Creed ( श्रद्धा ) में उपस्थित है, जिसे रोमन लोग क्रेडिडी Credid कहते थे उसे ब्राह्मण लोग श्रद्दधौ कहते थे, और जिसे रोमन् क्रेडिटम् Creditum कहते थे उसे ब्राह्मण श्रद्धितम् कहते थे. इसलिये इस शब्द और इस ध्यानका अस्तित्व उस समयसे पूर्व अवश्य होगा जब आर्य लोग अलग हुए और संस्कृत संस्कृत हुई व लातानी लातानी.

उस प्रारम्भकालमेंभी लोग ऐसी वार्तोका निश्चय कर लेते थे जिसे न तो वह अपनी इन्द्रियोंसे देख सकते थे, न बुद्धिसे समझ सकते थे. वे निश्चयही करते थे और केवल निश्चयही नहीं करते थे

---

१. ऋग्वेद १–५५–५. अध चन श्रत् दधाति त्विषिमते इंद्राय वज्रम् निघनिघ्नते वधम्.

२. ऋग्वेद १–१०४–६. मा अन्तरम् भुजम् आरिरिषः नः श्रद्धितम् ते महते इन्द्रियाय.

३. ऋग्वेद १–१०२–२. अस्मे सूर्या चन्द्रमसे अभिचक्षे श्रद्धे कमिंद्र चरतः वितर्तुरम्.

वरन उन्होंने इस निश्चय निमित्त एक शब्द बनाया जिससे मालूम होता है कि उन्हे ज्ञात था कि श्रद्धा[1] करनेमें उनका अंतःकरण कैसे काम करता था और इस अंतःकरणज कार्यको वे श्रद्धा कहते थे. मै सटीक नहीं लिख सक्ता कि इस संस्कृत श्रद्धा और इसी अर्थकी और भाषाके शब्दोंमें जो संबन्ध है उनसे क्या क्या मालूम होता है? मै केवल यह चाहता हूं कि तुम केवल उस मैदानपर दृष्टि डालो जो आल्पीन और काकेशश पर्वतसे लेकर हिमालय पर्वत पर्यन्त फैला हुआ है. यही देवता इन्द्र जिसकी निस्बत निश्चय दिलाया जाता है, यद्यपि और देव सब कल्पना कर लिये जाते थे, इसी देवमें उसके पुजारियोंको पहिले पहिले सन्देह उत्पन्न हुआ. "इन्द्रकी[2] प्रशंसा करो, यदि तुम लूटका माल चाहते हो. सच्ची प्रशंसा तब है जब वह सत्य प्रकार उपस्थितभी हो. हम तुम कहते हैं कि इन्द्र कोई पदार्थ नहीं, उसे किसने देखा? हम बड़ाई किसकी करें?" इसी मंत्रमे ऋषि पलट जाता है और इन्द्रकी ओरसे यह कहता है: "हे[3] पुजारियों! मैं यहां हूं, मुझे इधर देखो, बलमें मै सब भौतिक पदार्थोंसे बढ़ा हुआ हूं."

परन्तु फिर दूसरे मंत्रमे यह लिखा है "वह भयानक[4] देवता जिसकी निस्बत यह पूछा जाता है कि वह कहां है और जिसके संबंध यह कहा जाता है कि वह हैही नहीं. वह अपने शत्रुओंका धन

---

१ श्रद्धाका मूल अर्थ ठीक नहीं है कि यह संस्कृत हर्द किंवा हृद्से निकला है. मेरी समझमें श्रत् श्रुसे निकला है जिसका अर्थ सुनना है. यदि श्रत् श्रवत्का संक्षेप है तो अवस्की जगह श्रवत् आ सकता है.

२. ऋग्वेद ८-१००-३. प्रसुस्तोमम् भरत वाजयन्तः इन्द्राय सत्यम् यदि सत्यम् अस्ति । न इन्द्रः अस्ति इति नेमः उत्वः आह । कः इम् ददर्श कम् अभिस्तवामः ॥

३. ऋग्वेद ८-१००-४. अयम् अस्मि जरितः पश्य मा इह विश्वा जातानि अभि अस्मि मन्हा.

४. ऋग्वेद २-१२-५. यम् स्म पृच्छन्ति कुह सः इतिघोरम् उत् ईम् आहः न एष अस्ति इति एनम् । सः अर्यः पुष्टीः विजः इव आ मिनाति । श्रद् अस्मै धत्त सजनासः इन्द्रः

( जैसे जुआं ( द्यूत ) का दांव ) उठा ले जाता है. हे मनुष्यों! उसमे श्रद्धा करो क्यों कि वह मुख्य इन्द्र है."

जब हम देखते हैं कि इन्द्रके सन्मुख द्योसको लोग भूल गये, और फिर इन्द्रकोभी न माना और प्रजापति टुकड़े टुकड़े हो गया. और फिर एक दूसरा ऋषि यह कहने लगा कि सब देवता नाममात्र हैं! तो हम अनुमान कर सकते हैं कि वह धार्मिक अनुमानका सोता जो नदी व पहाड़में श्रद्धासे निकला था और जिसमे बादको आकाश व सूर्य, और फिर अदृश्य देवताओं—जैसे इन्द्र आदि—की पूजा होने लगी, सीमातक पहुंच गया. हम आर्यावर्तमें उसी हलचलकी आशा कर सकते थे जो आयसलेण्डमें यद्धाके कवि भूतज्ञता किया करते थे अर्थात् देवतोंकी गोधुली वेला सृष्टिकी तबाहीके पहिले होगी. यह जान पड़ता है कि हम उस स्थलपर आ पहुंचे जब कि इष्टेश्वरमत एक ओर तो निष्फल अनेकेश्वर होनेकी और दूसरी ओर अमिलित एकेश्वरमत होनेकी आकांक्षा करता हुआ अन्तमें अवश्यही निरीश्वरता अर्थात् देवताओंकी अश्रद्धामें समागम करता है.

## भले बुरे नास्तिकोंमें अन्तर.

लेकिन हिन्दू मतका आन्तिक शब्द निरीश्वर नहीं था. यद्यपि बौद्ध मतकी कोई सूरतोंसे थोड़े दिनतक यही जाना गया था. आर्य धर्मके निमित्त निरीश्वरका शब्द अच्छा नहीं है. उनकेलिये निरीश्वरपनको अदेव कहें तो ठीक होगा क्यों कि वह केवल सब देवोंको नहीं मानते थे. ऐसी बातोंका सत्य दिलसे न मानना जिन्हे हम प्राचीन समयसे मान रहे हैं मतको बर्बाद नहीं कर सकता वरन और दृढ करता है. प्राचीन आर्योंको प्रारम्भसेही खूब ज्ञात था कि असीम ईश्वर या जिस नामसे हम चाहें कहें कुछ है और उन्होंने उसके समझनेकी कोशिशमें नामपर नाम रखे. वह समझे कि पर्वत व नदियां, ऊषा, सूर्य, आकाश व स्वर्ग और स्वर्गवासी पितामें असीम है.

परन्तु प्रत्येक नामके अन्तमे नहीका शब्द आया जिसकी उन्हे

तलाश थी. वह पर्वतकी तरह, नदियोंकी तरह, ऊषाकी तरह, आकाशकी तरह, वापकी तरह, था; परन्तु वह न पर्वत, न नद्या, न ऊषा, न वाप था. उसमें इन सव वातोंके सिवाय और वहुतसे पदार्थ हैं और वह इन सब पदार्थोंके उस पार है. असुर व देवके नामसेभी उन्हें परितोष नहीं होता था. वह कहते थे कि देव या असुर हो या न हो, हमे ऐसे शब्दकी आवश्यकता हैं जो इन सवसे वड़ा है. उन्होंने देवोंका आराधन छोड़ दिया क्यों कि उन्हे ऐसे पदार्थकी चाह थी जो इन सब देवोंसे वड़ा हो. उनके अन्तःकरणोंमें एक नया अनुमान गूंज रहा था और कई निराशाओंके पश्चात् एक नया निश्चय उत्पन्न हुआ. इसी तरह होता है और इसी तरह होता रहेगा. एक नास्तिकपन तो ऐसा होता है कि उसे धर्मके अर्थ मृत्यु कह सकते हैं और एक नास्तिकपन गोया सत्य श्रद्धाका जीव है. यह वह शक्ति है जिससे हम अच्छी नियतसे उन वार्ताओंको छोड़ देते हैं. जो हमें सत्य नहीं ज्ञात होती और अपूर्ण पदार्थके स्थानपर पूर्ण पदार्थ लाकर रक्खे. चाहे संसार उसको वुराही समझता हो. यही सबसे वड़ी यज्ञ है, यही परोपकार है, यही सत्यमे सवसे पक्का निश्चय है, यही सबसे सच्ची धर्मपरायणता व श्रद्धा है. यदि ऐसे नास्तिक न होते तो धर्म कबका पुराना पाखंड हो गया होता. इस प्रकारकी निरीश्वर विना कोई नया मत व नया शोध न होता. विना इस निरीश्वरता हम लोगोंमेसे किसीको नई प्रसन्नता सुलभ न होती. अव हमें मतके इतिहासपर ध्यान करना चाहिये. वहुतसे कालोंमें, वहुतसे मुल्कोंमें ऐसे लोग नास्तिकके नामसे बदनाम हुए हैं जिन्होंने यह नहीं कहा कि दृश्य व सीमके उस पार असीम नहीं, या यह कि संसार वगैर ईश्वरको माने या वगैर किसी अर्थके या विना किसी कारण बताए सावित की जा सकता है, वरन इस कारणसे वे नास्तिक कहलाये कि उन्होंने अपने समयके मतसंबंधी अनुमानोंको वहुत निर्वल समझकर ईश्वरको अच्छी तरहपर जानना चाहा.

ब्राह्मण बुद्धको नास्तिक समझते थे. वौद्धके दर्शनशास्त्रोंमें कोई

कोई तो निस्संदेह नास्तिक थे, परन्तु स्वयं गौतम शाक्यमुनि बौद्धको इस वजहसे कि उसने देवताओंको नहीं माना, निरीश्वर कह देना ठीक नहीं. यथींनियन हाकिमोंके सामने शुकराम नास्तिक था, लेकिन उसने यूनानके देवतोंसेभी इन्कार नहीं किया था, वह केवल यह चाहता था कि इन देवताओंसे बढ़े हुए और सत्य ईश्वरको माने. यहूदियोंके सामने जो कोई अपने आपको ईश्वरका बेटा कहता था दाससे, शूद्र कहते थे. यूनानी और रोमन लोग ईसाइयोंको नास्तिक कहते थे. ईसाई स्वयं एक दूसरी मंडलीको नास्तिक कहते हैं.

अथनासियसके सम्मुख सब एरियन्स शैतान हैं, ईसाको न माननेवाले दीवाने हैं, यहूदी अनेकेश्वरमतके नास्तिक हैं, और आर्य सभी अथनासियस्के अनुगामियोंको उसी तरह गाली देता है, परन्तु अथनासियस व आर्यस् दोनों ईश्वरके जाननेकी कोशिश करते थे. आर्यस् यह डरते थे कि जेण्टाइल्सकी वजहसे हम ईश्वरको नहीं जान सकते थे, और अथनासियस यह कहते थे कि हम यहूदीयोंकी वजहसे कुछ नहीं कह सकते. मजहबी झगड़ोंमें अबतक इसी तरहके दुष्ट शब्द वर्ते जाते हैं. सर्विटसने १६ वीं सदीमें काल्विनको नास्तिक कहा, और कैलाविनने उसी सरवीटसको केवल इस कारणसे कि इन दोनोंके अनुमान ईश्वरके बारेमें विरुद्ध थे सन १५५३ ईसवीमें फांसीके योग्य कहा.

दूसरी सदीमें एक समाचार लिखते हैं कि व्हाँनीनीकी जिव्हा कटवा डालने और जिंदा फूंकनेकी आज्ञा हुई क्यों कि न्यायाधीशने अपने आज्ञापत्रमे यह कहा कि यह नास्तिक है चूंकि वर्तमानके सम्पादकोंनेभी व्हानीनीको बुरा कहा है इसलिये यह मुनासिब हुआ कि देखें वानिनीकी राय ईश्वरके बारेमे क्या है? उसने लिखा है:—

" तुम मुझसे पूंछते हो कि ईश्वर क्या है? यदि मुझको यही ज्ञात होता तो मैंही ईश्वर न हो जाता, क्यों कि यह परमेश्वरहीको ज्ञात है कि परमेश्वर क्या है. यद्यपि हम उसको रचनासे उसे देख सके हैं जिस तरह बादलोंमें सूर्यको. लेकिन इस मार्गसे हमे उसकी विद्या

इससे अधिक प्राप्त नहीं हो सकती. परन्तु यह कहना चाहिये कि वह सबसे अच्छा है, आदि मूल हुआ, पूर्ण है, न्यायकारी है, दयावान् है, सन्तुष्ट, स्थिर है, उत्पन्नकर्ता है, स्थितिकरता, शक्तिवान्, पिता, राजा, अधिराजा, पारितोषकदाता, आज्ञा करनेवाला, प्रारम्भ, अन्त, मध्य, वही है; अनादि, अनन्त, कर्ता, प्राणदाता, लाभदायक वही है; वही सर्वव्यापक है. ''

यही मनुष्य—जिसने यह लिखा है—आगमे जला दिया गया. १७ वें शताब्दिमे निरीश्वरताका अर्थ भाववाचक सांकेतिक लगाते थे, यहांतक कि १६९६ ई० में इडनबरोकी पार्लीमेण्टने इन नास्तिकोंकेलिये एक नियम बनाया और ऐसे लोग जैसे इस्पिनोजा और टिलॉट्सन् यद्यपि भस्म तो नहीं किये गये परन्तु नास्तिकोंके नामसे बदनाम किये गये.

१८ वीं सदीमेंभी ऐसे ऐसे धब्बे कहीं कहीं दृष्टि पड़ते हैं. बहुतसे लोग जो ईश्वरको तो स्वीकार करते थे परन्तु लोगोंके धर्मसबन्धी ध्यानोंको उन्नति दिया चाहते थे नास्तिक कहे गये. परन्तु हम लोग अब समझते हैं कि नास्तिकके मुख्यकर अब क्या अर्थ हैं और इसलिये वे समझे बुझे वर्ताव नहीं कर सकते, लेकिन ऐसे लोगोंको जिन्हे अपने अन्तःकरणके सत्यका या और लोगोंके सत्य वर्तावका ध्यान है यह जानना अवश्य चाहिये कि वे लोग कौन थे जिन्हे अगले कालमे अज्ञान मनुष्योंने नास्तिक व शूद्र मान लिया. हमारे जीवनकालमे ऐसे मौके बहुत आन पडते हैं. जब ईश्वरके खोजनेवाले यह समझने लगते हैं कि ईश्वरने हमे छोड़ दिया और तब उन्हे यह प्रश्न करनेका बल नहीं रहता कि हम अब ईश्वरको मानते हैं या नहीं? मगर उन्हे निराश नहीं होना चाहिये और हम लोगोंको ऐसे लोगोंकी बुराई न करना चाहिये. उनका निराश होना उनकी हठधर्मीसे बढ़कर है जो केवल मान लिया करते हैं और तर्कको वर्तावमे नहीं रखते. मैं अब अन्तमे एक बड़े सन्तका सिद्धान्त लिखूंगा जो अभी स्वर्गवासी हुआ है और जिसकी

सत्यताकी पैरवी और दिलकी सफाईमे किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता. वह कहता है कि " ईश्वर एक बड़ा शब्द है. जो उसे जानता व समझता है वह उन लोगोंसे कभी नाराज नहीं होता. जो यह कहते हैं कि हम यह नहीं कह सकते कि वह ईश्वरको मानतें हैं."

मैं जानता हूं कि जो कुच्छ मैंने कहा है उसके अर्थ लोगोंने अशुद्ध लगा लिये होंगे. मैं जानता हूं कि लोग मुझको बदनाम करेंगे कि इसने नास्तिकताकी ओर ली और वह नास्तिकताको मतसंबंधी अनुमानकी उन्नतिको ऊंचा पद समझता है. यह समझने दो, यदि यहां कई ऐसे लोग उपस्थित हैं जो सत्य नास्तिकताका अर्थ समझते हैं और जो बुरी नास्तिकता और इस सत्य नास्तिकतामें अन्तर जानते हैं तो मैं प्रसन्न हूं क्यों कि मुझे निश्चय है कि इस अन्तरका जानना बड़ी बड़ी कठिनताओंमें मदद देता है. जब वसन्तकी लहलहाती हुई व प्रकाशित पत्तियां प्राचीन हो शुष्क गिर पड़ती हैं और चारों ओर शीत व हिमसे भीतर वाहर कुरूपता छाय जाती है, ऐसे समयमे इस अन्तरज्ञको ज्ञात रहता है कि प्रत्येक सत्य हृदयके निमित्त एक नूतन वसन्त उपस्थित है. इससे ज्ञात होता है कि सत्य श्रद्धाके निमित्त सत्य हृदयसे सन्देह करना शर्त है, और वही आप्त पुरुष कुछ हासिल कर सकता है जिसने कुछ खोयाभी है. प्राचीन आर्योंने इस बड़े धार्मिक प्रश्नका किस तरह सामना किया और किस तरह उन्होंने नास्तिकताके पर्दोंको एक एक करके फेंक दिया इसका समाचार द्वितीय व्याख्यानमे लिखूंगा.

कोई स्वरूप नहीं, लेकिन प्राचीन भाषाओंमें अथवा प्राचीन कल्पनाओंमें इसका यह अर्थ न लिया जाता था, और इस समयकी कोई कोई भाषाओंमें यही हाल है. वेदऋषि ऐसे पदार्थोंको प्रगट किया चाहते थे जो न स्त्रीलिंग है, न पुलिंग. जो मानुषी घिनसे रहित है; जिसका कोई लिंग नहीं; यद्यपि वह सजीव है व सस्वरूपभी है. वहुतसे ऐसे वाक्य हैं जहां वेदऋषियोंने एक ईश्वरके कंई नाम लेतेसमय उसे पुलिंगमे रक्खा है. एक मंत्रमें—जिसमे सूर्य एक पक्षीकी तरह माना गया है—"वुद्धिमान् ऋषी पक्षीको जो एक है अपने शब्दोंसे कई तरहपर प्रगट करते है." हम लोगोंके सामने यह विलकुल पुराण इतिहास है. परमेश्वरका हाल नीचेके मंत्रोंमे लिखा है.[२]

"उसे किसने देखा है जव वह पहिले पहिले उत्पन्न हुआ था और जिसके स्वयं अस्थि नहीं था लेकिन ऐसी मूरतोंको वनाया जिनमे हड्डियां उपस्थित हैं."

"सृष्टिका प्राण, रक्त, आत्मा कहां था? कौन उससे यह पूछने गया जो उसे जानता था."

इन दो मंत्रोंका एक एक शब्द ध्यान व अर्थसे भरा हुआ है. "जिसमे हड्डियां नहीं है" इस फिकरेसे उससे मतलव है कि (जिसका कोई स्वरूप नहीं;) और "जिसके हड्डियां है" यह वाक्य यह अर्थ देता है (वह पदार्थ जिसका स्वरूप है) सृष्टिके प्राण व रक्तसे वह शक्ति अर्थ है जो अदृश्य व अज्ञात है और जो संसारको संभाले है. संसारके तत्वके निमित्त "प्राण"से कोई अच्छा शब्द नहीं मिल सकता.

### आत्मन् (विषयी.)

यह शब्द आत्मन् अर्थात् "श्वास" ऐसा शब्द है. जिसके मतकी पूर्व हालतपर वहुत वड़ा असर पड़ा. पहिले तो इसके अर्थ श्वासके

---

१ ऋग्वेद १०–११४–५. सुपर्णम् विप्राः कवयो वचोभिः एकं संतं वहुधा कल्पयन्ति.

२ ऋग्वेद १–१६४–४. कः ददर्श प्रथमं ज्यायमानम्, अस्थन्वंतं यत् अनस्था विभर्ति ॥ भूम्या असुः असृक् आत्मा क्वस्वित् कः विद्वांसम् उपजात् प्रष्टुम् एतत् ॥

होते थे, पश्चात् जीवनके हुए और वहुधा शरीरके. लेकिन वहुधा अंश सत्के अर्थमे वर्ताव हुआ है. यह मुख्यकर अहंपददर्शक सर्वनाममें लाया गया है. परन्तु इसी अर्थमें मुख्य यह वर्ताव न होता रहा, वरन एक नया मार्ग चला, मानो तत्वज्ञानके एक वड़े अनुमानका नाम हिन्दुस्तानमें व और स्थानोंमें हुआ; उससे केवल 'अहं' ( मैं ) हीका अर्थ नहीं था क्यों कि अहंमें इस जीवनकी वहुतसी जानेवाली वार्ताएं मिली हुई है. उससे वह वातें प्रगट होती थीं जो कि अहंसे वाहर थी और जिनसे थोड़े दिनों अहं स्थित रहा. मगर किंचित् कालके पश्चात् वह मानुषी अहंकी कैदकी जंजीरोंसे अलग हो गया. आत्मन्का शब्द उन शब्दोंसे विरुद्ध है जो और भाषाओंमें पहिले श्वासकेलिये और फिर जिन्दगी व शरीरके अर्थ वर्ताव होने लगे. उसके श्वासके अर्थ वहुत शीघ्र जाते रहे और पीछेसे जव यह शारीरिक अर्थ उससे जाते रहे तव उससे एक ऐसा निविक्त ज्ञान हुआ जो संस्कृत असु या प्राणसे अधिक विषयविविक्त ज्ञान था. उपनिषद्में प्राण अर्थात् श्वास या शरीरका मानना कि उसीसे अस्तित्व है, वहुत नीचेका पद है, और आत्मन्का पद उससे वढ़ा हुआ है. जिस तरह हमारे यहां है उसी तरह हिन्दुओंमेंभी आत्मन् प्राणसे वढ़ गया और उसको अपनेमे मिला लिया. यही वह मार्ग है जिससे आर्यावर्तके प्राचीन तत्वज्ञानियोंने उस अनन्तको जाना जिससे वे स्थित हैं या जो हमारा अंतरिक अहं था.

## आत्मन् ( विषय. )

अव हमको यह देखना चाहिये कि उन्होंने वाह्य सृष्टिमें अनन्तके खोज करनेमें क्या परिश्रम किया ? थोडे दिनों कवि लोग एक ईश्वरका ध्यान करते थे, परन्तु वह ईश्वर पुल्लिंग, कर्ता, व थोडावहुत पौराणिक था. जो दर हकीकत दैवी "अहं" था न कि दैवी "आत्मा." यक वारगी हमको नए नए वाक्य मिलते हैं, मानों हम एक नई सृष्टिमे चलते हैं. जितनी वातें नाटकप्रसिद्ध व पुराणप्रसिद्ध थीं और जितने

कोई स्वरूप नहीं, लेकिन प्राचीन भाषाओंमें अथवा प्राचीन कल्पनाओंमें इसका यह अर्थ न लिया जाता था, और इस समयकी कोई कोई भाषाओंमें यही हाल है. वेदऋषि ऐसे पदार्थोंको प्रगट किया चाहते थे जो न स्त्रीलिंग है, न पुलिंग. जो मानुषी घिनसे रहित है; जिसका कोई लिंग नहीं; यद्यपि वह सजीव है व सस्वरूपभी है. वहुतसे ऐसे वाक्य हैं जहां वेदऋषियोंने एक ईश्वरके कई नाम लेतेसमय उसे पुल्लिंगमे रक्खा है. एक मंत्रमें—जिसमे सूर्य एक पक्षीकी तरह माना गया है—"वुद्धिमान् ऋषी पक्षीको जो एक है अपने शब्दोंसे कई तरहपर प्रगट करते है." हम लोगोंके सामने यह विलकुल पुराण इतिहास है. परमेश्वरका हाल नीचेके मंत्रोंमे लिखा है.[2]

"उसे किसने देखा है जव वह पहिले पहिले उत्पन्न हुआ था और जिसके स्वयं अस्थि नहीं था लेकिन ऐसी मूरतोंको वनाया जिनमे हड्डियां उपस्थित हैं."

"सृष्टिका प्राण, रक्त, आत्मा कहां था? कौन उससे यह पूछने गया जो उसे जानता था."

इन दो मंत्रोंका एक एक शब्द ध्यान व अर्थसे भरा हुआ है. "जिसमे हड्डियां नहीं है" इस फिकरेसे उससे मतलव है कि (जिसका कोई स्वरूप नहीं;) और "जिसके हाड्डियां है" यह वाक्य यह अर्थ देता है (वह पदार्थ जिसका स्वरूप है) सृष्टिके प्राण व रक्तसे वह शक्ति अर्थ है जो अदृश्य व अज्ञात है और जो संसारको संभाले है. संसारके तत्वके निमित्त "प्राण"से कोई अच्छा शब्द नहीं मिल सकता.

आत्मन् (विषयी.)

यह शब्द आत्मन् अर्थात् "श्वास" ऐसा शब्द है. जिसके मतकी पूर्व हालतपर वहुत वड़ा असर पड़ा. पहिले तो इसके अर्थ श्वासके

१ ऋग्वेद १०–११४–५. सुपर्णम् विप्राः कवयो वचोभिः एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति.

२ ऋग्वेद १–१६४–४. कः ददर्श प्रथमं ज्यायमानम्, अस्थन्वंतं यत् अनस्था विभर्ति ॥ भूम्या असुः असृक् आत्मा क्वस्वित् कः विद्वांसम् उपजात् प्रष्टुम् एतत् ॥

होते थे, पश्चात् जीवनके हुए और वहुधा शरीरके. लेकिन वहुधा अंश सत्के अर्थमे वर्ताव हुआ है. यह मुख्यकर अहंपददर्शक सर्वनाममें लाया गया है. परन्तु इसी अर्थमें मुख्य यह वर्ताव न होता रहा, वरन एक नया मार्ग चला, मानो तत्वज्ञानके एक वड़े अनुमानका नाम हिन्दुस्तानमें व और स्थानोंमें हुआ; उससे केवल 'अहं' (मैं) हीका अर्थ नहीं था क्यों कि अहंमें इस जीवनकी वहुतसी जानेवाली वार्ताएं मिली हुई है. उससे वह वातें प्रगट होती थीं जो कि अहंसे वाहर थी और जिनसे थोड़े दिनों अहं स्थित रहा. मगर किंचित् कालके पश्चात् वह मानुषी अहंकी कैदकी जंजीरोंसे अलग हो गया. आत्मन्‌का शब्द उन शब्दोंसे विरुद्ध है जो और भाषाओंमें पहिले श्वासकेलिये और फिर जिन्दगी व शरीरके अर्थ वर्ताव होने लगे. उसके श्वासाके अर्थ वहुत शीघ्र जाते रहे और पीछेसे जव यह शारीरिक अर्थ उससे जाते रहे तव उससे एक ऐसा निविक्त ज्ञान हुआ जो संस्कृत असु या प्राणसे अधिक विषयविविक्त ज्ञान था. उपनिषद्में प्राण अर्थात् श्वासा या शरीरका मानना कि उसीसे अस्तित्व है, वहुत नीचेका पद है, और आत्मन्‌का पद उससे वढ़ा हुआ है. जिस तरह हमारे यहां है उसी तरह हिन्दुओंमेंभी आत्मन् प्राणसे वढ़ गया और उसको अपनेमे मिला लिया. यही वह मार्ग है जिससे आर्यावर्तके प्राचीन तत्वज्ञानियोंने उस अनन्तको जाना जिससे वे स्थित हैं या जो हमारा अंतरिक अहं था.

## आत्मन् (विषय.)

अव हमको यह देखना चाहिये कि उन्होने वाह्य सृष्टिमें अनन्तके खोज करनेमें क्या परिश्रम किया? थोडे दिनों कवि लोग एक ईश्वरका ध्यान करते थे, परन्तु वह ईश्वर पुलिंग, कर्ता, व थोडावहुत पौराणिक था. जो दर हकीकत दैवी "अहं" था न कि दैवी "आत्मा." यकवारगी हमको नए नए वाक्य मिलते हैं, मानों हम एक नई सृष्टिमे चलते हैं. जितनी वातें नाटकप्रसिद्ध व पुराणप्रसिद्ध थीं और जितने

स्वरूप और नाम थे जाते रहे, और केवल अद्वितीय रह गया, या वह जो नपुंसकालिंग था यह आन्तिक परिश्रम अनन्तके पानेकेलिये था. वैदिक कवि आकाश या ऊषाकी वड़ाई नहीं करते हैं, वह इन्द्रकी शक्ति व विश्वकर्मन् व प्रजापतिकी बुद्धिमानीका वर्णन नहीं करते, वह मानों एकको हरे और हमारी वाणी मेढके हुए चलाते फिरते हैं.[1] द्वितीय कवि कहता है "मेरे कान जाते रहे, आंखें जाती रहीं, वह प्रकाशभी—जो मेरे अन्तःकरणमे रहता था—गया मेरा, दूरदर्शी मन मुझे दूरकी कांक्षासे रहित करता है, मै कैसे वोलूं और विचार किससे करूं?" ( ऋग्वेद ६–९–६. )

" वि मे कर्णाः पतयतः वि चक्षुः। वि इदं ज्योतिः हृदये आहितं यत् वि मे मनः चरति दुराधीः। किं स्वित् वक्ष्यामि किमु ऊ मनिष्ये" या फिर कहता है कि "मैं स्वयं अज्ञात हूं. मैं अन्य दृष्टिकर्ताओंसे पूछता हूं. मैं स्वयं मूर्ख हूं कि कुछ शिक्षा लेऊं. जिसने छहों संसार रचे हैं वह एक है जो अजके स्वरूपमे है"[2] यह वह महत् है जिससे ज्ञात होता है. अव आकाश प्रकाशवान् है और एक नया वसन्त आ गया.

अन्तको इन्होंने ईश्वरको एक मान लिया, और यह कि वह स्वाधीन है, उसका होना कुल सृष्टिसे पहिले था, वह देवतोंसे इतने पूर्व अस्तित्व था कि देवते स्वयं नहीं जानते कि सृष्टिकी उत्पन्नता कहांसे हुई?

यह लिखा हैं "निरंजन ईश्वर उस समय था जव न तो मृत्य थी, न अमृत्यु, और जव दिन रातमें कुछ अन्तर न था. यह निःस्वास स्वयं स्वास लेता था. उस समयसे उसके सिवाय और कोई पदार्थ न हुआ. उस काल सव सृष्टिमे अंधकार था, प्रति पदार्थ अंधेरेमे गुप्त

---

१ ऋग्वेद १०–८२–७. नीहारेण प्रावृताः जल्प्याच असुतृपःउक्थशासः चरन्ति.

२ ऋग्वेद १–१६४–६. अचिकित्वान् चिकितुषः चिद् अत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्॥ वि यः तस्तम्भ षट् इमा रजांसि अजस्य रूपे किम् अपि स्विद् एकम्.

था, मानों एक बड़ा समुद्र था, जहां प्रकाश न था, तब वह वीर्य जिसपर छिलका चढ़ा हुआ था अर्थात् निरंजन ईश्वर गर्मीकी शक्तिसे निकल आया."

इसी प्रकार कविने इन पदार्थोंके होनेका अनुमान किया कि एकसे कई किस तरह हो गये? अज्ञात कैसे ज्ञात हुआ? अनामी कैसे नामी हुआ? असीम कैसे ससीम हो गया? और अन्तमें यह छन्दें लिखा है:—

"इस भेदको कौन जानता है, यहां उसे किसने विज्ञापित किया, कहांसे यह नानाप्रकार वस्तु उत्पन्न हो गई, देवताभी अन्तहीको उत्पन्न हुए, कौन जान सकता है कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ, या तो उसकी इच्छाने ऐसा उत्पन्न कर दिया या वह चुप हुआ. वह महर्षि जो स्वर्गलोकमे है वही जानता है और कदाचित् वहभी जानता न हो." ( ऋग्वेद १०, १२९, २ ).

ऐसे अनुमान जो ऋग्वेदके मंत्रोंमे पहिले पहिले छोटे छोटे झिलमिलाते नक्षत्रोंकी तरह दिखाई पडते हैं, धीरे धीरे बढते जाते हैं, और उनमे रोशनी अधिक आती जाती है, यहांतक कि एक पूर्ण गोलाकार आकाश गंगाकी बन जाती है, जो उपनिषदमें हैं, जो वैदिक कालका आन्तिक सिद्धान्त है, जिसका असर उस कालके बादभी पहुंचा है.

## उपनिषद्का तत्त्वज्ञान.

तुझे याद होगा कि मंत्रोंके समयके उपरान्त ब्राह्मण लिखे गये जो गद्यकी पुस्तकें हैं और जिनमे प्राचीन यज्ञका समाचार लिखा है. ब्राह्मणोंके अन्तमे आरण्यक ( जंगलकी पुस्तक ) हैं जो उन लोगोंकेलिये लिखी गई थी जो अपने घरबारको छोडकर जंगलोंमें रहा करते थे. और आरण्यकोंके अन्तमें या उन्हींमें मिले हुए सबसे प्राचीन उपनिषद् हैं जिसके शाब्दिक अर्थ "विद्यार्थियोंका अपने गुरूके चारों ओर जमा होना" है, और इन उपनिषदोंमे वैदिक समयका सारा मतसंबंधी तत्वज्ञान जमा हैं. इन उपनिषदोंमे त्रि-

चारोंके कैसे रत्न इकट्ठा हैं? पहिले मेरी यह इच्छा थी कि उपनिषदों- को इन सब व्याख्यानोंमें समझाता. मुझे उनमे बहुतसी बातें व्याख्यानके निमित्त मिल सकती थीं, लेकिन अब मुझे समय कम है इसलिये मैं उनका थोडासा हाल सुनाऊंगा.

इन उपनिषदोंमे कोई तत्वज्ञानका सिलसिला नही है. उसमे सत्यके बारेमे अनुमान भरे हुए हैं, और बहुधा ये अनुमान एक दूसरेके विरुद्ध आ पडे हैं लेकिन सब एकही ओर झुके हुए हैं. प्राचीन उपनिषदोंका मूल नियम आत्मविद्या है, लेकिन इस आत्म- विद्याका अर्थ यूनानके डेलफीके देवताके अर्थसे बहुत गहरे हैं. उपनिषदोंकी आत्मविद्यासे यह तात्पर्य है कि तुम उस आत्माको जानो जो तुह्मारी ईगा ( अहं ) के नीचे फैली हुई है; और उसे खोज करो, और उस महात्मा और अनन्त और एक आत्मामे देखो जो सारी दुनियामें फैली हुई है. यही असीम, अदृश्य, अज्ञात, ईश्वरकी खोजका आन्तिक फल था. यह खोज वेदके सीधे सीधे मंत्रोंसे प्रारम्भ हुआ और उपनिषदोंमें समाप्त हुआ जिनको वेदान्त कहा है, अर्थात् वेदकी समाप्ति या मुख्य आशय. मै इन पुस्तकों- मेंसे तुमको कई आशय ऐसे सुनाऊंगा कि वैसे आशय आर्या- वर्तमे न मिलेंगे, वरन संसारभरमे ऐसे आशय किसी भाषामें देख- नेमे नहीं आये.

## प्रजापति और इन्द्र.

पहिला आशय छान्दोग्य उपनिषदसे लिखा जायगा. यह एक इतिहास है, जिसमे इन्द्र देवोंका अधिपति है. विरोचन असुरोंका अधिपति है. ये दोनों प्रजापतिसे ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं. ऋग्वे- दके मंत्रोंके सामना करनेपर ज्ञात होता है कि यह अनुमान हालके हैं; मगर यह सन्देह दूर हो जाता है, यदि आर्यावर्तकी और पुस्तकोंसे मिलावें. देवासुर संग्राम मुख्यकर ऋग्वेदहीमे प्रगट होने लगा है और मुख्यकर ऋग्वेदके अन्तके काण्डमें.

असुर दर असल सृष्टिके प्रवल गणोंमिसे थे और मुख्यकरके आकाशकी कई शक्तियोंका नाम था. कोई कोई भागोंमे "देवासुर"-का उल्था "सजीव देवता" किया जा सकता है. थोड़े कालके अनन्तर यही असुर कई निश्चरोंके नामकेलिये वर्ताव होता है, और अन्तमे बहुवचनमे देवोंको छोड़कर भूत प्रेतोंके नाममे वर्ता जाता है. ब्राह्मणोंमे यह अन्तर असुर व देवोंमे बहुत पुष्टताके साथ नियत किया गया है और समीप समीप प्रत्येक पदार्थका फैसला (न्याय) उसमें देवासुर संग्राममेंसे किया गया है कि इन्द्र देवताओंका अधिपति माना जाय. यह स्वाभाविक है. विरोचन उसके पश्चात् हुआ. मंत्रोंमें उसका नाम नहीं आया है. पहिले पहिले तैत्तिरीय ब्राह्मण १-५-९-१ में आया है जहां वह प्रह्रादि और कयाधूका पुत्र माना गया है. इस इतिहासमें प्रजापति एक बड़ा देवता माना गया है, यहांतक कि तैत्तिरीय ब्राह्मण १-५-९-१ मे वह इन्द्रका बाप लिखा गया है. हमारे इतिहासका यह अर्थ है कि देखें किस तरह विरुद्ध सीढियोंसे आत्मविद्याको प्राप्त हो सकते हैं.

प्रजापति पहिले सरल सरल बातें नहीं करता और कहता है कि वह शक्स जिसे हम आंखोंमें देखते हैं आत्मा है. इसका मतलब उस लिप्त वृद्ध पुरुषसे है जिसे आंखसे कुछ मतलब नहीं, परन्तु उसके विद्यार्थी अपने गुरूका मतलब नहीं समझते. असुर ये अर्थ लगाते हैं कि वह छोटा स्वरूप जो आंखकी पुतलियोंमें जैसे दर्पणमे बन जाता है, उसीको आत्मा कहते हैं. देव यह समझे कि वह परछाईं (प्रतिबिंब) जो दर्पण या पानीमे पड़ती है वही आत्मा है. विरोचन यह अर्थ मान लेता है परन्तु इन्द्रको इससे सन्तुष्टता नहीं होती, और उसे आत्माकी खोज होती है, और ऐसे मनुष्यमें ढूंढता है जो इंद्रियोंके असरसे रहित होकर स्वप्न देखता, और कभी ऐसे शक्समे आत्माकी खोज करता है जो स्वप्न नही देखता, न बिलकुल अगोचर है. परन्तु इन्द्रको इनसे सन्तोष न हुआ क्यों कि यह उससे बिलकुल निर्वाण ज्ञात होता था. अन्तको इन्द्रने जाना कि आत्मा वह है, जो

इन्द्रियोंको काममें लाता है, लेकिन उनसे अलग है, अर्थात् वह मनुष्य जो दृष्टि आता है. फिर वह शख्स जो जानता है कि मैं तो ज्ञानवान् हूं और मेरा अंतःकरण एक दैवी नेत्र है जो मेरे जाननेका द्वारा है. यही वनवासियोंका सत्य और असीमकी खोजमें आन्तिक पद था.

## छान्दोग्य उपनिषदका सातवां खण्ड.

प्रजापतिने कहा—" वह आत्मा—जो पाप, वृद्धपन, मृत्यु, दुःख, क्षुधा, तृषासे रहित हैं, और जो उसी पदार्थको चाहता है, जो उसे चाहना चाहिये, और जो किसी बातका ध्यान नहीं करता. सिवाय उसके जिसपर उसे ध्यान रखना चाहिये, ऐसे आत्माकी हमें खोज करना चाहिये और उसके समझनेकी कोशिश करना चाहिये. जिसने ऐसे आत्माको खोज लिया और समझ लिया सब संसार और सब चाहको प्राप्त हुआ. "१.

देवतों व असुरोंने यह सुनकर कहा कि "अच्छा. हम उस आत्माकी खोज करेंगे जिसके मिल जानेसे सब संसार व सब इच्छाएं प्राप्त होती हैं." यह कहकर इन्द्र देवोंमेंसे और विरोचन असुरोंमेसे गये और पृथक हाथमे इंधन लिये हुए ( जैसा विद्यार्थियोंका नियम गुरूके निकट जानेपर था ) प्रजापतिकेपास पहुंचे. २.

बत्तीस वर्षपर्यन्त वे प्रजापतिकेपास विद्यार्थियोंकी तरह रहे तब प्रजापतिने उनसे पूछा कि " तुम दोनों किस अभिप्रायसे यहां इतने दिन रहे ? "

दोनोंने उत्तर दिया कि " तुह्माराही एक वाक्य है कि वह आत्मा जो निष्पाप है, जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृषारहित है और जो ऐसे पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, जिसकी चाहना उस न करना चाहिये, जो उसी बातका ध्यान करता है, जिसपर ध्यान करना उसकेलिये योग्य है, ऐसे आत्माको खोजना चाहिये और उसके समझनेको उपाय किया चाहिये. जिसने ऐसे आत्माको खोजके समझ लिया वह

सब चाहोंको और सब संसारको प्राप्त हुआ. हम यहां इसी प्रयोजनसे ठहरे हुए हैं कि आत्माको जाने. " ३

तब प्रजापतिने कहा कि "वह शख्स जो आंखोंमें दिखाई देता है— आत्मा है. यही मै कह चुका हूं. यही अमर, निर्भय है. यही ब्राह्मण है."

तब उन्होंने पूछा कि "स्वामिन्! वह क्या है? जो पानी और दर्पणमे दिखाई देता है?" उसने जबाब दिया कि "वही अकेला इन सब पदार्थोंमे दिखाई देता है."

## आठवा खण्ड.

"एक पानीका पात्र लेकर अपने आत्माको देखो और जो कुछ न समझो मेरेपास आओ और मुझसे पूछो."

जब उन्होंने पानीके पात्रमे देखा तब प्रजापतिने उनसे पूछा कि "तुमको क्या दिखाई पड़ता है?" तब उन्होंने उत्तर दिया कि "हम आत्माको इकट्ठा देखते हैं. इस रूपके बाल और नाखूनोंका स्वरूपभी दिखाई पड़ता है."

प्रजापतिने उनसे कहा कि "तुम शृंगार करके और अच्छे अच्छे वस्त्र धारण कर साफ सुथरे होके पानीके बर्तनमे देखो."

तब उन्होंने शृंगार करके साफ सुथरे वस्त्र पहिनकर पानीके पात्रमे देखा तब प्रजापतिने पूछा "तुमको क्या दिखाई पड़ा?"

उन्होंने उत्तर दिया कि "हे स्वामिन्! जैसे हम खूब शृंगार किये हुए साफ सुथरे वस्त्र पहिने हुए हैं उसी तरह हम बड़ा शृंगार व साफ सुथरे वस्त्र पहने दिखाई देते हैं." प्रजापतिने कहा कि "यही आत्मा है. यही अमर, अभय है. यही ब्राह्मण है."

इससे इन दोनोंको विश्वास हो गया और चले गये. तब प्रजापतिने सोचा कि ये लोग चले तो गये लेकिन इन्होंने आत्माको न देखा, न आत्माको जाना. जो कोई देवता या असुर इस नियमपर चलेगा सत्यानाश हो जायगा.

पश्चात् विरोचन अपने अन्तःकरणमे सन्तुष्ट होकर असुरोंकेपास

गया और इन नियमोंको कथन करना प्रारम्भ किया कि " आत्मा ( शरीर ) हीका पूजन मुनासिब है, जो आत्माका पूजन और उसकी सेवा करेगा वही इस लोक परलोकको प्राप्त होगा. " ४.

इसी वजहसे अबतक वे लोग असुर कहे जाते हैं, जो दान नहीं करते, जिनका कोई निश्चय नहीं होता, और बलिदान नहीं चढाते, क्यों कि असुरोंका यही नियम है. वे मुर्दोंको सुगन्ध, पुष्प और अच्छे अच्छे खूबसूरत कपड़ोंसे शृंगार करते हैं और अनुमान करते हैं "कि इस तरह ये दूसरे लोकको प्राप्त हो जायंगे." ५.

## नववां खण्ड.

लेकिन इन्द्रको देवोंतक पहुंचनेके पूर्व बड़ा सन्देह हुआ, उसने सोचा कि जैसे शरीरका शृंगार किया जायगा वैसेही आत्मा ( पानीमे छाया ) का शृंगार होगा, आत्माकीभी पोशाक अच्छी होगी. यदि शरीरपर अच्छी पोशाक है, साफ होगा यदि शरीर साफ हो, यदि शरीर अंधा है तो आत्माभी अंधा होगा, यदि शरीर लंगडा है तो आत्माभी लंगडा होगा, यदि शरीर लूला है तो आत्माभी लूला होगा, शरीरके नाश हो जानेपर आत्माभी नाश हो जायगा, इसलिये इस नियममें मुझे कोई अच्छाई नहीं ज्ञात होती है. "१.

अपने हाथमे समिध लेकर फिर प्रजापतिकेपास विद्यार्थीकी तरह आया. प्रजापतिने उससे कहाः—" हे मघवन् ( इन्द्र )! तुम तो विरोचनकेसाथ सन्तुष्ट होकर गये थे, फिर तुम क्यों लौट आये? "

इन्द्रने कहा किः—" महाराज ! आत्मा ( छाया ) का शृंगार तभी ज्ञात होता है जब शरीरका शृंगार किया जाय, उसकी पोशाक अच्छी मालूम होती है, यदि शरीरपर अच्छे कपडे पहने जायं आत्मा साफ ज्ञात होगा, यदि शरीर साफ है और यदि शरीर अंधा है तो आत्मा अंधाभी होगा, लंगडा होगा यदि शरीर लंगडा है, और शरीरकेसाथ उसकाभी नाश हो जायगा, इसलिये मुझे यह नियम अच्छा नहीं ज्ञात होता. " २.

प्रजापतिने कहा कि:—" मघवन् ! तूने ठीक कहा लेकिन मै तेरे सन्मुख आत्माका वर्णन करूंगा. मेरेसाथ ३२ वर्ष और रहो." वह उसकेसाथ ३२ वर्ष और रहा तब प्रजापतिने उससे कहा. ३.

## दसवां खण्ड.

" वह—जो स्वप्नमे प्रसन्न प्रसन्न फिरा करता है—वही आत्मा है, वही नाशरहित, निर्भय और ब्राह्मण है." इन्द्र पुनः सन्तुष्ट होकर लौटा परन्तु देवताओंतक पहुंचनेके पूर्व उसे एक और सन्देह हुआ कि यद्यपि शरीरके अन्धे होनेसे आत्मा अंधा नहीं हो सकता, लंगडे होनेसे लँगडा नहीं हो सकता, यद्यपि शरीरके ऐबकी वजहसे आत्मा खराब नहीं होता, शरीरकी चोटसे आत्मा चोट नहीं खाता, शरीर लंगडे कर देनेसे आत्मा लंगड़ा नहीं हो जाता, लेकिन स्वप्नमे ज्ञात होता है कि मानों आत्मापर चोट लगी, आत्मा भाग गया, उस समय दर्दकाभी असर होता है व अश्रुपात होता है इसलिये मुझे यह नियमभी अच्छा नहीं मालूम होता.

अपने हाथमें समिध लेकर वह फिर विद्यार्थीकी तरह प्रजापतिके-पास गया. प्रजापतिने कहा कि:—" मघवन् ! तुम तो सन्तुष्ट होकर गये थे अब क्यों लौटे ?"

उसने कहा:—" हे महाराज ! यह सत्य है कि शरीरके अंधे होनेसे आत्मा अंधा नहीं होता, लंगडे होनेसे आत्मा लंगडा नहीं होता, यहभी सत्य है कि शरीरकी चोट आत्मापर असर नहीं करती और उसके लंगडे होनेसे लंगडा नहीं होता, परन्तु स्वप्नमे ज्ञात होता है कि गोया उसपर चोट लगी, उसे दर्दभी मालूम होता है, इसलिये यह नियम मुझको नापसंद है." ३.

प्रजापतिने कहा:—" हे मघवन् ! तूने सच कहा. मै सत्य आत्माका वर्णन तुझसे करूंगा, ३२ वर्ष मेरेसाथ और ठहरो." वह ३२ वर्ष और ठहरा तब प्रजापतिने कहा. ४.

## ११ वां खण्ड.

"जब आदमी सो जाता है और सुखसे आराम करता है उसे स्वप्न नहीं दिखाई देते; यही आत्मा है, यही अनाश, निर्भय, ब्राह्मण है." इन्द्र अपने मनमे सन्तुष्ट होकर लौटा, लेकिन देवतोंतक न पहुंचा था कि उसे यह सन्देह हुआ कि "उसे तो यही नहीं मालूम होता कि मै हूं, और न अन्य पदार्थोंको जानता है, वह समूल नाश-दशामे हुआ, मुझे यह नियम पक्का नहीं मालूम होता."

फिर अपने हाथमे समिध ( यज्ञकाष्ठ ) लेकर विद्या निमित्त पुनि प्रजापतिकेपास चला. प्रजापतिने कहा कि:—"हे मघवन् ! तुम तो सन्तुष्ट होके गये थे फिर क्यों लौटे ?" उसने उत्तर दिया "हे स्वामिन् ! इस तरह तो आत्मा यहभी नहीं जानता कि मै क्या हूं और न और पदार्थोंको जानता है, वह तो समूल नाश होता है, मुझको इस नियममे कोई अच्छाई नहीं मालूम होती."

प्रजापतिने उत्तर दिया कि:—"मघवन् ! तूने बहुत ठीक कहा. मै तुझे समझाऊंगा कि आत्मा क्या है और आत्माके सिवाय और कुछ नहीं बताऊंगा. पांच वर्ष और ठहरो"

वह पांच वर्ष और रहा. अब कुल १०१ वर्ष हुए.. इसीलिये यह कहा जाता है कि इन्द्र ( मघवन् ) १०१ वर्षतक प्रजापतिका विद्यार्थी रहा प्रजापतिने कहा:—

## १२ वां खण्ड.

"हे मघवन् ! यह शरीर मृत है और सदैव मृत्युके आधीन है, इसमे वह आत्मा है जो अमर है और जिसका कोई शरीर नहीं[१]. जब यह शरीरमे रहता है तो यह ध्यान करनेसे कि मै शरीर हूं और शरीर मै है, आत्माको अप्रसन्नता व प्रसन्नता होती है, जबतक

१ बहुधा लोगोंका सिद्धान्त है कि देह आत्माका परिणाम है. देहके तत्व और प्रकाश जल पृथ्वीके तत्व इसीसे उत्पन्न होते हैं और अन्तमें आत्मा उसमे प्रविष्ट होता है,

वह शरीरमे रहता है दुःख सुखसे रहित नही हो सकता; लेकिन जव वह शरीरसे अपना संवंध नहीं रखता है और अपने आपको शरीरसे अलग समझता है तो न प्रसन्नता, न अप्रसन्नता उसे छू सकती है." १.

"वायु शरीरके वाहर है, वादल, विजली, गरज, शरीर नहीं रखते (विना हाथ पांव आदिके), अव चूंकि यह इस आकाशी वायुमेंसे अर्थात् (अन्तर) उत्पन्न होनेकी वजहसे अपनी शकलमे प्रगट हो जाते हैं जव उनमें अतुल प्रकाश आ जाता है."

"इसी प्रकार वह अविकारी आत्मा इस शरीरसे निकलकर अन्य स्वरूपमे प्रगट होता है, जव उसे अतुल प्रकाश (आत्मज्ञान) प्राप्त हो जाता है. उस दशामें वह उत्तम पुरुष हो जाता है. वह इधर उधर हंसता, खेलता अपने अन्तःकरणमें प्रसन्न होता, स्त्रियों, गाड़ियों या रिश्तेदारोंकेसाथ मगन रहा करता है, और उस शरीरका ध्यान नहीं करता जिसमे उत्पन्न हुआ था.

"जिस तरह घोडा छकडेमे लगा होता है उसी तरह प्राण इस शरीरसे लगा हुआ है." २.

"अव जव दृष्टि खाली जगहमे (खुली हुई जगह, आंखकी स्याह पुतली) घुसती है तो आंखका आदमी प्रगट होता है, आंख स्वयं देखनेका यंत्र है. जो कोई जानता है कि मुझे सूंघने दो वही आत्मा

---

१ यह उपमा ऐसी अच्छी नहीं है जैसी कि वहुधा प्राचीन उपमा होती है. वायुको आत्मासे उपमा दिया है क्यों कि वह थोडी देरकेलिये अंतरिक्षमे खो जाती है. आत्मा देहने है और फिर निकलकर वायुकी तरह स्वरूप धारण करता है. अधिक वल, अत्युत्तम प्रकाशपर दिया है जो एक जगहपर गर्मीका सूर्य है, दूसरी जगह विद्याका प्रकाश है.

२ जो शान्ति स्थित आत्माकेलिये अनुमान की गई है उसमे ऐसा आनन्द ठीक नहीं मालूम होता, कदाचित् यह इसलिये लिखा गया हो कि आत्मा भीतरहीं भीतर ऐसे सुखभोग करता है. परन्तु सुख या दुःखसे आत्मा भिन्न है. वह उनको दिव्य नेत्रसे देखता है. आत्मन् प्रत्येक पदार्थोंमें सिवाय अपने और कुछ नहीं देखता. तैत्तिरीय उपनिषद पृष्ठ ४९ में शंकराचार्यने अपने टीकामे लिखा है कि यह वाक्य ब्राह्मण वतौर परिणामके है, न कि वतौर कारणके.

है, और नाक सूंघनेका यंत्र है. जो यह जानता है कि मुझे बोलने दो, वह आत्मा है और जीभ बोलनेका यंत्र है." ४.

"जो जानता है कि मुझे इसपर ध्यान करने दो वह आत्मा है और ध्यान उसकी दिव्य दृष्टि है. वह—अर्थात् आत्मा—उन प्रसन्नताओंको देखकर जो अन्य लोगोंसे—मिस्ल एक सोनेके गड़े हुए कोषके—गुप्त हैं, अपनी दिव्य दृष्टिसे—अर्थात् ध्यानबलसे—देखकर मग्न हो जाता है. देवता जो ब्रह्मलोकमें हैं, इसी आत्माका (जिसका प्रजापतिने इन्द्रको उपचार किया और इन्द्रने देवोंको) पूजन करते हैं. वहां सब लोक और सब प्रसन्नताएं उन्हींके अधिकारमें हैं. जो ऐसे आत्माको जानता है और समझता है वह सब लोकों और सब चाहोंको प्राप्त होता है."

"प्रजापतिने यह कहा. प्रजापतिने यह कहा."

## याज्ञवल्क्य व मैत्रेयि.

अब मै बृहदारण्यकमेसे कुछ भाग लिखूंगा जहां इसका वर्णन दो दफे कुछ थोड़ेसे अन्तरकेसाथ आया है. पहिले दूसरे अध्यायमें, दूसरी बार चौथेमे.

"याज्ञवल्क्यके दो स्त्रियां थीं मैत्रेयि और कात्यायनी. इनमेसे मैत्रेयि तो ब्राह्मण खूब जानती थी, परन्तु कात्यायनीको उतनीही विद्या थी जितनी औरतोंको होती है. जब याज्ञवल्क्य चतुर्थ आश्रममे जानेवाला था उसने कहाः—"हे मैत्रेयि! मै सच मुच इस मकानसे जाता हूं (जंगलको.) मै तेरा और कात्यायनिका ठीक प्रबंध किये जाऊंगा."

मैत्रेयिने कहा किः—"हे महाराज! यदि धनयुक्त संसार मुझे मिल जाय तो बताओ क्या मै अमर हो जाऊंगी?"

याज्ञवल्क्यने कहाः—"नहीं. अमीर लोगोंकी तरह तेरी जिन्दगी होगी परन्तु धनसे अमर होनेकी आशा नहीं हो सकती." २.

मैत्रेयिने कहा किः—"मै उसे लेकर क्या करूंगी जिससे मै अमर

नहीं हो सकती. हे महाराज! जो कुछ अमृतत्वके बारेमे जानते हो मुझसे वर्णन करो." ३.

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया:—" तू सत्य सत्य मेरी बहुत प्यारी है, तेरी बातें प्यारी ज्ञात होती हैं. आओ, यहां बैठो, मैं तुझसे वर्णन करूंगा, मेरे वाक्यपर ध्यान धरो." ४.

और उसनें कहा:—" सच मुच पति प्यारा नहीं होता कि तुम पतिसे प्रीति करो, परन्तु इसलिये कि तुम आत्माको प्रीति करो, तो पति प्यारा है." "सच मुच स्त्री प्यारी नहीं कि तुम स्त्रीसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो, तो स्त्री प्यारी है." "सच मुच लड़के प्यारे नहीं हैं कि तुम उन लड़कोंसे प्रीति करो परन्तु इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो, तो लड़के प्यारे हैं." "सच मुच धन प्यारा नहीं है कि तुम द्रव्यसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो तो द्रव्य प्यारा है." "सच मुच ब्राह्मण वर्ग प्यारा नहीं है कि तुम ब्राह्मण वर्गसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो तो ब्राह्मण वर्ग प्यारा है." "सच मुच क्षत्रिय वर्ग प्यारा नहीं है कि तुम क्षत्रिय वर्गसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्मासे प्रीति करो तो क्षत्रिय वर्ग प्यारा है." "सच मुच लोक प्यारे नहीं हैं कि तुम उनसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो तो लोक प्यारे हैं."

" सत्यही देवता प्यारे नहीं हैं कि तुम देवताओंसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्मासे प्रीति करो तो देवता प्यारे हैं."

"सत्य सत्य सब प्राणी प्यारे नहीं हैं कि तुम उनसे प्रीति करो, वरन इसलिये कि तुम आत्मासे प्रीति करो तो प्राणी प्यारे हैं."

" सच मुच सब पदार्थ प्यारे नहीं हैं कि तुम प्रति पदार्थसे प्रीति करो; वरन इसलिये कि तुम आत्माकी प्रीति करो तो प्रति पदार्थ प्यारे हैं."

" हे मैत्रेयि! सच मुच आत्माको देखना चाहिये, सुनना चाहिये, जानना चाहिये, ध्यान करना चाहिये. जब हमें आत्मा दिखाई पड़ेगा और सुनाई पड़ेगा, ज्ञात हो जायगा; तब इस सबका ज्ञान हो जायगा." ६.

"जो कोई ब्रह्मवर्ण आत्माको छोड़ दूसरी जगह ढूंढ़ता है उसे ब्राह्मण वर्गसे पृथक् कर देना चाहिये."

"जो कोई क्षत्रिय वर्गको आत्माके सिवाय अन्य स्थानमे ढूंढ़ता है उसे क्षत्रिय वर्गसे पृथक् कर देना चाहिये."

"जो कोई लोकोंकी खोज आत्मासे अन्य स्थान करता है उसे लोकसे पृथक् कर देना चाहिये."

"जो कोई देवोंकी तलाश आत्माके अन्य स्थान करता है उसे देवोंको निकाल देना चाहिये."

"जो कोई प्राणीका खोज आत्माके सिवाय और स्थानमें करता है तो प्राणियोंको चाहिये कि उसे छोड़ दें."

"जो कोई प्रति पदार्थका खोज आत्मा छोड़कर अन्य स्थान करता है उसे प्रति पदार्थके वाहर कर देना चाहिये."

"यह ब्राह्मण वर्ग, क्षत्रिय वर्ग, यह लोक, ये देव, ये प्राणी, प्रति पदार्थ आत्मा हैं." ६.

"अब जैसे ढोलकका शब्द जब उसपर थाप पड़ती है तो उस शब्दको कोई वाहरसे नहीं पकड़ सकता लेकिन उसवक्त वन्द हो जाता है, जब ढोलक वन्द कर दी जाती है या ढोलक वजानेवाला थम जाता है." ७.

"जैसे शंखका शब्द जब बजाया जाता है बाहरसे कोई नहीं पकड़ सक्ता लेकिन जब शंख थम जाता है या वजानेवाला थम जाता है तब शब्दभी बन्द हो जाता है."

"जैसै बांसुरी बजानेपर शब्द बाहरसे कोई नहीं पकड़ सक्ता लेकिन शब्द वन्द हो जाता है, जब बांसुरी वन्द कर दी जाय या बजानेवाला."

"जैसे एक जलती हुई आगपर जिसमे आर्द्रेन्धन (गीला ईंधन) रक्खा गया है धूयेंके वादल स्वयं उठने लगते हैं, हे मैत्रेयि! बिलकुल उसी तरह इस बड़े ईश्वरकी स्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र,

अनुमान, वाक्य, व्याख्यान उत्पन्न हुए. इसीके स्वाससे यह सब निकले." १०.

"जिस तरह सारा जल अपना केन्द्र समुद्रमें पाता है—जैसे छूनेका केन्द्र खाल है, चखनेका जिव्हा, सूंघनेका नाक, रंग खोजनेका आंख, शब्दका कान, ध्यानका मन, विद्याका हृदय, कामोंका हाथ, गतिका पाँव,—सब वेदोंका केन्द्र वाणी है." ११.

"जैसे एक टुकड़ा निमकका पानीमें डालनेसे घुल जाता है और फिर निकाला नहीं जा सकता परन्तु जहां कहींसे हम पानीको चखते हैं निमक मालूम होता है, इसी तरहसे हे मैत्रेयि ! यह बड़ी शक्ति, असीम सविद्या, इन्ही तत्वोंसे उत्पन्न हुआ और फिर उन्हींमे समा गया. हे मैत्रेयि! जब यह चला गया तो कोई विद्या न रही." १२.

मैत्रेयिने कहाः—" हे भगवन्! तूने मुझे चौंधिया दिया, जब तू कहता है कि सिधारनेपर और विद्या नहीं हो सकती. लेकिन याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया किः—"हे मैत्रेयि ! जो कुछ मैंने कहा कोई ऐसी बात न थी कि तू चौंधिया जाती. हे प्रिया ! बुद्धिकेलिये यही काफी है." १३.

"क्यों कि जब द्वितीय है तभी तो एक दूसरेको देख सकता है, दूसरी चीजको सूंघ सकता है, दूसरे पदार्थको सुनता है, दूसरेको नमस्कार कर सकता है, दूसरे पदार्थको जान सकता है, लेकिन जब आत्माही यह सब कुछ है तब वह दूसरेको क्योंकर सूंघ सकता है? क्योंकर देख सकता है? क्योंकर सुन सकता है? क्योंकर नमस्कार कर सकता है? क्योंकर मालूम कर सकता है? क्यों कर जान सकता है? वह फिर उसे क्योंकर जान सकता है, जिससे उसने इन सबको जाना है. हे प्यारी! वह फिर अपने आपको अर्थात् जाननेवालेको क्योंकर जानेगा?"

## यम और नाचिकेत.

उपनिषदोंमें कठोपनिषदभी प्रसिद्ध है. यूरूपके विद्यार्थियोंको

प्रथमही प्रथम इसकी विद्या राममोहन रायसे हुई—जो अपने मुल्कका एक वहुत वुद्धिमान् वरन सारी दुनियांका एक वडा लाभदायक मनुष्य था.—इसके पश्चात् तो इसका वहुधा उल्थाभी हुआ और वहुधा शास्त्रार्थभी हुआ. इसका जानना उन लोगोंपर योग्य है जो मतसंवंधी और तत्वज्ञानके ध्यानोंकी उन्नतिपर ध्यान करते हैं. इसका निश्चय नहीं होता कि यह किताव हमारेपास अपनी मुख्य-दशामें उपस्थित है क्यों कि कोई कोई स्थानपर साफ ज्ञात हो जाता है कि इसमे भाग अन्तको अधिक किये गये. यही इतिहास तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-११-८ में वर्णन किया गया है; अन्तर केवल इतना है कि ब्राह्मणमें आवागमनसे रहित होना एक मुख्य प्रकारके यज्ञसे हो सकता है और उपनिषदमे केवल ज्ञानसे प्राप्त हो सकता है. उपनिषदमे एक छोटे लडके नाचिकेत नामी और यम (मृत्युलोकका अधिपति) मे वातें हो रही हैं. नाचिकेतके वापने एक सर्वयज्ञ किया जिसमे मनुष्यको जो कुछ पास होता है सव देना पडता है. लडकेने अपने पिताके संकल्पका हाल सुनकर उससे पूछा कि क्या ! तुम अपने प्राणको पूरा पूरा निवा होगे ? वाप पहिले तो कुछ हिचकिचाया, अन्तको क्रोधमे आकर कहा कि मै तुझेभी मृत्युके समर्पण कर दूंगा. जव पिताने यह कहा तो अपने कहनेको पुराभी करना चाहिये था और अपने लडकेको मृत्युके समर्पण कर देना चाहिये था. लडका अपने वापके वे समझे हुए संकल्पको पूरा करनेकेनिमित्त सन्नद्ध हो गया. उसने कहा कि "मैं उन लोगोंसे प्रथम होकर जाता हूं जो मरेंगे, और उन लोगोंकेसाथ जाता हूं जो मर रहे हैं. मृत्युलोकाधिपति यमको जो कुछ करना है मेरे-साथ आजही कर लेगा, फिरकर देखो कि उन लोगोंका क्या हाल था जो गुजर गये हैं, और देखो कि उनका क्या होगा जो आनेवाले हैं, मनुष्य मिस्ल अन्नके पक जाता है और मिस्ल नाजके फिर उत्पन्न होता है." जव नाचिकेत मृत्युलोकाधिपतिके लोकमे पहुंचा यम उनका हाकिम उपस्थित न था और उनके नए अतिथि-

को तीन दिनतक पूरा आशस्वास न हुआ. इस क्लेशके बदलेमें यमने लौटकर उससे कहा कि तीन वातोंमेंसे जो चाहे मांगो.

पहिला वर जो नाचिकेतने चाहा यह था कि " मेरा वाप मुझसे क्रोधित न रहे. "*

दूसरे यह था कि यम मुझे कोई मुख्य प्रकारका यज्ञ कर्ना सिखावे[1]. तीसरे वरके मांगनेपर नाचिकेतने कहा कि मृत्युके पश्चात् यह बडा सन्देह रहता है कि " जव मनुष्य मर गया तो कोई कहते हैं कि वह रहता है और कोई लोग कहते हैं कि नाश हो जाता है. यह मैं तुझसे जाना चाहता हूं.[2] यह मेरी तीसरी विनय है " २०.

यमने उत्तर दिया—" इसपर तो पहिले देवोंनेभी शंका किया था. इसका समझना सहल नहीं है. यह आशय वहुत सुकुमार है. कोई और दूसरी वात मांग. तू इसपर हठ न कर. यह वर मुझसे न मांग. "२१.

" जिन चाहोंका मनुष्यकेलिये पूरा होना कठिन है वह मुझसे अपनी चाहके अनुसार मांग. यह सुस्वरूप क्वारी कन्याएं अपने रथों और वाजोंकेसाथ—जो मनुष्यको नहीं लब्धि हो सकतीं—अपनी सेवाके निमित ले, मैं देता हूं. लेकिन मरनेके वारेमे मुझसे कुछ मत पूछ. "

नाचिकेतने कहा " हे यम ! यह तो कलतकही रहेंगी, यह सारे इंद्रियोंके वलको खा जायगी, जीवनका कुल काल वहुत कम है. अपने घोड़े अपनेपास रख. नाच व राग तूही रख, धनसे मनुष्य सुखी नहीं हो सकता. धनको कौन रक्खेगा ? हे मृत्यो ! जब हम तुझे दे-

---

* तैत्तिरीय ब्राह्मणमें नाचिकेतका पहिला वर यह था कि वह सदेह अपने वापकेपास लौट जाय.

१ तैत्तरीय ब्राह्मणमें दूसरा वर यह था कि उसके सत्कर्म नाश न हो. इसपर यमने उसको एक नवीन यज्ञ वताया जिसका नाम तवसे नाचिकेत पड़ गया.

२ तैत्ति० ब्रा० में तीसरा वर यह लिखा है कि यम उसको मृत्युपर विजय देना सिखाये. इसपर यमने फिर नाचिकेत यज्ञ वताया. टीकाकार लिखता है कि इस यज्ञमे अन्तर इतना था कि इसमे प्रथम उपासना और पीछे हवन ( यजन ) था.

खते हैं हे मृत्यो ! मैं न मानूंगा. मुझे वह बताओ जिसपर बहुत सन्देह है कि मृत्युके पश्चात् क्या होता है ? नाचिकेत और कोई वर सिवाय उसके नहीं मांगता जो गुप्त है और मृत्युलोकसे संबंधित है. " २९.

अन्तको यमने अपनी इच्छा विरुद्ध लाचार होकर आत्मविद्याका उसके सामने वर्णन किया. यम कहता है " वे मूर्ख–जो अज्ञानमें रहते हैं–अपनेको आपही बुद्धिमान् समझते हैं, मिथ्या ज्ञानसे फूले हुए इधर उधर फिरते हैं, यहां वहां भटकते हैं, जैसे एक अंधा दूसरे अंधेको टेकाये. "

" द्रव्यमें फसा हुआ मूर्ख बालक कभी भविष्य नहीं देखता. अनुमान करता है कि यही लोक है, परलोक नहीं है, इस प्रकारसे वह पुनः पुनः मेरे वशमे आ जाता है. "

" वह बुद्धिमान् पुरुष जो अपनी आत्मापर खयाल करके उस पुराणपुरुषको पहिचानता है, जिसका देखना कठिन है, जो अंधेरेमे उत्पन्न हुआ है, जो गुफामें छिपा है, जो अथाह गढ़ेमे रहता है, कि वह परमेश्वर है, ऐसाही पुरुष सुख दुःखको बहुत दूर छोड़ देता है. "

" ज्ञानस्वरूप आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है. वह शून्यसे उत्पन्न हुआ व शून्यही हो गया."

" वह पुराणपुरुष अजात और चिरस्थायी और अदृश्य, अक्षय है. यद्यपि शरीर क्षय हो जाता है. "

" आत्मा तुच्छसे तुच्छ व बड़ासे बड़ा है; प्राणिमात्रके अन्तःकरणोंमें गुप्त है. जिस मनुष्यको शोक दोष नही है वह भगवत्कृपासे आत्माका प्रभाव देखता है. " २०.

" यद्यपि वह स्थिर है परन्तु वह बहुत दूर चलता है, यद्यपि लेटा है परन्तु प्रतिस्थान जाता है, सिवाय मेरे कौन उस ईश्वरको जान सकता है जिसे प्रसन्नता है और सदा उदासीनभी रहता है." २१.

" वह आत्मा न वेदसे, न ज्ञानसे, न विद्यासे मिलता है. जिसको

आत्मा स्वीकृत करता है उसीको आत्मा मिल सकता है. आत्मा उसको अपना करके ले लेता है." २३.

"लेकिन वह जो पूर्वमें दुर्वासनाको नहीं त्यागता है और जो शान्त व कोमल नहीं है या जिनका मन स्थिर नहीं है वह विद्यासेभी आत्माको कभी नहीं प्राप्त हो सकता है." २४.

"कोई मनुष्यभी उस श्वासोच्छ्वाससे नहीं रह सकता है जो ऊपर जाती है और नीचे आती है. हम दूसरे पदार्थसे रहते हैं जिसमे ये दोनों अवलम्बित हैं." ५५.

"मै तुमको यह भेद व चिरस्थायी ब्रह्मको बताऊंगा और यह बताऊंगा कि मरणानन्तर क्या होता है?" ६.

"कोई कोई सचेतन उत्पन्न होते हैं, व कोई लकड़ियों व पत्थरोंमें समानताको प्राप्त होते हैं, अपने काम और अपनी करतूतिके अनुकूल." ७.

"परन्तु वही परमपुरुष व प्रकाशक व ब्राह्मण व अमर कहलाता है जो हममें जागता है, जब कि हम सोते हैं, और जो एकके पश्चात् दूसरा अच्छा पदार्थ सन्मुख लाता है. लोक इसीपर स्थित है. कोई इसके बाहर नहीं जाता है. यह वही है." ८.

"जैसे अग्नि प्रथम जगतमे एक होती है परन्तु पुनः जैसे पदार्थोंको जलाती है वैसी वैसी हो जाती है. इसी तरह सर्वात्मा सब पदार्थोंमे एकही है परन्तु भिन्न पदार्थोंमे प्रविष्ट होकर भिन्न हो जाती है और पृथक्भी उपस्थित है." ९.

"जिस तरह संसारके नेत्र ( अर्थात् सूर्य ) बाहरके बूरे पदार्थोंसे भ्रष्ट नहीं होता उसी तरह सब पदार्थोंमें जो आत्मा है वह सांसारिक दुःखरहित है क्यों कि वह पृथक् होता है." ११.

"अनादि अनन्त एकही विचार करता है, व अनित्य पदार्थोंका विचारकर्ता, यद्यपि वह एक है परन्तु सबकी कामना पूर्ण करता है. जो साधुपुरुष अपनी आत्मामे देखते हैं उनको सदैव शान्ति है." १३.

" वह जो कुछ हो परन्तु उस ब्रह्मकी श्वाससे सब लोक कांपते हैं, वह ब्रह्म नंगी तलवारकी प्रकार बहुत भयानक है, जो उसको जानते हैं वे अमर हो जाते हैं. " ६–२.

" वाणी, मन, नेत्रोंसे वह नहीं मिलता है, उसको सिवाय उस शख्सके और कोई खयाल नहीं कर सकता है जो कहता है कि वह है. " १२.

" जब हृदयकी सब वासना जाती रहती है तब मर्त्य मनुष्य अमर होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है. " १४.

" जब पृथ्वीपर हृदयान्तर्गत शृंखला टूट जाती है तब मर्त्य अमर हो जाता है. यहां मेरी शिक्षा समाप्त होती है. " १५

उपनिषदोंका उपदेशक धर्म.

यह कहा जा सकता है कि " उपनिषदकी इस शिक्षाको अब धर्म नहीं कह सकते वरन वह एक तत्वशास्त्र है, यद्यपि वह ठीक सिलसिलेसे नहीं है. इससे ज्ञात होता है कि हम कैसे भाषाके दास हैं? धर्म व तत्वविज्ञानमे अन्तर किया गया है, जहांतक कि उनके उद्देश व हेतुका संबंध है वहांतक यह अन्तर उपयुक्त है, परन्तु जब हम यह देखते हैं कि धर्मका किन वार्ताओंसे संबंध है तो तत्वशास्त्रकाभी उन्ही पदार्थोंसे संबंध है, वरन तत्वशास्त्र उन्हींसे निकलाभी है. यदि धर्मका मूल अनन्तके देखने व ध्यान करनेपर मुनहसिर है तो सिवाय मीमांसाशास्त्रवालोंके और कौन इस बातको हल कर सकता है कि वह वस्तुदृष्ट्या व ध्यानांत ठीक है या नहीं."

सिवाय तत्वशास्त्रीके कौन उस शक्तिको समझा सकता है जो मनुष्यमे इसलिये होती है कि वह अपनी इन्द्रियोंसे ससीम पदार्थोंको ध्यान करें और अपनी बुद्धिसे छोटे छोटे ध्यानोंको जमा कर सके.

सिवाय तत्वशास्त्रीके और कौन इस बात कोतै कर सकता है कि यदि इन्द्री व बुद्धि विरुद्ध हों तोभी मनुष्य अनन्तका होना स्थिति कर सकता है. यदि हम धर्मको तत्वशास्त्रसे पृथक् करें तो धर्म नाश हो जायगा और तत्वशास्त्रभी बिना धर्मके नाश हो जायगा.

पादरियोंसे अधिक प्राचीन ब्राह्मणोंने यह फिक्र की कि लौकिक ग्रंथ और धर्मविषयक ग्रंथोंमे अन्तर रहे, और उनके धर्मशास्त्र पवित्र व ईश्वरप्रणीत हों, वह उपनिषदको उसमे मिलाते हैं कि उपनिषद श्रुतिमे है. वह स्मृति व धर्मशास्त्र महाभारत आदिकी पद्य व पुराणोंसे विलग है. प्राचीन ऋषियोंका तत्वशास्त्र उनकेलिये यज्ञशास्त्र प्रसंशाके मंत्र थे.

उनके नियमानुसार जो कुछ उपनिषदोंमें लिखा है सो सत्य है; चाहे उसका एक नियम दूसरेके विरुद्ध हो. और यह आश्चर्यकी वात है कि पीछेसे जितने तत्वशास्त्र एक दूसरेसे विरुद्ध हुए वह अपने नियमोंकी पुष्टताके अर्थ उपनिषदोंका वाक्य खोजते थे.

## वैदिक धर्मकी उन्नति.

प्राचीन आर्यधर्मके दृढ स्थापन करनेमें एक और वात हमारी विचारनीय है. इसमे सन्देह नहीं कि संहिताओंमेभी हमको ऐतिहासिक उन्नतिके चिन्ह मिलते हैं. मैने एक व्याख्यानमे इसको दिखलाया है और यहभी लिख दिया है कि इन विरुद्ध अनुमानोंका इतिहासिक समाचार अलाभदायक है क्यों कि मुख्य मुख्य लोग अपने समयसे अधिक वुद्धिमान् होते रहे.

प्राचीनकालमें और मुख्यकर वैदिक समयके निमित्त हम यह कह सकते हैं कि ऊषा व सूर्यकी प्रशंसाके मंत्र पहिले वने और अदितिकी वड़ाईमें पीछे वने और तिस पीछे प्रजापतिकी प्रशंसाके मंत्र वने. वह मंत्र जिनका मैने ऊपर उल्था किया है सवसे पश्चात्‌के हैं.

वैदिक सम्पूर्ण मंत्रोंमे एक तरहकी उत्तरोत्तर और ऐतिहासिक उन्नति है और यही वहुत उपयोगी पदार्थ है. ये प्राचीन सम्पूर्ण मंत्र उस कालके प्रथमके हैं जव संहिता वनी, और यदि हम यह कहें कि संहिता एक सहस्त्र वर्ष ईसवी सन्‌के पूर्व वनी तो हम निश्चय करते हैं कि हमसे वहुत लोग विरुद्ध न होंगे ब्राह्मणोंके वननेके पूर्व मंत्र इकठा किये गये होंगे. मंत्रों और ब्राह्मणोंमे उन सवकेलिये

बहुत कुछ पारितोषिक लिखा गया है जो प्राचीन यज्ञके जैसे करते हैं. जिन देवोंके नाम यज्ञ होता है उनकी स्तुति मंत्रोंमे है और प्रजापतिकेसे देवता पिछले ब्राह्मणोंमें बहुत आये हैं.

तत्पश्चात् आरण्यक आते हैं, जो ब्राह्मणोंके अनन्तर और अपनी दशासे प्राचीन कालके ज्ञात होते हैं. उनकी आकांक्षा यह है कि विना उस ज्ञान शौकत के जो ब्राह्मणों व सूत्रोंमें लिखी है जंगलके वासी केवल हृदयबलसे यज्ञ कर सकते हैं. पुजारी केवल यज्ञका अनुमान करे और ध्यानमें उसे करे जिससे उसको वह फल मिलता है जो सब क्रियाकर्मके करनेवालेको प्राप्त होता है.

सबके पश्चात् उपनिषद है जिनका मंशा यह है कि क्रियाकर्म बिलकुल अलाभदायक और हानिकारक है. और यह कि जिस यज्ञसे सुफलकी चाह व आशा होती है वह बुरी है. उपनिषदमें यद्यपि देवोंके अस्तित्वसे इन्कार नहीं किया गया है परन्तु उनका बडा दर्जा नहीं रहा. उसमे यह सिखाया गया है कि विना सत्यात्माके जाने हुए और कोई आशा बचनेकी या मोक्ष पानेकी नहीं है.

जहांतक हो सका मैंने इस बातके समझानेकी कोशिश की कि यह अनुमान कैसे हुए, एक दूसरेके पश्चात् कैसे आये, और इनके विचार करनेवाले सत्यको ढूंढते थे और सत्यके प्राप्त करनेमें उन्होंने कोई परिश्रम उठा नहीं रक्खा.

अब तुम यह पूछोगे कि "यह मत कैसे स्थित रह सका जिसमें इस कदर विरुद्ध अनुमान व बातें थीं कि वह लोग एक कुटुम्ब व एक धार्मिक सभामें कैसे रह सके जिनमें कोई कहते थे कि देवता हैं, कोई कहते थे कि देवता नहीं हैं, और कोई अपना सारा माल यज्ञमे व्यय कर देते थे; और कोई कहते थे कि यज्ञ एक धोखा व जाल है, फिर वह किताबें जो एक दूसरेके विरुद्ध थीं ईश्वरप्रणीत कैसे मानी गई?"

लेकिन यही समाचार सहस्र वर्ष पूर्व था, और रद बदल होनेसे अबभी जहां जहां वैदिक धर्म है यही दशा है. इसका कारण हमको समझकर सोचना चाहिये और उससे कुछ सीखना चाहिये.

## चारों वर्ण.

जबतक कि आर्यावर्तकी भाषाको अंग्रेजोंने नहीं सीखा था तबतक यह अनुमान किया जाता था कि ब्राह्मण पवित्र पुस्तकोंको और वर्णोंसे छिपाते हैं और इस तरह मूर्ख लोगोंपर शासन करते हैं. थोड़ा संस्कृत जाननेसे ज्ञात हो जायगा कि यह दोष मिथ्या है. केवल शूद्रोंकेलिये वेद मना था लेकिन अन्य तीन वर्णोंकेलिये वेदका पढ़ना जानना योग्य अवश्य था. सबको वेद पढ़ना चाहिये था. ब्राह्मणोंको केवल इतना अधिकार मिला था कि वही केवल पढ़ा सकते थे.

ब्राह्मणोंका यह इरादा न था कि शूद्र केवल क्रिया, धर्म, कर्म जाने और उपनिषदोंका धर्म केवल ब्राह्मणोंकेलिये रहे. वरन बहुतसी बातोंसे मालूम होता है कि गुप्त धर्म क्षत्रियोंने निकाला. मुख्यता यह है कि जैसा वर्णोंका अब मतलब है वैसे वर्ण वैदिक कालमे नहीं थे. वेदमे जो वर्ण हैं वह उन वर्णोंसे विरुद्ध हैं, जो मनुशास्त्रमें हैं या जैसे आजकल माने जाते हैं. प्राचीन आर्यावर्तमें मनुष्योंके दो भेद थे; एक आर्य, दूसरे शूद्र.

उसके पश्चात् आर्यमें ब्राह्मण व क्षत्रिय ( राजन्य ) और वैश्य थे. इन लोगोंके जो काम हैं वह वैसेही हैं जैसे और मुल्कोंमे होते हैं.

## चार आश्रम.

चार वर्णोंसे अधिक आवश्यक प्राचीन वेदवालोंकी सभामें चार आश्रम थे. नियमसे ब्राह्मणको चारों आश्रमका अधिकार था, क्षत्रियोंको तीनका, वैश्योंको दोका, शूद्रोंको एकका. आर्यावर्तमे जो पुत्रोत्पन्न होता था उसको कुल जीवनका मार्ग बता दिया जाता था, और कोई वजह सन्देह करनेकी नही है कि प्राचीनकालमें ये चालचलन जो उनकी पवित्र पुस्तकों और नियमके शास्त्रोंमे लिखे थे उनपर लोग बहुत कुछ न चलते थे. आर्योंके सन्तान होतेही—वरन उनके उत्पन्न होनेके पूर्वसेभी—उनके माबापको कुछ संस्कार साधना होते थे जिनके बगैर वह सन्तान उनमे नहीं मिल सक्ती थी. पच्चीस अथवा इनसे

अधिक संस्कारोंका चर्चा हुआ, केवल शूद्रोंकेलिये ये संस्कार न थे परन्तु जो आर्य उनको नही करता था वह शूद्रोंसे अच्छा नही माना जाता था.

## प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्य ( विद्याभ्यासी. )

ब्राह्मण व क्षत्री व वैश्यके पुत्रका प्रथम आश्रम तब आरम्भ होता था जब वह सातसे ग्यारह वर्ष पर्यन्त होता था* तब वह घरसे भेज दिया जाता है और शिक्षानिमित्त गुरूके सिपुर्द होता है. उसकी मुख्य शिक्षा यह है कि वेदको पढ़े या रट ले. वेदको ब्राह्मण कहते हैं इसलिये उसे ब्रह्मचारी–अथच वेदाभ्यासी–कहते हैं. सुशिक्षानिमित्त १२ वर्ष या अधिकसे अधिक ४८ वर्ष हैं. जबतक यह नवयौवन विद्यार्थी गुरूके गृहमें रहता है उसको गुरूकी आज्ञा अच्छी तरह माननी पड़ती है. दिनमें दो वार–सूर्योदय और सूर्यास्त समय–संध्योपासन करना होता है. प्रति दिन प्रातः सायं उसे गांवमे फिरकर भिक्षा मांगनी पड़ती है और जो कुछ उसे मिलता है गुरूको दे देता है, और जो कुछ गुरु उसे देता है वही वह खा सकता है. उसको पानी भरना, समिध लाना, यज्ञशालामे झाड़ू देना, रात्रिदिन गुरूकेसाथ रहना होता है. इसके वदलेमें उसका गुरु उसे वेद इस तरह पढ़ाता है कि वह जिव्हाग्र कह सके. गुरु अन्य वार्ताऐंभी वताता है जो उसके द्वितीयाश्रममें जाने, व विवाहित होने व गृहस्थ होनेकेलिये आवश्यक है. विद्यार्थी उपाध्यायोंसे अन्य वातें पढ़ सकता है परन्तु उसका द्विज होना उसके आचार्यहीसे होता था. जब विद्यार्थीकी दशा समाप्त होती थी तब अपने गुरूको दक्षिणा देकर पिताके घर जा सकता है तब उसे स्नातक कहते हैं, या समावृत्त. मानों उसने पारितोषकपत्र प्राप्त किया. विद्यार्थी होनेके

---

* आर्यविद्यासुधानिधिः 'आपस्तम्भ सूत्रः१–१–१८ "ब्राह्मणको वसंतऋतुमें, क्षत्रियको ग्रीष्ममें, वैश्यको शिशिरमें ब्रह्मचर्यमें प्रविष्ट करो. ब्राह्मणको उसकी उत्पन्नतासे अष्टम वर्षमें, क्षत्रियको ग्यारहवे वर्षमें, वैश्यको १२ वे वर्षमें."

पश्चात् कोई नैष्ठिक आयुभर गुरुगृहमें ठहरते हैं और कभी विवाह नहीं करते. कोई कोई संन्यासी हो जाते हैं परन्तु नित्य वर्ताव-पर इस आर्यको जिसकी आयु अब कमसे कम उन्नीस या बाईस वर्षकी होगी विवाह करना चाहिये.

## द्वितीयाश्रम (गृहस्थाश्रम).

विवाहानन्तरकी अवस्था—यह दूसरी अवस्था है जिसमे उसे गृहस्थ या गृहमेधिन् कहते हैं. स्त्री पसंद करने और विवाहके तरीकोंका बहुतसा हाल दिया हुआ है. हमको अधिक कर उसका धर्म देखना है. उसने वैदिक मंत्र जिव्हाग्र याद किये हैं इसलिये हम अनुमान करते हैं कि वह अग्नि, इन्द्र, वरुण, प्रजापति आदि वैदिक देवोंको मानता है. उसने ब्राह्मणभी पढ़े हैं और उसको बहुतसा पूजापाठ करना पड़ता है. उसने आरण्यक व उपनिषदभी याद किये हैं और अगर उसने उनको समझा है तो वह जानता है कि उसका यह द्वितीयाश्रम तृतीयाश्रमकी तैयारीकेलिये है, परन्तु उस आश्रममे कोई नहीं जा सकता जो पहिले व दूसरे आश्रममें होकर न जाय—यह सदैव नियम है परन्तु बहुधा इसके विरुद्धभी हुआ है. गृहस्थको प्रति दिन पंच यज्ञ करना होते हैं.

प्रथम—वेदाभ्यास करना, वेदका पढ़ाना.

द्वितीय—पितृयज्ञ करना.

तृतीय—देवतोंको बली अर्पण करना.

चतुर्थ—जीते हुए प्राणियोंको अन्न देना.

पंचम—अतिथिसत्कार करना—( अतिथि यज्ञ. )

गृह्यसूत्रोंके नियमोंसे बढ़कर और अच्छे नियम गृहस्थकेलिये नहीं हो सकते. यदि यह काल्पितही हों परन्तु यह ऐसा जीवन दर्शाते हैं जैसा हम कहीं नहीं देखते.

जैसे हिन्दुस्तानमें यह प्राचीन कल्पना है कि प्रत्येक मनुष्य ऋणी उत्पन्न होता है—प्रथम ऋण ऋषियोंका है, जिन्होंने धर्मकी जड़

डाली; द्वितीय ऋण देवताओंका है; तृतीय ऋण मातृ पितृका है.*

ऋषियोंका ऋण वह विद्यार्थी होकर वेदको अच्छी तरह पढ़कर अदा कर देता है; देवताओंका ऋण वह गृहस्थाश्रममे छोटे वड़े यज्ञ करके अदा कर देता है; मातृ पितृका ऋण पितृयज्ञसे और आप लड़कोंके वाप होनेसे अदा कर देता है.

इन तीनो ऋणोंको अदा करके वह मनुष्य इस लोकसे छूट जाता है. इन कामोंके सिवाय और वहुतसे यज्ञ हैं जो प्रत्येक अच्छे आर्यको करना चाहिये. कोई कोई दैनिक यज्ञ हैं, कोई पाक्षिक हैं, कोई ऋतु ऋतुमें हैं. इन यज्ञोंमे पुरोहितोंकी आवश्यकता होती थी और वहुधा वहुत खर्चभी होता है. यह यज्ञ केवल तीनही वर्ण कर सकते थे और क्षत्री व वैश्यभी ब्राह्मणकी तरह अनुमान किये जाते थे, मगर इनका करना केवल ब्राह्मणोंहीके अधिकारमें था. कोई कोई यज्ञ—जैसे, अश्वमेध व राजसूय केवल क्षत्रियोंकेलिये थे. शूद्र सर्व स्थानसे विलग किये गये थे. पीछेसे कुछ आज्ञा उनको मिली थी परन्तु इस शर्तपर कि यज्ञ करनेमे कोई पवित्र मंत्र न पढ़े जाय.

ईस्वी सन्के १००० व ५०० वर्ष पहिलेके विषयमे जो कुछ हमको प्राचीन आर्यावर्तका हाल ज्ञात हुआ यह है कि सालभरके रात व दिनके हर घंटेकेलिये एक ब्राह्मणका जीवन ठीक नियमानुसार था. इन पवित्र कामोंसे थोड़ीभी गफलत करनेसे कठिन दंड व अधर्म होता था, और द्वितीय जन्ममें दण्डका डर रहता, मगर जो मनुष्य कि पूजा व यज्ञ ठीक करता था उसकी दीर्घ आयु सुप्रकार पृथ्वीपर कटती और पुनर्जन्ममे सुख मिलता.

---

* मनु ६–३५. "जव वह तीनों ऋण ऋषि, पितृ, देवोंके अदा कर दे तव उसे मोक्षसाधनाके निमित्त मन लगाना चाहिये, परन्तु जो इन ऋणोंके विना मोचन किये हुए मोक्ष चाहे वह वहुत नीचे गिर पड़ेगा. जव वह वेद पढ़ चुका, एक पुत्र उत्पन्न कर चुका और अपनी शक्तिभर यज्ञ कर चुका तव उसके तीनों ऋण अदा हो गये और वह मुक्तिमे मन लगा सकता है."

## तृतीयाश्रम ( वानप्रस्थ वा एकान्तवास. )

अब हम प्राचीन आर्योंकी जिन्दगीके एक बडे आवश्यक भागको वर्णन करते हैं. जब कि किसी कुटुंबके बापने अपने बाल सफेद देखे या अपने पुत्रका पुत्र देखा तो वह संसाररहित हो गया. उसे सब अपनामाल अपने लड़केकेवास्ते छोड़ देना पड़ता था और अपना घर छोड़कर जंगलको जाना चाहिये. तब वह वानप्रस्थ हुआ. उसकी स्त्रीको साथ जाने या न जानेका अधिकार था. और जंगलमें वास करनेकी दशामें प्राचीन ऋषियोंकी रायमें विरुद्ध है जिसपर गौर करना आवश्यक है. इस बातका फैसला करना कठिन है कि वह ऋषि मुख्य स्थानके गर्तोंग लिखते थे इससे अन्तर हुआ या इस कारणसे कि उन्होंने विरुद्ध कालमें लिखा. जब कि एकान्तवास करना आवश्यक था तो इसका असर वारिस होनेके नियमपर बहुत पड़ता, या जब कि स्त्रीको पतिकेसाथ जाने या न जानेका अधिकार था तो इससे घरके प्रबन्धमें बड़ा अन्तर पडता. परन्तु एक बातमें सन्देह नहीं है कि जब मनुष्य वनवासी हो जाता था तो उसको अनुमान करने और काम करनेमें बहुत छुटकारा था. वह बहुतसे व्योहार मानसिक कर सकता था. वह यज्ञका मनमें अनुमान कर लेता और यही उसके निमित्त आवश्यक था. थोडे दिनोंमें इसकीभी समाप्ति हो गई. अकसर वानप्रस्थ कठिन तपस्या करते थे ( जिसमें आत्मा वश हो. ) इसके बाद यह अनुमान उत्पन्न हो गया कि जो काम कि अपनी गरजसे वा पुनर्जन्ममें फल पानेकी उम्मेदसे किया जाय वह अलाभ था. इसलिये उनका यही काम रह गया कि अपना व आत्माका ध्यान करें. वनवासियोंमें बहुतसी आवश्यक बातें आर्यावर्तके इतिहासज्ञोंको जानना चाहिये. हम उनका वर्णन यहां नहीं कर सकते. दो बातोंको जान लेना चाहिये: प्रथम यह कि इस तृतीयाश्रमके पश्चात् व आन्तिकाश्रम संन्यासीका है, जो मनुष्योंसे विलग होकर एकाकी अरण्यवास भ्रमण कर मृत्युलोकको जाता है. संन्यासियोंको बहुधा ऋषि, भिक्षु, यती, परिव्राजक, व मुनिभी कहा है.

इनमे और वानप्रस्थमें अन्तर कठिनतासे ज्ञात होता है. प्रथम मुख्य यह अन्तर था कि प्रथम तीन आश्रमोंके लोग पुनर्जन्मके लाभ निमित्त श्रम करते थे, परन्तु संन्यासी सब कामोंको छोड़कर ब्रह्ममे अमृत होना चाहते थे. वनवासी मनुष्योंसे मिलते थे मगर संन्यासी दुनियांकी वार्तोसे भागते थे.

द्वितीय, हमको यहभी याद रखना चाहिये कि यह तीसरा आश्रम जो आर्यावर्तकी प्राचीन पुस्तकोंमे लिखा है—वरन हालके मनुशास्त्र व और किताबोंमेंभी है—जाता रहा थो. कदाचित् इस कारणसे ऐसा हुआ कि इससे वौद्ध लोगोंको[२] लाभ होता था. यह आश्रम वनवासका आन्तिक पद है और संसारमे एकान्तवास करना है. ब्राह्मणोंका मुख्य यत्न बहुत साफ था, अगर उसपर कोई सिड्डी सिड्डी जाये, और विना विद्यार्थी गृहस्थ हुए वनमे रहने या संन्यास धारण करनेकी इच्छा न करे। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १७५ मे एक पिता पुत्रकी वार्ता लिखी है जिसमे इस कठिनताको प्रगट किया है.

बाप अपने पुत्रको उपदेश देता है कि "आप्त पुरुषोंके मार्गपर चलो. प्रथम वेद पढो, सब विद्यार्थियोंके नियमपर चलो तब व्याह करके लड़के उत्पन्न करो, फिर यज्ञकुंड बनाकर यज्ञ करो, तब जंगलमे जाओ और मुनि होनेकी यत्न करो" लड़केको बापका उपदेश अच्छा न लगा. वह कहता है कि "गृहस्थाश्रम, स्त्री, लड़कों, और यज्ञ आदिमें जीवन निरर्थक है." उसने कहा कि "जो मनुष्य गांवमें

---

१ नारदः "मनुष्यके मरणानन्तर देवरसे पुत्र उत्पन्न कराना, अतिथि सत्कार निमित्त पशुवध कराना, प्रेतसंस्कारकेलिये मांसाहार कराना, और संन्यास धारण करना चौथे युगमें मना है."

आदित्यपुराणः—"पहिले युगमे जो कर्म थे वह चौथेमे न करना चाहिये, क्यों कि कलियुगमें पुरुष स्त्री पापासक्त होते हैं. जसे बहुत दिनोंतक विद्यार्थी रहना, जलका घड़ा ले जाना, पितृसंबंधी या मातृसंबंधित स्त्रोसे विवाह करना, वृषच यज्ञ करना."

२ आपस्तंभ सूत्रः १–६–१६–३१–जो मनुष्य विना धर्मशास्त्रके नियमोंके संन्यास ग्रहण करे उससे बचना चाहिये. यह टीकाकार समझाता है कि इस वाक्यसे अर्थ शाक्या ( दया ) या शाक्य ( बौद्ध ) का है.

रहता है उसकी प्रसन्नता मृत्युका दन्त (दाढ़) है, वनमे देवता रहते हैं जैसा शास्त्रसे मालूम होता है. जो मनुष्य गांवमें रहता है उसका सुख उसके बांधनेकेलिये एक रस्सी है. अच्छे मनुष्य उसको काटकर छूट जाते है, और विषयी पुरुष नही काटता है. ब्राह्मणकेवास्ते सबसे अच्छा कोष एकान्तवास, उदासीन, सत्यनिष्ठा, नीति, दया, सदाचार, सम्पन्नता, और कार्यसे अलग रहना है. हे ब्राह्मण! जब तुम मरनेको जाते हो तो धन, इष्ट, जन, स्त्रीसे क्या तुमको लाभ होगा! उस आत्माको ढूंढो जो तुह्मारे अन्तःकरणमें गुप्त है. तुह्मारे बाबा व बाप कहां गये."

यह सब बातें कल्पित या कविताई मालूम हों, मगर उनसे प्राचीन आर्यावर्तका पूरा जीवन मालूम होता है. हमको केवल आर्यावर्तीय पुस्तकोंसेही इस वनवासका समाचार नही जान पड़ता है वरन यूनानवालोंनेभी इसे लिखा है. उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि कस्बों, व गांवोंमे लोग कार्य काम करते थे मगर इनके साथीं आर्यावर्तके वनमें बहुतसे मुनि लोग रहते थे, यह वनवास हमको मनुष्यके जीवनपद्धतिका नवीन स्वरूपमें होनेके कारण बहुत श्रेष्ठ दिखाई देता है. यह जीवन कुछ कुछ उन ईसाई साधुओंके जीवनसे मिलता है जो चौथी सदीमे थे, परन्तु आर्यावर्तके संन्यासी बहुत लायक व बुद्धिमान् ज्ञात होते थे, और अच्छे स्थानपर रहते थे परन्तु ईसाई साधु खोहोंमे रहते थे. हम इन सवालोंका जबाब अभी अच्छी तरह नही देते हैं कि ईसाइयोंने एकान्तवास करनेका अनुमान बौद्ध जातियोंसे कहांतक लिया जो वानप्रस्थोंकी सन्तानमे थे, बौद्ध और रोमन क्याथलिक ईसाईके क्रियाकर्मके व्योहार बहुत मिलते हैं जैसे मुंडन, मठ, स्मर्णी, विरक्त स्त्रियोंका घर, गुरूके सामने अपने सब पापोंको स्वीकार कर कह देना, नैष्ठिक व ब्रह्मचर्य रहना. हम यह नहीं कह सक्ते हैं कि यह व्योहार एकही समयमे उत्पन्न हुए थे. इन ईसाई साधुओंको छोड़कर यह बात केवल आर्यावर्तहीमें थी कि लोग यह खयाल करते थे कि मयुष्यकी जिन्दगीमें एक ऐसा वक्त है जब कि वह संसारमे

कम आयुके मनुष्योंके निमित्त जगह खाली कर दे और एकान्त होकर इस जन्म और पुनर्जन्मके प्रश्नोंकी कल्पना करके मरनेकेलिये तैयार हो. इन बातोंको समझने और इनकी बुद्धिमानी जाननेकेलिये हमको यह न भूलना चाहिये कि हम हिन्दोस्थानका चर्चा करते हैं न कि यूरोपका.

हिन्दोस्तानमें जीवनके निमित्त वहुत कम परिश्रम करना पडता था. थोडे परिश्रममें पृथ्वीसे सब पदार्थ मिल जाते थे और जल, वायु ऐसी थीं कि वनवास करना अच्छा मालूम होता था. वनके आर्योंने जो नाम रक्खे हैं उनके अर्थ आनन्दस्थान हैं. यूरोपके मुल्कोंमें मनुष्योंको वहुत श्रम करना पडता था और वृद्ध पुरुष एक सभा वनाते थे जो दूसरी पीढीके लडकोंकी हिदायत करता था और वहुधा उनकी अच्छी चाहोंको रोकता था, मगर हिन्दोस्तानमे वृद्ध लोग खुशीसे अपनी जगह लडकोंको देकर चले जाते थे और अपना शेष जीवन शान्तिसे एकान्तवासमे गुजारते थे.

## वनवास ( अरण्यवास. )

हमको यह न अनुमान करना चाहिये कि प्राचीन आर्य हमसे कम बुद्धिमान थे. हमारी तरह वहभी यह जानते थे कि एक मनुष्य जंगलमे रह सकता है मगर उसके अन्तःकरणमे काम, क्रोध वसता है. उनको यहभी ज्ञात था कि यह हो सकता है कि एक मनुष्य कामकाजकी दुनियांमें रहे परन्तु उसका चित्त शान्त रहे और वह अपनी सत्यात्माकेसाथ अकेला रहे. याज्ञवल्क्यस्मृति ३—६५ में लिखा है कि " संन्याससे सद्गुण नहीं होता, और सद्गुण सत्कर्महीसे होता है. जिससे अपनेको दुःख हो वह काम दूसरेकेसाथ न करना चाहिये." ऐसेही विचार मनुस्मृति ६—६६ मे है: "जो सव चैतन्य पदार्थोंकी एक ओर अनुमान करें, वह चाहे किसी आश्रममे हो उसको अपना काम करना चाहिये; चाहें उसमें उस आश्रमके प्रगट चिन्ह न ज्ञात हों. उस आश्रमके प्रगट चिन्ह होनेसे कार्य पूरा नहीं होता है. " महाभारतमे

यही विचार वारम्वार आया है: "हे भारत ! आत्मनिग्रही पुरुषको वनकी क्या आवश्यक है ? और जो आत्मनिग्रही नहीं है उसको वनसे क्या लाभ है? आत्मनिग्रही जहां रहता है वही उसका वन है, वही उसकी कुटी है. ज्ञानी पुरुष अच्छे वस्त्र धारण किये हुए अपने मकानमे रह सकता है और यदि वह जिन्दगी फिर शुचिर्भूत रहे और कुकर्म न करे तो उसे मुक्ति होती है. त्रिदंड संन्यास लेना, मौनव्रत रखना, जटा वढाना, मस्तक मूंडना, छाल या खालके वस्त्रसे शरीर ढांपना, स्नान करना, अग्निहोत्र यज्ञ करना, वनवास, शरीरको तपावना इत्यादि वृथा हैं, यदि अन्तःकरण शुद्ध नहीं हैं."*

ऐसे अनुमान कालान्तरके कारण दिनपर दिन वढते गये और वौद्ध मतकी विजयतामें सहाय दी, जिसमे कर्मकाण्ड व उपासना निरर्थक अनुमान किये गये हैं. वौद्धोंके धम्मपद नंबर १४१–१४२ मे लिखा है: "जिस मनुष्यने अपनी चाहों (अभीष्टों) पर विजय न पाई, वह न नंगे रहनेसे, न जटा वढानेसे, न भस्म रमानेसे, न उपास करनेसे, न पृथ्वीपर पडे रहनेसे, न अंगमे धूलि लगानेसे, न निश्चल वैठे रहनेसे शुद्ध हो सक्ता है. वह जो सुंदर वस्त्र पहिने (परन्तु शान्त रहे) स्वाधीन व्रतस्थ है और दूसरोंमे दोष नहीं निकालता है वह शुद्ध, वह ब्राह्मण, व श्रमण, व भिक्षु है."

यह सव विचार वारम्वार आर्यावर्तके विद्वानोंके मनमे आते थे जिनका वर्णन सरल सुन्दर भाषामें उनके धर्मविषयक और पौराणिक पुस्तकोंमे है! मै यहां केवल महाभारतके शान्तिपर्व अध्याय ३२० का चर्चा करूंगा. जिसमे जनक और सुलभाकी वार्ता लाभ है. सुलभा एक सुंदर स्त्रीके वेषमे जनकको दोष देती है कि तुम ऐसा अनुमान करनेमे धोखा खाते हो कि तुम एकही वक्तमे राजा व ऋषि हो सकते हो, संसारवासमेंही संसारसे वाहर नहीं हो सक्ते हो. यह वही राजा जनक विदेहनगरके हैं

* वनपर्वः—॥ त्रिदंड धारणं मौनं जटाभारोऽथ मुंडनं॥ वल्कलाजिनसंवेष्टं व्रतचर्याभिषेचनम् ॥ अग्निहोत्रं वने वासः शरीरपरिशोषणं ॥ सर्वान्येतानिमिथ्यास्युर्यदिभावो न निर्मलः ॥

जो यह कहते थे कि उनकी राजधानी मिथिला जल जाय तो उनका कोई पदार्थ न जलेगा. प्राचीन ब्राह्मणोंका यह अनुमान स्थित रहा कि प्रथम व द्वितीयाश्रमके पश्चात् जब मनुष्य ५० वर्षका हो तो उसको पीछे आगेका ख्याल करना चाहिये, और आराम करना चाहिये. आजकल हम लोग कार्यके ऐसे आशक्त है कि ५० वर्ष उपरान्त आयुको हम अच्छे साल कहते हैं.

इस मौकेपर इतिहासिक वादकी आवश्यकता नहीं है कि किस तरीकेसे हमारी उन्नति या अवनति है ? हमको उस बातको दोष न देना चाहिये जो हमें नवीन ज्ञात हो या उस बातकी तारीफ (प्रशंसा ) न करना चाहिये जो हमें ज्ञात हो. हमारे बुढ्ढे पुरुषोंने बहुधा अच्छे अच्छे काम किये लेकिन उन्होंने बहुत बार नवयौवनोंके अच्छे अनुमानोंको रोका और ठंढा कर दिया. यह बात सही है कि नवयौवन मनुष्य वूढ़ोंको और वृद्ध युवोंको मूर्ख जानते हैं परन्तु बहुतसे मनुष्योंकेलिये यह कहनाभी ठीक नहीं है कि जब उनके अन्तःकरणका बल घट जाता है तो वह अपना अनुमान बुरे कामोंमे लगाते है. और याद रक्खो कि यह वनका वास जोरावरी नहीं था, और जो शख्स विद्यार्थी व गृहस्थाश्रम सुप्रकार नही करता था वह इस आश्रममे नहीं आ सकता था. मानुषी अभीष्टोंके रोकनेकेलिये उसके नियमपर चलना आवश्यक था. जीवनके आरम्भीय कालमें उसे बहुत कम अधिकार था. विद्यार्थीको जो शिक्षा दी जाय वही उसको मानना चाहिये और उसी तरह पूजा व यज्ञ करना चाहिये. वेद उसके निमित्त पवित्र पुस्तक था, वह उसको अलौकिक मानता था, जिस तरहपर हिन्दोस्थानमें वेदको ईश्वरप्रेरित मानते थे. इस तरह और किसी संसारके धर्मग्रंथमें नहीं है परन्तु जैसे मनुष्य तीसरे दर्जेमें जाता था एकदमसे उसकी वेडियां तोड दी जाती थीं. थोडे दिन वह स्वेच्छासे उपासना कर सकता था, संध्या, जप, तप कर सकता था जिसकी उसने लड़कपनमें याद किया था; मगर मुख्यकर उसको उस आत्माके विचारपर ध्यान रखना है जिसका प्रगट उपनिषदमें हुआ

है. जितनाही वह अपने प्राचीन पदार्थोंको छोड़ता था और अपनी आत्माको पाता था, उसी कदर नियम, व्योहार, वर्ण और धर्मकी बेड़ियां उसकी कट जाती थीं. अब वेद उसकेलिये पूर्ण ज्ञान नहीं दे सकते थे, यज्ञ उसे रोकता था, और प्राचीन देवता अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, विश्वकर्मन् व प्रजापति केवल नाममात्र हो गये, एक अद्वितीय आत्मा रह गया और सबसे बड़ा ज्ञान इन शब्दोंमे हुआ "तत् त्वं" तू है वह, तू अविनाशी हैं, यह बातें जाती रहतीं हैं, सब श्रेष्ठ पदार्थ स्वमकी तरह नाश हो जाते हैं, केवल परमात्मा तत्वस्वरूप रहता है, और आत्मा सत्य ब्राह्मण होता है.*

---

## उपसंहार.

यहां उस लम्बे देशाटनकी इति है जिसमे हम चले थे. यहां हमने सबसे ऊंचे और पवित्र स्वरूपमें अनन्तको देखा, जो पर्वतों, नदियों, सूर्य, आकाश, असीम ऊषा, विश्वकर्मन् और प्रजापतिके पर्देमे था. आर्यलोग प्रश्न करते थे कि क्या वह उसे समझ सकते हैं? उनका उत्तर था कि "हम सिवाय नहीं नहीं के और कुछ जवाब नहीं कह सकते." वह यह नहीं हैं, वह वह नहीं है, वह बनानेवाला नहीं है, वह पिता नहीं है, आकाश या सूर्य नहीं है, नदी या पर्वत नहीं है, हमने जो कुछ उसका नाम रक्खा वही वह नहीं है, हम उसका विचार नहीं कर सकते, न उसका नाम रख सकते हैं

---

* मैने आत्माके स्थान ब्राह्मणका शब्द बर्ताव नहीं किया क्यों कि अभी तक मुझे इसका ठीक धातु नहीं ज्ञात हुआ. कोई स्पृश्य पदार्थ अवश्य होगा जिससे यह नाम पड़ा, परन्तु इसमे संशय है कि वह कौन पदार्थ है? इसमें बहुत कम संशय हो सकता था कि ब्राह्मणका धातु "बृह" है आर्यावर्तके वैयाकरणोंने इस धातुके अर्थ उभारना, यत्न करना, व बढ़ानेके लिखे हैं, इन तीनोंसे एक मतलब धक्का देना है जिससे बढ़नेका प्रयोजन होगा. यास्क निरुक्तकारने इसके अर्थ अन्न व द्रव्यके लिखे हैं; सायणाचार्यनेभी यही अर्थ स्वीकार किये हैं और उसमें मंत्र, स्तोत्र, यज्ञ और बृहत्के अर्थ बढ़ा दिये हैं.

मगर उसका होना हमको मालूम होता है. हम उसको ज्ञात नहीं कर सकते परन्तु हम उसका अनुमान कर सकते हैं, और अगर हम एक मर्तबा उसको पावें तो उससे छूट नहीं सकते. हम शान्त हैं, मुक्त हैं, सुखी हैं. प्राचीन आर्य मरनेके थोड़े वर्षों पहिले इन्तिजार करते थे. वह अपनी आयु बढ़ानेकी कोशिश नहीं करते थे, आत्महत्याको पाप समझते थे. वह धरतीपर उस जीवनको प्राप्त हो गये थे जिससे उनको निश्चय हो गया था कि किसी नवीन जीवन व मरणसे उस आत्मासे अलग नहीं हो सकते थे जिसको उन्होंनें पाया है.

वह लोग आत्माके बिलकुल नाश हो जानेमे निश्चय नहीं करते थे. वह वार्ता तुझे याद होगी जिसमें इन्द्र आत्माको खोजते थे.पहिले वह आत्माको पानीके छायेमे ढूंढ़ता है तब स्वप्न देखते हुए जीवमे, इसके बाद उस जीवमें जो अचेत निद्रामें हो इसपरभी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ और कहा:—

"नही, यह नही हो सकता क्यों कि सोनेवाला अपने आपहीको नहीं जानता है, और न और किसी पदार्थको जानता है, वह बिलकुल नष्ट हो गया है, इसमे कोई अच्छाई नहीं है."

गुरूने उत्तर दिया, "यह शरीर मर्त्य है, मृत्युके करमे है, मगर इसमें आत्मा रहता है जो अमर व अकाय है. जबतक तुह्मारा शरीर है और तुम समझते हो कि यह शरीर मेरा है और मै शरीर हूं तबतक आत्मा सुखदु:खमे रहता है. जबतक यह शरीर है तबतक दु:ख सुख नहीं जा सकता मगर जब आत्मा शरीरसे रहित हो (जब मनुष्य जानता है कि उसके और उसके शरीरमे अन्तर है) तब दु:ख सुख उसकेपास नही आ सकते. परन्तु यह शान्त आत्मा या उत्तम पुरुष नष्ट नही होता केवल वह फिर अपनेमे आ जाता है. आत्मा हंसता है, खेलता है, प्रसन्न होता है, मगर कभी उस शरीरका ख्याल नहीं करता जिसमे वह उत्पन्न हुआ. वही आत्मा आंखमे है, आंख केवल एक कारण है. वह जो जानता है कि मै यह कहूंगा, मै यह सुनूंगा, मै यह विचार करूंगा, वही आत्मा है. जीभ, कान, अन्त:करण केवल मार्ग हैं. आत्माकी दिव्य दृष्टि मन है और

इसीसे आत्मा सब सुन्दर पदार्थोंको देखता है और प्रसन्न होता है.

इससे हमको मालूम हुआ कि आर्यावर्तके वनवासियोंके धर्मी तत्वज्ञानका बड़ा नतीजा यह नहीं था कि आत्मा नाश हो जाता है. आत्मा स्थित रहता था. यदि किसी बादशाहके पुत्रको किसी अधर्मीने लेकर पाला तो वहभी अधर्मी है, मगर जब उसका कोई मित्र उसको बतलाता है कि वह शहजादा है तब वह शहाज़ादा हो जाता है और अपने पिताके तख्तपर बैठता है. इसी तरहपर जबतक हम अपनी आत्माको नहीं जानते तबतक हम वही हैं जो मालूम होते हैं, मगर जब एक स्नेही मित्र हमारेपास आता है और बतलाता है कि हम क्या हैं, तब पलभरमे हम बदल जाते हैं, हम अपने आत्मामे आ जाते हैं, हम अपनी आत्माको जानने लगते हैं, हम आत्मा होते हैं, जैसे कि वह नौजवान शाहज़ादा ( राजपुत्र ) अपने पिताको जानकर स्वयं राजा हो गया.

## धर्मविचारका सिलसिलेवार बढ़ाव.

हमने वैदिक धर्मको सीढ़ी सीढ़ी बढते देखा. अत्यन्त बालकोंकी तरह स्तुतियोंसे हम विचारके अनन्त दर्जेपर पहुंचे. वैदिक बहुतसे ऋचाओंमे हम धर्मकी बाल्यावस्था देखते हैं, ब्राह्मण, यज्ञ, और गृह्यसूत्रोंमे कामकाजकी जवानी देखते हैं, और उपनिषदोंमे वैदिक धर्मका बुढापा देखते हैं. हम बखूबी समझ जाते अगर ब्राह्मणोंमे पहुंचकर आर्य लोग अत्यंत बालकोंकी तरह स्तुतियोंको छोड़ देते और उसके बाद जब उनको यज्ञ व देवताओंका असली हाल मालूम हो गया था तो वह उनको छोड़कर उपनिषदके उपर चलते, मगर ऐसा नहीं हुआ. हिन्दुस्थानमें जो धर्मकल्पना एक मर्तबा हुई और पवित्र वस्तुकी तरह मानी गई तो कल्पना स्थित रहती थी, और हिन्दुस्थानियोंके धर्मयुगके लड़कपन, जवानी, बुढापेके अनुमान जीवनके तीन आश्रमोंमे लगाए गये थे. यही कारण है कि वेदहीमें विरुद्ध प्रकारके मत लिखे हैं और ऐसे नियम लिखे हैं जो एक दूसरेसे

विरुद्ध हैं. वेदकी ऋचाओंमे जो देवता थे उनको हम उस समय देवता नही कह सकते थे जब कि ब्राह्मणोंमे प्रजापति सजीवोंका अध्यक्ष के धनीका चर्चा हुआ. यह सब देवता उस समय बेकाम हो गये जब कि उपनिषदोंमे यह मालूम हुआ कि ब्रह्म सब पदार्थोंका कारण है और मनुष्य आत्माकी एक चिनगारी है.

यह प्राचीन धर्म शत सहस्रों वर्ष स्थित रहा और यदि थोडे दिनोंकेलिये निर्बल हो गया तो फिर उसमे पुष्टता आ गई. जैसा समय व जैसी ऋतु हुई वैसाही होता गया. वर्तमानमेभी ऐसे ब्राह्मणोंके कुटुंब हैं जिनका जीवन श्रुति अनुसार होता है और स्मृतिके अनुकूलभी जो उनके परम्पराकी चाल है.

अबभी ऐसे ब्राह्मणोंके कुटुंब हैं जिनमे बालक प्राचीन मंत्र याद करता है और बाप वैदिक विधिसे दैनिक यज्ञ करता है, और बाबा ( बापका बाप ) गांवमे रहकर यज्ञ और व्योहारको व्यर्थ समझता है और वैदिक देवोंको जानता है कि उनमे वह स्वरूप हैं जो नामरहित है और उत्तम ज्ञानको ढूंढ़ता है जिसको वह उत्तम धर्म समझता है अर्थात् वेदान्त जो कुल वेदका अन्त है उसपर चलता है. तीन पीढ़ी एकसाथ सुखमे रहती हैं. बाबाको बहुत ज्ञान है मगर वह अपने लड़के व पोतेको तुच्छ नही समझता है, वह जानता है कि उनके ज्ञानके दिन आयेंगे और यह इच्छा नहीं करता है कि वह उस ज्ञानको अभीसे समझ लें. पुत्र अपने धर्मको विधिसे करता है मगर अपने पिताके प्रतिकूल नही बोलता, वह जानता है कि उसका पिता तंग रास्तेसे निकल गया और अब फन्दोंसे छूट गया.

यहभी एक पाठ है जो हमको धर्मके ऐतिहासिक ज्ञानसे मालूम होता है.

जब हम देखते हैं कि हिन्दोस्थानमे प्राचीनकालसे अग्निके पुजारी इन्द्रके पुजारियोंकेसाथ रहते थे, और जब हम देखते हैं कि प्रजापति (सब जीते हुए प्राणियोंका धनी) का पुजारी उनको तुच्छ नहीं समझता था, जो छोटे छोटे देवताओंकेलिये यज्ञ करते थे, और जब हम देखते हैं कि वह लोग जो देवताओंका केवल एक नाम उस परमात्माका

समझते थे उन देवताओंको बुरा नहीं कहते थे और न उनका यज्ञ-कुंड तोड़ते थे जिनकी वह प्रथम पूजा करते थे. तो हम कितनेही बुद्धिमान् और श्रेष्ठ हों तबभी हम वैदिक हिन्दुस्तानियोंसे बहुत कुछ सीख सकते हैं.

मैं यह नहीं चाहता कि हम लोग ब्राह्मणोंकी तरह काम करने लगें या चारों आश्रम और धर्मको वर्तने लगें. आजकलके जीवनपर ऐसा वश नहीं चल सकता. कोई मनुष्य इस बातको न मानेगा कि पहिले तो वह नियमपर चलै और उसके बाद सत्य धर्मपर चले. हमारी शिक्षा वैसी नहीं होती है जैसी हिन्दुस्तानमे पहिले होती थी. वर्तमान समयमे प्रति मनुष्यको इस बातका अभिमान है कि वह सब काम अपनी इच्छासे करे. वह धर्मशास्त्र—जिसपर आप लोग चलते थे उसपर वर्तमानके लोग न चलेंगे. हिन्दोस्तानमेभी हमको नियम ज्ञात है, मगर यह नहीं मालूम है कि लोग उनपर क्यों चलते थे ! हिन्दुस्तानके इतिहाससे हमे मालूम होता है कि ब्राह्मणके नियमकी बेड़ियां अन्तको टूट गईं, क्यों कि जब बौद्ध मत प्रबल हुआ तो यह इच्छा उत्पन्न हुई कि सब मनुष्य अपनी इच्छानुसार काम कर सकते हैं, और लौकिक आचार विचारको छोड़ सकते हैं और बनवास कर बिलकुल एकान्तवास कर सकते हैं. सबसे बड़ा दोष ब्राह्मणोंने बौद्ध मतपर यह रक्खा कि वह चले जाते थे, कि उन्होने नियमके बंधन तोड़ डाले, और उन प्राचीन रीतियों और कर्मकाण्डोंपर नहीं चले जो कि संसार अलग होनेके पूर्व आवश्यक थे.

हम पुराने आर्योंके पुरानी अनुमानिक जीवनपर नहीं चल सकते और आजकल वह समय नहीं है कि जब हम संसारके कामकाजसे थक जायें तो हम जंगलको चले जायें. इस समयमे बहुधा इसी बातमे प्रतिष्ठा है कि हम कामकाज करते मर जायें. यह सब कुछ है मगर तबभी हिन्दोस्तानके पुराने बनवासियोंसे हम कुछ सीख सकते हैं. हमको यह न सीखना चाहिये कि उदासीन रहें, लेकिन हम यह जान सकते हैं कि जिस तरह जीवन बाजारमें कटती है उससेभी बढ़कर जीवन

है; हम सहनशीलता और मनुष्यपर अनुकम्पा, दया, और प्रीति सीखते हैं कि चाहें हम बाजारमे रहें और बनको न जाएं तबभी हम यह सीख सकते हैं कि हम उनसे प्रीति करें जो हमारे धर्मके अनुमानके कारण हमसे घृणा करते हैं, या हम यह सीख सकते हैं कि हम आप उनसे घृणा न करें जिनके निश्चय और जिनके विचार और कल्पना और चालचलनके कायदे हमसे विरुद्ध हैं. यहभी बनवास है, यहभी वह जीवन है कि जो एक सच्चे जंगलके साधुका है, जो जानता है कि मनुष्य क्या है और जीवन क्या है; जो अनन्त परमात्माके सन्मुख कुछ नहीं कहता.

ऐसी बातोंको दोष देना बहुत सरल है. कोई कोई लोग कहते हैं कि यह खाली उदासीनता है, और कोई कहते हैं कि यह अप्रामाणिकपन है कि बाल्यदशा, युवा, वृद्धदशाके निमित्तकेलिये विरुद्ध आश्रम हों, और प्रति आश्रममे विरुद्ध धर्म हों, और कोई इसको सबसे बढ़के अप्रामाणिक कहते हैं कि पढ़े व अनपढ़े मनुष्योंके धर्ममें अन्तर हों.

लेकिन हमको देखना चाहिये कि मुख्यकरके कैसा होता है और कैसा है और कैसा अवश्य होगा?

क्या बिशप् बर्क्ले या न्यूटन (प्रसिद्ध पदार्थविज्ञानशास्त्री) का वही धर्म था जो एक हल जोतनेवालेका होता है. कोई बातोंमे है और बहुत बातोंमे विरुद्ध है. इस बातमें इन्कार कभी न होता कि वह और एक मूर्ख हल जोतनेवाला एकही जगह ईश्वर उपासना करें, मगर यह बड़ा तत्वज्ञानी ईश्वरसे जो प्रयोजन समझता वह उससे विरुद्ध होता जो कि वह हल जोतनेवाला समझता. हमको औरोंका अनुमान न करना चाहिये बल्कि हम अपने आपहीको देखें कि लड़कपनसे बुढ़ापेतक हमारे अनुमानोंमे कितना अन्तर हो जाता है? कौन ऐसा इमानदार (प्रामाणिक) है जो कह सकता है कि उसकी युवाका धर्म वही था जो लड़कपनका था, या हमारे बुढ़ापेका वही धर्म है जो जवानीमे था. यह कह देना सरल है

कि लड़कपनकी श्रद्धा बहुत पक्की थी, यह सत्य है कि वृद्ध होकर हम समझते हैं कि लड़कपनकी श्रद्धामे बहुत बुद्धिमानी थी.

परन्तु हमको यहभी ज्ञात हो जाता है कि लड़कपनके पदार्थोंको तजना चाहिये. सूर्योदय और सूर्यास्तसमय एकही प्रकाश है, मगर दोनोंके मध्यमें एक पूरी दुनियां, पूरा आकाश, और पूरी पृथ्वी है. एक यह प्रश्न होता है कि एकही शब्दका वर्ताव करना शुद्ध है या नही कि ईश्वरकेनिमित्त एक या बहुतसे नाम रखना चाहिये या नहीं? क्या अग्निका नाम वैसाही अच्छा है जैसा प्रजापतिका. क्या उर्मज़द वैसाही नाम है जैसा अल्लाहका? हमको ईश्वरके विशेषण अच्छी तरह नहीं मालूम हैं मगर तवभी वहुतसे क्या ऐसे विशेषण नहीं हैं जो बिलकुल अशुद्ध हों. हम अच्छी तरह ईश्वरपूजा नहीं जानते मगर क्या कोई कोई विधि पूजाकी ऐसी नहीं हैं जो छोड़ देनेके योग्य हैं.

इन प्रश्नोंके कोई उत्तर ऐसे हैं जिनको हर मनुष्य मान लेगा, मगर जिनका मतलब नहीं समझेगा. " सच मुच मै देखता हूं कि ईश्वर किसी मुख्य मनुष्यका सत्कार नहीं करता है, मगर प्रति जातिमें जो उसे डरता व भलाई करता है ईश्वर उसका आदर करता है. प्रति मनुष्य जो मुझको हे प्रभु! हे प्रभु! कहेगा वह स्वर्गलोकमे नहीं जायगा, वरन वह मनुष्य जायगा जो मेरे दोस् पितरकी इच्छाके अनुकूल करेगा." इन्‌जील, सेण्ट मैथ्यू ७–२१.

यदि यह साक्षी उपयोगी नहीं है तो हम ईश्वरका इस तरहपर अनुमान करेंगे जिससे हमारी कठिनता जाती रहेगी. हम ईश्वरको पिता और मनुष्योंको उसका लड़का अनुमान करें जब प्रथम प्रथम किसी न किसी शब्दसे लड़का अपने पिताको पुकारता है तो पिता उसका कुछ अनुमान नहीं करता. पिताको बड़ी खुशी होती है कि लड़का तुतराती हुई निरर्थक शब्दमे उसका नाम लेना चाहता है. उस शब्दसे बढ़कर किसी बड़े औ प्रतिष्ठित नामसे पिताको प्रसन्नता नहीं होती. अगर एक लड़का हमको एक नामसे पुकारता है और दूसरा दूसरे नामसे—तो हम उन्हे दोष देते हैं? क्या हम उनसे कहते

हैं कि हमको एकही नामसे पुकारो!—क्या हम इसको पसंद नहीं करते कि हर लड़का भांति भांति लरिकाईके ढंगसे हमें पुकारे?

यह तो नामोंकेलिये हो गया. अव हम कल्पनाके वारेमें चर्चा करेंगे. जव वालक विचार करना प्रारम्भ करते हैं तव वह समझते हैं कि उनके माता पिताको सव शक्ति है, कि उनके माता पिता उनको आकाशके नक्षत्र दे सकते हैं, उनका दर्द दूर कर सकते हैं, उनके अपराध क्षमा कर सकते हैं, क्या पिता लड़केके ऐसे अनुमानोंको शुद्ध करता है, क्या पिता नाराज हो जाता है जव लड़के उसको कठोर कहते हैं, क्या माता अप्रसन्न हो जाती है जव लड़के उसको वहुत मिहर्वान व दयालु समझते हैं.

लड़के अपने माता पिताके मतलवको अच्छी तरह नहीं समझ सकते हैं, मगर जवतक वह अपने लड़काई तरीकेसे अपने माता पिताको प्यार करते हैं तवतक और क्या चाहिये? पूजामें यह खयाल हम लोगोंको कितना वुरा मालूम होता है कि हम एक वैल मारकर ईश्वरको प्रसन्न कर दें, मगर कौन माता ऐसी है जो रोटीके उस मीठे टुकड़ेके लेनेसे इन्कार करेगी जो उसका वालक अपने मुखसे काटकर मैली उंगलियोंसे उसे देता है, चाहें और देखनेवाले इसको वुरा मानें, चाहें माता उस टुकड़ेको न खाए, मगर वह ऐसा अवश्य करेगी जिससे यह ज्ञात हो कि उसने उस टुकड़ेको खा लिया और वह वहुत अच्छा था.

वात यह है कि जवतक निर्मल शुद्ध अन्त:करणसे यह वात होती है तवतक हम अपने लड़कोंको कभी दोष नहीं देते कि उन्होंने हमारे नाम अशुद्ध रक्खे या उनके अनुमान अच्छे न थे. हम कुछ खयाल नहीं करते हैं जव छोटे छोटे वालक वह शब्द वर्तते हैं जिनको वह नहीं समझते और व्यर्थ वातें करते हैं और एक दूसरेसे झगड़ते हैं. मनुष्यका स्वभाव अच्छा दर्पण नहीं है जिसमे ईश्वरका प्रतिविंव हो मगर हमें इस दर्पणको तोड़ना नहीं चाहिये किन्तु और प्रकाशके रखनेकी कोशिश करना चाहिये. वह दर्पण विलकुल शुद्ध

नहीं है मगर हमारेलिये वह शुद्ध है और अगर हम थोड़े दिनों उसको शुद्ध माने तो वहुत हानि न होगी.

हमको याद रखना चाहिये कि यह वात संभव है और खयालमे आ सकती है कि अज्ञात और अनन्तको हम जिस स्वरूपसे मानते हैं वह सत्य हों, गो हम मनुष्य हैं और हमारे दृष्टि वहुत दूर नहीं जा सकती.

प्राचीन ब्राह्मणोंकी निश्चय थीं कि उसका अन्त वैसाही होगा जैसा शुद्ध या अशुद्ध उसके अन्तःकरणमें विचार होगा. उनका विचार था कि पुनर्जन्म श्रद्धानुसार होता है, वह विचार करते थे कि जो लोग धरतीके पदार्थोंकी इच्छा करते हैं उनको वही पृथ्वीके पदार्थ प्राप्त होंगे, और जिनके विचार पारलौकिकि हैं उनको अलौकिक सुख मिलेगा.

अगर हम यह विचार करें कि अज्ञात और अनन्तकीजैसी कल्पना हम करते हैं वैसी न होगी, और फिर हमारा मेल जैसे धरतीपर हुआ न होगा, तो वह दलील कहां है जिससे हमको यह ज्ञात हो कि हमारे निर्मल हृदयकी जो इच्छा है वह पूर्ण न होगी. श्रद्धा उस निश्चयको कहते हैं कि जो कुछ होगा सो अच्छा होगा. इसका पता हमे वहुतसे धर्मोंमे मिलता है, मगर इंजीलमे वहुत साफ तौरपर है " जवसे संसार आरंभ हुआ तवसे, हे ईश्वर ! तेरेशिवाय किसी मनुष्यने नहीं सुना, न कानोंसे जाना, न आंखसे देखा कि मनुष्यकेलिये जो होना है वह क्या है ?" ( यशाया ६४–४ ) " परन्तु जैसा लिखा है, उन पदार्थोंको जो ईश्वरने उसकेलिये ठीक की हैं, जो उसको प्यार करता है, उनको नेत्रोंने नहीं देखा है, कानने नहीं सुना है, न मनुष्यके अन्तःकरणमे आई है. " ( करिंथकरांस १ लां पत्र–२, ८ ) हम जो चाहें सो कहें मगर मनुष्यकी सवसे वड़ी कल्पना मनुष्यही है. एक पग आगे हम वढ़ सकते हैं और यह कह सकते हैं कि अन्तसे जो कुछ है वह इसके विरुद्ध है, मगर वह उपस्थित दशासे वुरा नही हैं. भविष्यत्काल भूतकालसे वुरा नहीं हो सकता, मनुष्य

इस वातको मानते हैं कि जो कुछ है वह उत्तम है. ( Evolution ). ( प्रति पदार्थ उन्नति करता है ) के कायदेसे हमको इस वातका निश्चय होता है कि मनुष्यका भविष्य अच्छा होगा और प्रति दिन उन्नति होती जायगी.

ईश्वरी अंश यदि हमको दिखलाई पड़ेगा तो उत्तम तरहसे मनुष्य-स्वरूपहीमे होगा. ईश्वरसे मनुष्य कितनाही दूर हो परन्तु धरतीपर मनुष्यसे अधिक कोई पदार्थ ईश्वरके समीप नही है और न धरतीपर सिवाय मनुष्यके कोई पदार्थ ईश्वरकीतरह है. जिस तरह मनुष्य वाल्यसे वृद्ध होता है उसी तरह ईश्वरकी कल्पना हमारे झूलेसे मरघट ( स्मशान ) तक वढ़ती जाती है और एक आश्रमसे दूसरे आश्रमको पहुंचते हैं. जो धर्म हमारेसाथही साथ नहीं वढ़ता है वह निर्जीव है. एक तरहपर रहना प्रामाणिक व जीव होनेका चिन्ह नहीं है, वल्कि निर्जीवता व अप्रामाणिकका चिन्ह है. जो धर्म कि विद्वान् व अविद्वान्, सज्ञान व अज्ञान, वृद्ध और युवाका वन्धन हो तो उसको लचीला, ऊंचा, गहरा, चौड़ा होना चाहिये, जिसमे सव पदार्थ-का निर्वाह हो, सव पदार्थपर प्रमाण हो, सव पदार्थकी आशा हो. जितने ये पदार्थ उसमे अधिक होंगे उतनीही उस धर्ममे सामर्थ्य, सजी-वता और शक्ति होगी. ईसाईयोंका धर्म इसीलिये संसारमे वहुत फैला क्यों कि उसमे और मजहवोंके विरुद्ध वह सत्यताएं आरंभमेही वता दी गई जिनमें यहूदी वढ़ई, रूमके शराव वेचनेवाले, और यूनानके तत्वज्ञानी, प्रमाणसे शामिल हो सकते थे. ईसाई-मतमे निश्चयके प्रगट चिन्हके रोकनेमे पहिलेसे कोशिस की गई, प्रेम व श्रद्धाकी जगह तंग नियम रक्खे गये जिसका नतीजा यह हुआ कि वहुतसे लोग इसमेसे निकल गये और ईसाई मतमे जो दया व भक्ति कि संसार-भरकेलिये होना चाहिये थी नही रही.

---

# पश्चादवलोकन.

हम एक वार फिर उस मार्गको देखते हैं जिसपरसे होकर आये. यह वह प्राचीन मार्ग है जिसपर हमारे आर्यपुरुष चले थे, जो पंजावकी सात नदियोंकी पृथ्वीमे आकर वसे थे और उन्होंने कई सहस्र वर्ष हुए इसी मार्गपर चलकर अनन्त, अदृश्य, व दिव्यकी खोज की थी. जैसा अनुमान किया गया था उन्होंने पदार्थपूजासे आरम्भ नहीं किया था. पदार्थपूजा पीछेसे आरम्भ हुई. आर्यावर्तके धर्मज्ञानकी वहुत प्राचीन पुस्तकोंमे इसका कहीं पता नहीं है. हम यहभी कह सकते हैं कि पदार्थपूजाकेलिये उस कालमे कहीं स्थानभी न था. प्राचीन पवित्र पुस्तकोंमें उसका पताभी नहीं है जिसको हम आद्य प्रेरणा अर्थात् आकाशवाणी कहते हैं. जो कुछ है वह स्वाभाविक है और समझमे आता है. इन्द्री और वुद्धि ज्ञानके सिवाय धर्मवासना अथवा श्रद्धाकी हमको आवश्यकता नहीं पडी. यदि हम ऐसा करतेभी तो हमारे विरुद्धी लोग उसको नहीं मानते. यदि हम धर्मको श्रद्धा या धर्म्मवासनासे समझाते तो हम एक ज्ञात पदार्थको कम ज्ञात पदार्थसे समझाते. मुख्य श्रद्धा या धर्म्मवासना वही है जिससे अनन्त मालूम होता है.

हमने प्राचीन आर्योंके कार्मोको केवल इंद्रियवल व वुद्धिसे समझाया. इसको हम और हमारे विरुद्धी दोनों मानते हैं. सिवाय इन दोनों वातोंके और शक्ति मनुष्यमे नहीं है, यदि किसी अन्य शक्तिका मनुष्य ध्यानभी करे तो उससे कुछ लाभ नहीं होता.

इस तरहपर हमने देखा कि इन्द्रियोंसे हमको वह पदार्थ ज्ञात हुए जिनका अन्त है, और वह पदार्थभी समझमे आये जिनका अन्त नहीं है, या जिनका अभी ज्ञान नहीं है. इंद्रियोंका मुख्य काम यह है कि अनन्तसे सान्त, और अदृश्यसे दृश्य, और अस्वाभाविकसे स्वाभाविक, और जो सृष्टि चमत्कारिक नहीं है उससे चमत्कारिक सृष्टि ज्ञात हो.

इस तरह इंद्रियोंका संबंध जो अनन्तसे हुआ तो इसीसे धर्म उत्पन्न हुआ, अर्थात् उस शक्तिका ध्यान हुआ जो इन्द्रियोंसे ज्ञात न होती थी और जो बुद्धि और भाषासे समझमे न आती थी.

सब धर्मोंका मूल यही था. इससे वह पदार्थ समझमे आता है जिसका समझना पदार्थपूजा, मूर्तिपूजा, प्राणिपूजा, मानवपूजासे अधिक आवश्यक था. इससे ज्ञात होता है कि जो पदार्थ इंद्रियोंसे मालूम होते थे उनसे मनुष्यको भ्रांति नहीं होती थी और मनुष्यको यह ध्यान होता था कि जिन पदार्थोंको वह छू सकता है, सुन सकता है, देख सकता है, उनसेभी बढ़कर कोई पदार्थ संसारमे है.

वेदग्रंथोंमे खोजनेसे जब हम एक पुष्ट पर्वतशिखरतक पहुंचे तो हम बराबर खोदते चले गये कि हमे उन प्राचीन स्तंभों व मिहराबोंका पता लगे जो बडी पुष्ट पहाड़ीपर बने थे और जिनपर आर्यावर्तका धर्ममंदिर स्थापित था. हमने देखा कि जब मनुष्यको यह मालूम हुआ कि ससीम पदार्थोंसे बढ़करभी कोई पदार्थ है तो आर्य लोग उसको प्रति स्थान ढूंढने व नाम रखने लगे. प्रथम अर्द्धस्पृश्य पदार्थोंमे, तत्पश्चात् अस्पृश्य पदार्थोंमे और सबसे अन्तमे अदृश्य पदार्थोंमे ढूंढा. जब अर्द्धस्पृश्य पदार्थोंको लिया तो मनुष्यकी इन्द्रियोंने बताया कि इसका थोड़ासा हिस्सा मालूम हो सकता है मगर वह उसीमे था. जब अस्पृश्य पदार्थको लिया और अदृश्य पदार्थको लिया तो उसको इंद्रियोंने बताया कि उनका कोई भाग ज्ञात नहीं हो सकता मगर वह उन्हींमे था. इस तरहसे एक नया लोक उत्पन्न हो गया जिनमे तर्द्धस्पृश्य, अस्पृश्य व अदृश्य पदार्थ थे, और जो उसी तरह काम करते थे जैसे मनुष्य करता है, और उनके वही नाम हुए जो मनुष्यके थे. इन नामोंमेसे कोई कोई नाम एकसे अधिक अदृश्य पदार्थोंके हुए अर्थात् वह सर्वसाधारण नाम हुए जैसे असुर=सजीव पदार्थ, देव=प्रकाशक पदार्थ, देवासुर=सजीव देव, अमर्त्य=अमर देव, इत्यादि.

हमने यहभी देखा कि बहुतसी धर्मकी कल्पना, जो बहुत भाव

वाचक हैं, वह इन्द्रियोंसे भाववाचक हुए और निकले, यहांतक कि नियम, सद्गुण, अनंतत्व, अमृतत्वकी कल्पनाभी इसी तरह हुई. यदि मुझे फुर्सत होती तो मैं दिखलाता कि मृत्युके अनुमानसे मनुष्यके मनपर क्या क्या असर पड़े और उनसे धीरे धीरे वह कल्पना किस तरह हुई जिसको हम श्रद्धा ( Faith ) और आकाशवाणी श्रुति ( Revelation ) कहते हैं.

वहुधा लोग इसके विरुद्धभी कहते हैं, मगर आर्यावर्तमेभी पहिले पहिले धर्मकी आवश्यक वातें उन मनुष्योंपर अनुमान करनेसे उत्पन्न हुईं जिनको मृत्युने हमसे पृथक् कर दिया था और श्रद्धाकी पुष्टता इन आशाओं और अनुमानोंसे हुई कि मरनेके वादभी पुनर्जन्म है, और जिस्मे हम फिर मिलेंगे. हमारे प्राचीन पितर इसको सत्य मानते थे और हमभी अवश्य इसको सत्य मानते हैं. उसके पश्चात् हमने यह देखा कि स्वाभाविक मार्गसे इष्टेश्वर कल्पना हुई, और फिर एक ईश्वरकी श्रद्धा हुई, जो और देवतोंपर अधिकारी था औ जिससे अनेकेश्वर मत हुआ. इसके पश्चात् एकेश्वर मत हुआ जिसमे एकही ईश्वरको मानकर और देवोंका मानना छोड़ दिया. तत्पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि सव प्राचीन देवता केवल नामही नाम हैं, इससे नास्तिक व वौद्ध धर्म था मगर इसीसे एक नवीन उन्नति हुई जिससे यह ज्ञात हुआ कि एक आत्मा सव पदार्थोंमें है, जो सव ससीम पदार्थोंके परे है, जिनको सव इंद्रियां जान सकती हैं, जो परमात्मा है और सव आत्माओंकी आत्मासेभी विलग है. यहांपर हमने खोदना वंद कर दिया क्यों कि हमको शांति हो गयी थी कि हम उस पत्थरकी चट्टानतक पहुंच गये हैं जिनपर आर्यावर्तमे मंदिर वने और जिनसे पूजा व यज्ञ पिछले समयमे हुई. मैंने वारवार तुमको समझा दिया है कि तुम यह कभी अनुमान न करना कि जिस जड़ (वुनियाद) पर आर्यावर्तमे देवस्थान वने, वही जड़ अन्य सव मनुष्योंके देवस्थानकी होगी. इति करतेसमय मै एक वार इसको फिर समझाता हूं. इसमे संदेह नहीं कि पुष्ट चट्टान अर्थात् मनुष्यका अंतःकरण, सर्व स्थान एकही

होगा, और जहां कहीं धर्म, श्रद्धा, या पूजा है, वहां कोई कोई स्तंभ व मिहरावें एकही होंगी, मगर अभी हमको इससे बाहर न जाना चाहिये. मै आशा करता हूं कि वह समय आवेगा जब कि मतमतान्तरकी सबसे नीची राहतक तुम लोग पहुंचोगे. और मै निश्चय करता हूं कि यह व्याख्यान—जिनको मैंने प्रारम्भ किया है—इसमे मुझसे अधिक लायक व परिश्रमी मनुष्य काम करेंगे और जिस धर्मविज्ञानकी अभी इच्छा हैं और जो एक बीज है वह इच्छा पूरी होगी और उस वीर्यमे फल लगेंगे.

जब वह समय आ जायगा और जब संसारके मतोंकी जड़ फिर खोल दी जायगी तो सम्भव है कि उन लोगोंको बहुत फायदा हो जो अभी किसी मुख्य मतमे हैं. मगर उनकी चाह यह है कि वर्तमानसमयमे जो यज्ञ व कर्म उनको दुनियांमे करना पड़ते हैं, उनसे अधिक अनन्त, अधिक शुद्ध, अधिक प्राचीन और अधिक सत्य वार्ताएं ज्ञात हों. उन लोगोंकोभी लाभ होगा जो बाल्य अवस्थाकी बातोंको छोड़ देते हैं और उनको किस्से, कहानियां कहते हैं, मगर वह अपने अन्तःकरणके निर्मल बालभाव श्रद्धाको नहीं छोड़ सकते.

हिन्दुओंके देवस्थान, बौद्धोंके विहार, मुसल्मानोंकी मसजिद, यहूदियोंके भजनालय, ईसाईयोंके गिरजामे जो पूजा होती है और जो जो बातें सिखाई जाती हैं उसका बहुतसा भाग छोड़कर प्रति मनुष्य उस अपने अमूल्य मोतीको लाये, जिसकी वह बड़ी प्रतिष्ठा करता है. जैसेः—हिन्दु इस विषयका विश्वास और परलोक विषयका पूर्ण विश्वास,—बौद्ध अपने सृष्टिनियमका परिज्ञान और उन नियमोंकी अनुसारी और अपनी सौम्यता और दया,—मुसल्मान अगर और कुछ नहीं तो अपनी शांतता,—यहूदीका बुराई भलाईमे एक ईश्वरको जानना जो नेकीको प्रिय रखता है और जिनका नाम है " मै हूं "—ईसाई लोग वह पदार्थ जो सबसे उत्तम है ( जिनको इसमे संदेह हो वह करके देख लें ) अर्थात् उनका ईश्वरसे प्रेम, जो मनु-

च्यसे प्रेम करने, सजीवसे प्रेम करने, मृतकसे प्रेम करने, और सजीव व अमर्त्य प्रेमसे प्रगट होता है; उस ईश्वरको चाहें अनन्त, अदृश्य, अमर, पिता, परमात्मा, सर्वाधिष्ठित, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी कहें.

यह गुफा अभी बहुत छोटी व अंधेरी है तबभी इसमें वे लोग जाते हैं जो बहुतसे शब्दोंसे, बहुतसे प्रकाशोंसे, विरुद्ध संमतियोंसे, भागते. संभव है कि एक समय हो कि यह गुफा चौड़ा और सुप्रकाशित हो जाये और भूतकालकी गुफा किसी कालमें भविष्यकालका बड़ा देवालय हो जाय.



## प्रोफेसर " मोक्षमूलर " के " हिबर्ट लेक्चर" नाम व्याख्यानोंको इस देशकी भाषाओंमें उल्थाह करनेके उद्योगमें प्रसिद्ध विद्वानोंके पत्र व मुख्य मुख्य नामी समाचारपत्रोंके लेखोंका अभिप्राय.

---

महा मान्यवर **गवर्नर** बम्बई ने २३ आक्टोबर १८८२ ई० को अपनी चिठ्ठीमें मि. मलबारीको लिखा. ( गवर्नर साहेबकी आज्ञासे छापा गया. ) " जो बड़ा काम आपने आरंभ किया है अति उत्तम व अवश्य है, और यह मेरी परम इच्छा है कि आपका यह काम अच्छी तरहसे पूर्ण हो."

---

बंबईके " कान्व्होकेशन हाल " में ता. ३१ आक्टोबरको जो व्याख्यान नामदार **डाक्टर हंटर** साहेब सभापति " एजुकेशन कमिशन " ने दिया उसमें मि. मलबारीके इस देशकी भाषाओंमें उल्थाह करनेके उद्योगके विषयमें यह कहा " मुझको इस बातसे बहुत संतोष हुआ की पिछले जाड़ोंमें तुह्मारे शहरका एक प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष बंगाल देशमें ग्रन्थ प्रसिद्ध करनेके हेतु देशाटन करने गया था. उन्होंने मुझसे यह कहा कि वह प्रोफेसर **मोक्षमूलर** के किसी किसी ग्रन्थोंका उल्थाह हिन्दुस्थानके पश्चिमीय भागकी भाषाओंमें कर रहे हैं. मेरी रायमें यह काम करनेकेलिये अति उत्तम है. इस कालमें इस देशकी बुद्धि प्रकाश होनेकेलिये ऐसे ग्रन्थ बहुतही उपयोग्य हैं. जब मैं बंबईमें आया तो मैने पूछा कि इस कामकी कितनी वृद्धि हुई ? तो मालूम हुआ कि वह काम रुक गया, और उसमें उल्थाह करनेवालेका दोष नहीं है, परन्तु धनकी न्यूनता है. महाशय, मैं उनमें एक हूं. जिनका यह सिद्धान्त है की " विद्याको अन्याश्रित न होना चाहिये " परन्तु मैं उनमेंसेभी एक हूं जिनका यह मत है की " हिन्दोस्तानमे अभी वह काल नहीं आया कि उत्तम श्रेणीकी विद्या अन्याश्रित न हो. " जब मैं अपने गिर्द बडे बडे विद्यालय देखता हूं कि जिनको लोगोंकी उदारतानें यहां लोहे और पत्थरसे बनाया है, तो मुझको विश्वास होता है कि यही उदारता विद्याके उन कामोंमे सहाय देनेसे न हटेगी, जो संगमरमर और पीतलसे बहुत अधिक चिरस्थायी है." इसकेबाद अहमदाबादके एक जलसेमे **डाक्टर हंटर**ने यह कहाः—

"मैं 'गुजरात व्हर्नाक्यूलर सोसायटी' का ध्यान उस उत्तम उल्थाह-कीतरफ दिलाता हूं जो मि. मलबारीने **मोक्षमूलर**के "हिबर्ट लेक्चरों" का (गुजरातीमे) किया है. यह अति उत्तम काम एक विद्वान् पुरुष कर रहा है, और मैं आशा करता हूं कि गुजराती और दूसरी भाषाकी सभायें उनको प्रोफेसर **मोक्षमूलर**के ग्रन्थोंके उल्थाह करनेमें मदद देंगी जिसके वह योग्य है.'

डाक्टर **हंटर**के इन बयानोंपर "हिन्दु पेट्रियट" पत्र लिखता है:-
"धन्य है! बहुत अच्छा कहा! हिन्दुस्थानकेलिये यह एक बड़ी शरमकी बात होगी अगर यह मि. **मलबारी**का महोद्योग धनके न होनेसे रह गया."

---

आक्सफोर्ड, ता० २ फेब्रुवारी १८८२.

**मोक्षमूलर.**

प्रिय मित्र,

इस पुस्तककेलिये जो आपने यह परिश्रम किया और समय बिताया मैं उसका आपको धन्यवाद देता हूं.

जैसा मैंने आपसे पूर्व्वकालमें कहा था इन व्याख्यानोंके लिखनेके समय मेरा ध्यान "वेस्त मिस्तर आवे" के श्रोतागनोंकी ओर इतना ज्यादा न था जितना कि हिन्दुस्थानके लोगोंकीतरफ था.

मेरा यह इरादा था कि यदि और नहीं तो उन थोडेहीसे पुरुषोंको जो अंगरेजी भाषा जानते हैं यह बतला दूं कि उसके प्राचीन धर्म्मकी कदर इतिहासदृष्टिसे क्या है. वह कदर युरोपियन या इसाइयोंकी दृष्टिसे नहीं बल्कि इतिहासदृष्टिसे है, मैंने चाहा कि उनको दो बुराइयां चेता दूं, एक यह कि अपने प्राचीन धर्म्मको हीन और तुच्छ समझना जैसा कि आपके देशके बहुतसे अर्ध युरोपियन युवा मनुष्यलोग करते हैं, और दूसरे यह कि उसको ज्यादा समझना और उसके उस रीतिसे अर्थ करना जिस रीतिसे उसके अर्थ न होना चाहिये.

यह आपसे सुनकर मुझको बडा आनन्द हुवा कि यह संभव है कि हिन्दुस्तानकी भाषाओंमें मेरे व्याख्यानोंका उल्थाह हो जाय, मैंने उसी समय अपनी आज्ञा दी और साथही इसके यहभी मैंने अपनी इच्छा प्रगट की कि अगर इन व्याख्यानोंका संस्कृतमें भाषान्तर हो जाता तो यह उन पुरुषोंतक पहुंचता कि जिनतक पहुंचानेकी मेरी बडी इच्छा थी. अबतक जो कुछ आपने किया, और जो आगे करनेका इरादा है उसकेलिये मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिये, यह काम ऐसा है कि जिसमें कुछ धनका फायदा नहीं हो सकता है. मैं खुशीसे इसके खरचेकी सहायमें थोड़ासा रुपया दे सकता हूं.

परन्तु मैं यह उचित नहीं समझता कि इस कामकेलिये हिन्दुस्तानके सरकारी अधिकारियोंसे सिफारिश करूं और सहायताकेलिये विनय करूं. यद्यपि यह मुझको विश्वास है कि " हिबर्ट लेक्चरों " में जो राय मैंने प्रगट की है वह सही है और हिन्दुस्थानमें उसका जानना आवश्यक है और उससे हिन्दुस्थानियोंको लाभ होगा, तोभी यह बात मेरे कहनेकी नहीं है. जो प्रमाण मैंने लिखे है उनका मैं जिम्मेदार हूं परन्तु यह कि मेरी राय कैसी है इसका न्याय करना मेरा काम नहीं है; यह काम औरोंका है. आपके और अपने लिहाज़से इच्छा करता हूं कि इस काममें सब प्रकारसे आपको यश प्राप्त हो.

आपका अति शुभेच्छु,
**एफ. मोक्षमूलर.**

---

## विद्वान् डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र.

कलकत्ता, ता० ११ एप्रिल १८८२.

मेरे प्रिय मि० मलबारी,

धर्मके इतिहासोंमें मोक्षमूलरके " हिबर्ट लेक्चर्स " का लिखा जाना एक बड़ी नई बात है. उनका हमारी भाषाओंमें उलथाह हो जानेसे हमारी विद्याको बड़ा लाभ होगा. मैं आपके उद्योगको सब प्रकारसे प्रसंशा व उत्तेजनकेलायक समझता हूं. मैं जानता हूं कि आपको उलथाह कराने और धनकेलिये बहुतसी कठिनता पड़ेगी परन्तु मुझे संशय नहीं है क्योंकि आपका, काम करनेमें न थकनेका स्वभाव, और आपकी विचित्र बुद्धि और बे किये कामका पीछा न छोड़ना ऐसी बातें हैं कि जिनसे यह सब बातें दूर हो जायंगी. मेरी मनपूर्वक इच्छा है कि आपका यह काम सब प्रकारसे पूर्ण हो.

आपका,
**राजेन्द्रलाल मित्र.**

---

## वर्तमानपत्रोंका संक्षेप.

इस कामके कर्त्ता मि. मलबारीने इन व्याख्यानोंका उल्थाह गुजरातीमें किया है, और बन्दोबस्त किया है कि उनका उल्थाह संस्कृत, बंगाली, मराठी, हिन्दी, व तामील भाषाओंमें किया जावे. प्रोफेसर मोक्षमूलरने इसको तारीफमें एक पत्र भेजा है. बहुतसे वर्तमानपत्रोंने मि. मलबारीके

इस उद्योगकी तारीफ की है और यह लिखा है कि वही इस काम करनेके सामर्थ्य हैं.—( पायोनियर, ता. ५ मे सन् १८८२ ).

---

यह काम इस प्रकारका है कि इसमें सरकार सहायता करे. ऐसा करनेसे मि. मलबारीकी विद्यावृद्धि व उनके उद्योगकी प्रसंशा सरकारकी तरफसे होगी. ( इंग्लिशमन, ता. २१ एप्रिल १८८२ ).

---

हिन्दुस्तानसे हमको मालूम हुआ कि मि. मलबारीने जो उद्योग किया है कि प्रोफेसर मोक्षमूलरके "हिबर्ट लेक्चर्स"का उल्थाह संस्कृत व हिन्दुस्तानकी और पांच भाषाओंमें करें उसमें हिन्दुस्तानके विद्वान् लोग बहुत मदद देना चाहते हैं. काम बड़ा भारी है परन्तु भाषान्तरकर्ताके पूर्व चरित्रसे और जो उल्थाह उन्होंने गुजराती भाषामे किया है उसकी कदरसे यह विश्वास होता है कि यह पूरा उद्योग अच्छी तरह पूर्ण होगा. यह सब जानते हैं कि मि. मलबारी कवि हैं और ऐसे विद्वान् हैं कि जो युरोप और अपने देशके विचारोंको अच्छे प्रकारसे जानते हैं. (लंडन अकाडेमी, ता. १० जून १८८२).

---

मि. मलबारीनें जो काम उठाया है और उसमें मेहनत जो कर रहे हैं वोह तारीफके काबिल है और यह आशा की जाती है कि इस कामकेलिये धनकी कमी न होगी कि जिससे यह काम बन्द हो जाय. ( टाइम्स आफ इन्डिया, जून १८८२ ).

---

जो काम मि. मलबारीने अपने उपर लिया है वह बहुत अच्छा है और उसमे सब छोटों बड़ोंको सहायता करनी चाहिये. वह हिन्दुस्थानकी भाषाओंमे "हिबर्ट लेक्चर्स" का उल्थाह करना चाहते हैं जिनको प्रोफेसर मोक्षमूलरने बनाया है, जिनसे बढ़कर संस्कृतका जाननेवाला आजकल यूरोपमें कोई नहीं है. इस उल्थाहसे हमारी भाषाओंकी उन्नति होगी और इस देशके लोगोंको मालूम होगा कि हमारे मतके बारेमें यूरोपके विद्वान् संस्कृत जाननेंवालोंकी क्या राय है. इस काममें मि. मलबारीको बहुत परिश्रम करना और धन लगाना पडेगा. और हम आशा करते हैं कि हमारे राजा महाराजा उनकी बहुत सहायता करेंगे. ( नेटिव ओपीनिअन, जून १८८२ ).

---

आजकल हमारे मध्यमे बम्बईसे मि. बे. मे. मलबारी आये हैं. येह खाली लोकहितकरता मनुष्यही नहीं है किन्तु बहुत बड़े कविभी हैं. प्राचीन-कालकी कविताका जो मान है वही मान इनकी प्राकृति कविताका है. उनकी अंग्रेजी कवितासे अंगरेजी कवियों और विद्वानोंको प्रसन्नता और आश्चर्य होता है. इन दोनों कविताओंमें वोह इस देशके सत्य स्वरूप विचारको दिखाते हैं इसमें उनके बराबर यहां कोई दूसरा नहीं है. "इन्डियन स्पेक्तेतर" पत्रसे इनका जगमें नाम है.........

सबसे बडी तारीफ मि. मलबारीकी यह है कि वह अपने विचारमें और आदतोंमें पूरे हिन्दू हैं, लोकहितकारी मनुष्योंमें ऐसे बहुत कम हैं जो इनकी तरह लोगोंकी भलाईकेलिये मेहनत करें और अपना द्रव्य खर्च करें. मि. मलबारीका आजकल यह उद्योग है कि मोक्षमूलरके "हिबर्ट लेक्चर्स"का उल्थाह इस देशकी भाषाओंमे करें.........

हिन्दुस्तानके राजा, महाराजा और बड़े बड़े लोग इस कामसे बढ़कर और किसी अच्छे काममें अपना धन नहीं लगा सकते. यह काम धर्म और विद्या दोनोंकेलिये उपयुक्त है. और हिन्दुस्तानके मित्रोंको इस काममें अवश्यही सहायता करनी चाहिये. ( अमृतबजारपत्रिका, ता. २३ मार्च १८८२ ).

---

मि. मलबारीने जो उल्थाह मोक्षमूलरके "हिबर्ट लेक्चर्स" का गूजरातीमें किया है उसकी बहुत तारीफ है और अब उनका उल्थाह हिन्दुस्थानकी और भाषाओंमे होता है. यह काम कठीन है और इसकेलिये बहुत द्रव्य चाहिये. इससे साबित होता है कि मि. मलबारी बड़े बेगरज़ काम करनेवाले पुरुष हैं, यह एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं और "इन्डियन स्पेक्तेतर" पत्रके एडिटर हैं जो बड़ी लियाकतसे चलाया जाता है. (इंग्लिशमन, ता. २९ मार्च १८८२. )

---

मि. मलबारीने जो उद्योग किया है कि प्रोफेसर मोक्षमूलरके प्रसिद्ध "हिबर्ट लेक्चर्स" का उल्थाह हिन्दुस्थानकी प्राकृत भाषाओंमे करें, इसमें इस देशके विद्वानोंने बहुत सहायता की. जब हम यह देखते हैं कि यह काम कैसा है तब हमको इस बातसे आश्चर्य नहीं होता है. आश्चर्य यह है कि अबतक और किसीने इस कामको आरम्भ नहीं किया. यह व्याख्यान इंग्लिस्तान व अमेरिकामें छपे और इनकी बहुत तारीफ हुई. इनका उल्थाह

यूरोपकी सब भाषाओंमें हो गया है. परन्तु जबतक मि. मलबारीने इस कामको आरम्भ नहीं किया तबतक हिन्दुस्तानकी प्राकृत भाषाओंमे इसका उल्थाह नहीं हुआ............ ...इस उल्थाह करनेसे जो लाभ कि हिन्दुस्तानके विद्वानोंको होगा उसका तखमीना करना कठिन है. इनसे भाषाओंको बड़ी दृढ़ता होगी और आजकलके विद्वानोंमें यह हौसिला उत्पन्न होगा कि प्राचीन आर्य्य ऋषियोंनें जो ग्रन्थ रचे हैं उनको न्याय और बुद्धिपूर्वक देखें. प्राकृत ग्रन्थोंकी वृद्धिकेलिये हिन्दुस्थानमे यह काम सबसे बढ़कर है. हम सब लोगोंसे इसकी सहायताकी आशा करते हैं. ( इन्डियन डेलीन्यूझ, ता. ३० मार्च १८८२. )

---

मि. मलबारीने प्रोफेसर मोक्षमूलरके "हिबर्ट लेक्चर्स" के उल्थाह करनेका उद्योग किया है. इस कामसे तमाम हिन्दुस्तानको लाभ होगा. इस भाषान्तरसे इस देशकी प्राकृत भाषाओंकी कदर बढ़ेगी. यह काम बहुत जरूरी है और यह एक बड़ी बात है कि हमारे पारशी कवि व वर्तमानपत्रकार विद्वान् जिनको और अनेक काम हैं वोह ऐसे बड़े कामको अपने ऊपर लेवें, गुजराती उल्थाह बहुत अच्छी तरहसे हुआ. इससे अच्छी आशा होती है..... ........... यह आशा की जाती है कि हिन्दुस्थानकी सरकार और यहांके सब लोग इस परिश्रमको पसन्द करेंगे. ( स्टेट्समन, ता. ३० मार्च १८८२. )

---

इस बातसे हमको बहुत आनन्द हुआ की हमारे शहरके अग्रगामी पुरुषोंने मि. मलबारीके उस उद्योगमें कोशिस की है जो मोक्षमूलरके "हिबर्ट लेक्चर्स" के भाषान्तर करनेका है. इस कामको बड़े बड़े सरकारी ओहदेदारोंनेभी पसंद किया है, जो मि. मलबारीको बहुत दिनोंसे जानते थे. हमारी यह हमेशासे राय है कि पश्चिमखंड और पूर्व्वखंडके लोगोंमें ऐक्यभाव कायम रखनेकेलिये उत्तम उपाय यह है की दोनोंके विचार एककी भाषासे दूसरेकी भाषामें होते रहैं. इस बजहसे हम मि. मलबारीके उद्योगको बहुत फिक्रसे देखते रहे. यह उद्योग ऐसा है कि इससे बड़ी ऊमर और द्रव्यके लोग घबड़ाते. मि. मलबारीके इस काममे उन सब लोगोंको सहायता करना चाहिये जो हिन्दुस्थानकी बुद्धिकी उन्नति चाहते हैं.

इस सूबेके अमीर और बुद्धिमान् लोगोंको हजारो रुपयोंसे सहायता

करना चाहिये, यह काम ऐसा है कि इसमें हरतरहके मनुष्योंको सहाय करना चाहिये. ( इन्डियन मिरर, ता. ४ एपरिल १८८२. )

---

१५ दिन हुये कि मि. मलबारी बंगालको इसलिये गये कि वहां लोगोंको अपने उस उद्योगका हाल बतलावें जो उन्होंने प्रोफेसर मोक्षमूलरके " हिबर्ट लेक्चर्स " को भाषान्तर करनेका किया है. कलकत्ताके मुख्य मुख्य पत्रोंने मि. मलबारीकी जीसे स्वागत की. जो हाल जान पड़ा है उससे मालूम होता है कि यह उद्योग उत्तम प्रकारसे पूर्ण होगा. इस उत्तम कवि और पत्रकारके ख़यालसे हमको बहुत आनन्द हुआ. हमारी इच्छा है कि उनके सब काम पूर्ण हों जिनमें सबसे बड़ा काम यह है कि प्रोफेसर मोक्षमूलरके शोध ( ज्ञान विचार ) इस देशके उन लोगोंको मालूम हों जो अंगरेजी नहीं जानते. ( थिआसोफिस्त, एपरिल १८८२. )

---

मि. मलबारीके ढाढस और देशभक्तिकी जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है कि उन्होंने मोक्षमूलरके " हिबर्ट लेक्चर्स " को हिन्दुस्थानकी मुख्य मुख्य भाषाओंमें भाषान्तर करनेका काम अपनेउपर लिया है. इस गरम मौसममें उन्होंने कासिमबाजार जानेकी हिम्मत की कि महारानी सुरनोमायीकी सहायताका आश्रय स्वीकार करें. महारानी साहबने मि० मलबारीका यथायोग्य सत्कार किया जैसा कि वे नित्यही किया करती हैं. हम आशा करते हैं कि इस महारानीके उदाहरणसे और विद्यावृद्धिके सहायक अपनी थैलियोंको डोरे खोलेंगे. एक पारसी पुरुषकी हमारी भाषाओंके सुधारनेमें कोशिश करना कुछ छोटी बात नहीं है और जब हम देखते हैं कि वह पारसी पुरुष कौन है तो यह कहना बेफायदा होता है कि वह सब प्रकारसे उत्तेजन देनेके योग्य हैं. हमारी यह स्तुति है कि वह बंगालसे अपने कामके योग्य द्रव्य बिना लिये न जाने पायंगे. ( हिन्दु पेट्रियट, १० एप्रिल १८८२. )

---

" हिबर्ट लेक्चर्स " के खर्चकेलिये नवानगरके जामने १५०० रुपया दिया है. बम्बई इलाकेमें यह पहिला आश्रय है परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि और लोगभी देंगे. जिस कामकी कदर साधारण लोग नहीं कर सकते उसमें राजा महराजोंको सहायता करना चाहिये. जो इस कामको समझते हैं उनकी राय है कि यह ऐसा उद्योग है जिससे मुल्कका फायदा है. ( बाम्बे ग्याझेट, ता० १३ अक्टोबर १८८२. )

मि. मलबारीने जो भाषान्तर करनेका उद्योग किया है वह ऐसा है कि उसको आनेवाली पीढ़ियां बड़े कदरसे देखेंगी. परन्तु हमको आशा थी कि आजकलके बुद्धिमान् पुरुष इसमे सहायता करेंगे. जयपुर और राजपुतानाके और राज्य इस योग्य हैं कि इसमें द्रव्य दें. बड़ोदाके युवराजको देखकर पश्चिम हिन्दुस्थान व मध्यहिंदुस्तानके राज इसमें द्रव्य देंगे. इसके बाद पंजाब, व पश्चिमोत्तर व दक्षिणहिंदुस्तानवाले हैं. इन देशोंमें ऐसे गवरनर हैं जो मि. मलबारीके देशहितकारी श्रमकी कदर करेंगे, ऐसे कईएक राजाभी हैं जैसे त्रावनकोर, विजयानगर, तनजोरके राजा हैं.

हम हिन्दुस्तानकी सरकारसेभी आशा करते हैं कि वहभी इस बड़े उद्योगमें थोड़ीबहुत सहायता करेंगी. इस देशकी विद्याकी उन्नति और आरम्भिक शिक्षाके उत्तेजनकेलिये जो सरकारकी इच्छा है उसके पूर्ण होनेकेलिये इस कामसे बढ़कर कोई दूसरा काम न होगा. ( इंडियन मिरर, ता. २८ सप्तंबर १८८२ ).